देवराज सुराणा
अध्यक्ष

अभयराज नाहर
मन्त्री

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

मुद्रक :
भंवरलाल शर्मा
गजानन्द प्रिन्टिंग प्रेस,
शाह मार्केट,
ब्यावर.

॥ ॐ अर्हम् ॥

हीरक प्रवचनादि के

:: शुभदातारों की नामावली ::

★

श्रीमद् जैनाचार्य शांतमूर्ति स्वर्गीय पू० [illegible] खूबचन्द्रजी म० के गुरु भ्राता व्यावच्ची मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्रजी [illegible] के सुशिष्य श्रमण-संघीय जैनागम तत्व विशारद पंडित रत्न मुनि श्री [illegible] लालजी म० ठाणा ४ का सं० २०१६ का चातुर्मास बैंगलोर कन्ट[illegible] में श्री वर्द्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ की विनती से मोरचरी व सिपिन्स रोड़ में हुआ। मुनि श्री के प्रवचन अत्यन्त मनोहर सारगर्भित हृदय को पिघला देने वाले होने से उन्हें संग्रहित करवाने के लिये संकेत लिपि में लिखवाकर संपादन होने पर "हीरक प्रवचनादि" पुस्तक रूप में प्रकाशित करने के लिये सांवत्सरिक महा पर्व के समारोह की खुशी में निम्नलिखित उदार सज्जनों और महिलाओं ने उक्त प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया।

स्थम्भः—

१००१) सेठ कुंदनमलजी पुखराजजी लूंकड़ ठि. चिकपेठ मु. बैंगलोर २

सहायक सदस्यः—

४०१) सेठ जसराजजी भँवरलालजी सियाल ठि० चिकपेठ बैंगलोर २

३००) गुप्तदान

२५१) मंजुला बहिन C/o एम० एस० महेता बारदन शॉप ठि० महात्मा गांधी रोड मु० बैंगलोर १

२५१) सेठ रूपचन्दजी शेषमलजी लूणिया ठि० मोरचरी बाजार मु० बैंगलोर १

४०६) महिला समाज मु० बैंगलोर

१५१) गुप्तदान मु० बैंगलोर

१०१) सेठ किशनलालजी फूलचन्दजी लूणिया ठि० दिवान सुराप्पा लेन मु० बैंगलोर २

१०१) सेठ मिश्रीमलजी पारसमलजी कातरेला ठि० मामूल पेठ मु० बैंगलोर २

१३१) सेठ चे[illegible]जी जसराजजी गुलेछा ठि० रंगस्वामी टेम्पल स्ट्रीट मु० बैंगलोर २

१०१) सेठ मगनभाई गुजराती ठि० गांधी नगर मु० बैंगलोर २

१०१) सेठ गुलाबचन्दजो भंवरलालजी सकलेचा ठि० मलेश्वर मु० बैंगलोर ३

१०१) सेठ भभूतमलजी देवड़ा ठि० बेनीमील रोड मु० बैंगलोर २

१०१) सेठ पन्नालालजी रतनचन्दजो कांकरिया ठि० सपिन्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ उदयराजजी भीकमचन्दजी खिंवसरा ठि० सपिन्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ पुखराजजी मूथा ठि. सपीन्स रोड़ बैंगलोर १ म. नं. १७

१०१) सेठ गणेशमलजी लोढ़ा ठि० सपीन्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ नेमीचन्दजी चांदमलजी सियाल ठि. सपीन्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ श्री घीसुलालजी समदड़िया ठि० सपीन्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ हीराचन्दजो फतहराजजी कटारिया ठि० केवलरी रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ मिश्रीलालजी भंवरलालजी बोहरा मारवाड़ी बजार बैंगलोर १

१०१) सेठ दुलराजजी मोहनलालजी बोहरा ठि० अकसूर बजार बैंगलोर ८

१०१) सेठ अमोलकचन्दजी लोढ़ा ठि० तिमैया रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ जवानमलजी भंवरलालजी लोढ़ा ठि० तिमैया रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ मिठालालजी खुशालचन्दजी छाजेड़ ठि० तिमैया रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ मोतीलालजी छाजेड़ ठि० तिमैया रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ भंवरलालजी बांठिया ठि० तिमैया रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ जेवन्तराजजी मोतीलालजी लूणिया ठि० भारती नगर बैंगलोर १

१०१) लक्ष्मीचन्द C/o मोतीलालजी माणकचन्दजी कोठारी नं० ३२० अरुणाचलम मुदलीयार स्ट्रीट बैंगलोर १

१०१) सेठ पुखराजजी लूंकड़ की धर्म पत्नि गजरा बाई चिकपेठ मु० बैंगलोर २

१०१) सेठजी नेमीचन्दजी सकलेचा ठि० ओल्डपुर हाउस रोड़ बैंगलोर १

१०१) सेठ लखमीचन्दजी खारीवाल स्वस्तिक एलक्ट्रोक्स हनुमान बिल्डिग चिकपेट बैंगलोर २

१०१) गुप्तदान

२०२) सेठ मंगलचन्दजी मांडोत ठि० शिवाजी नगर बैंगलोर

१०१) सेठ रामलालजी मॉडोत ठि० शिवाजी नगर (बैंगलोर)

१०१) सेठ पुखराजजी मांडोत ठि० शिवाजी नगर (बैंगलोर)

१०१) सेठ पुखराजजी पोरवाड़ ठि० चिक बजार रोड़ शिवाजी नगर बैंगलोर।

१०१) सेठ अम्बुलालजी धर्मराजजी रांका ठि० एलगुण्डपालयम बैंगलोर।

१०१) सेठ चम्पालालजी रांका ठि० ओल्डपुर हाऊस रोड़ बेंगलोर १

१०१) सेठ भभूतमलजी जीवराजजी मरलेचा ठि० नगरथपेट बैंगलोर।

१०१) सेठ शांतिलाल छोटालाल ठि० एवन्यूरोड़ बैंगलोर सिटी

१०१) सेठ हिमतमलजी माणकचन्दजी छाजेड़ ठि० अलसुर बजार बैंगलोर ८

१०१) सेठ घीसूलालजी सोहनलालजी सेठिया ठि० अशोक रोड़ मैसूर

१०१) मेघराजजी गादिया अशोक रोड़ मु० मैसूर

१०१) सेठ गुलाबचन्दजी कन्हैयालालजी गादिया मु० आरकोणम

१५१) सेठ केसरीमलजी अमोलकचन्दजी आछा मु० कांजीपुरम

१०१) सरस्वती बहन C/o मणिभाई चतुरभाई नवरंगपुरा अलिज ब्रिज बस स्टेण्ड के सामने मु० अहमदाबाद।

१२१) सेठ जुगराजजी खींवराजजी बरमेचा मु० मद्रास

१०१) सेठ मिश्रीमलजी लूंकड़ तिरुवल्लूर मद्रास

१०१) सेठ मानमलजी भंवरीलालजी छाजेड़ कन्नडी छाप उरगम के० जी० एफ०।

१०१) सेठ पुकराजजी अनराजजी कटारिया आरकोनम

दो शब्द

●

सन्त-जीवन के पावन दर्शन एवं चरण स्पर्श पुण्यवान आत्माओं को पुण्य भूमि पर ही सौभाग्य से प्राप्त होते हैं। जब सन्त समागम ही नहीं होता तब सन्त-वाणी का श्रवण होना तो महान दुर्लभ है। भारतवर्ष ही एक ऐसा आर्य क्षेत्र रहा है जहां गत काल में बड़े २ सन्तों का आविर्भाव हुआ, वर्तमान में महापुरुष जन्म लेते हैं और भविष्य में भी महान सन्तों के शुभ दर्शन होते रहेंगे। तो इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो हम लोग भारतवर्ष के आर्य क्षेत्र में रहने वाले परम सौभाग्यशाली हैं कि हमें चारित्रशील सन्तों के शुभ दर्शन एवं वाणी श्रवण का लाभ समय २ पर प्राप्त होता रहता है।

वास्तव में सन्त दर्शन एवं सन्त वाणी सर्व पापों का विनाश करने वाले हैं। श्रावक सर्वदा तीन मनोरथों का चिन्तन करते हुए उस दिवस को अपना परम धन्य समझता है, जबकि वह सर्व प्रकार के आरम्भ परिग्रहों को त्याग कर उच्चत्तम सन्त क्रिया को करते हुए मोक्षगामी बनेगा। तो प्रत्येक आर्य अपने जीवन का परम लक्ष्य साधु-जीवन की पराकाष्ठा को बनाना चाहता है। वह क्यों न बनाए? क्योंकि सन्त-जीवन के आए बिना इस आत्मा की कर्मों से मुक्ति भी तो असम्भव है।

तो हम जिस कर्मठ एवं तत्त्वदर्शी चारित्रवान सन्त के विषय में दो शब्द लिखने को तत्पर हुए हैं, वे हमारे रंगमंच के सफल धर्म नायक हैं, श्रद्धेय श्रमण संघीय जैनागम तत्त्वविशारद पं० मुनि श्री हीरालालजी म०।

साधु जीवन वास्तविक दृष्टि से यदि देखा जाय तो वह एक घुमक्कड़ का जीवन प्रतीत होगा। यत्र-तत्र-सर्वत्र देश में भ्रमण करना एवं आत्मोत्थान के साथ-साथ समाज में नव चेतना प्रस्फुटित करना ही साधु जीवन का एकाकी लक्ष्य रहा हुआ है। आगमों में साधु जीवन को एक स्थल पर पड़े रह कर समाप्त कर देने की सख्त मनाही की गई है। क्योंकि नीतिकार का कहना है कि:—

बहता पानी निर्मला, पड़्या सो गन्दा होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय॥

जिस प्रकार कुए का जल सिंचन नहीं करते रहने पर गन्दा हो जाता है, बदबू आने लगती है और पीने वालों को बीमार बना देता है उसी प्रकार यदि साधु जीवन भी एक स्थान पर जम जाता है तो उस जीवन से स्वयं की आत्मा में और दूसरों के जीवन में दोष आने की सम्भावना रहती है। अतएव सन्त पुरुष को एक जगह अधिक समय तक रहने की शास्त्रकारों ने मनाही की है।

तो हमारे धर्म नायक पं० मुनि श्री हीरालालजी म० का साधु जीवन भी दीक्षा लेने के पश्चात् आज तक एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भ्रमण करता हुआ ही रहा है। आपने अपने पूर्वज आचार्यों एवं महापुरुषों की सेवा में रह कर शास्त्र ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त किया। जब आप स्वयंमेव इस योग्य बन गए कि अपने सदाचरण तथा ओजस्वी वाणी द्वारा भूले भटके प्राणियों को सद्राह का सन्देश दे सकें तो आपने अपने को मोड़ दिया और सन्देश वाहक बनकर गांव-गांव और शहर-शहर में पद यात्रा करते हुए भगवान का सन्देश सुनाने लगे। आपका जीवन हमेशा से एक सफल प्रचारक के रूप में रहा है जहां भी आप पहुँच जाते हैं आपकी ओजस्वी वाणी हर एक श्रोता के हृदय में घर कर लेती है। हजारों की संख्या में आपकी वाणी सुनने को नर-नारी एकत्रित हो जाते हैं।

आपकी हंस मुख मुद्रा आपका दिव्य आकर्षक ललाट एवं मिष्ट वचन, सहज भाव में सबको अपना बना लेता है।

आपने अपने जीवन काल में अभी तक मालवा, मेवाड़, मारवाड़, दिल्ली, पंजाब, यू० पी०, सी० पी०, बंगाल एवं सौराष्ट्र को पैरों से चलकर स्पर्श किया तथा वहां की जनता को तीर्थङ्कर भगवान् की वाणी श्रवण कराकर उनका जीवन पवित्र बनाया। उक्त स्थानों के सभी नर-नारिगण आपके पुनः दर्शन एव वाणी श्रवण के लिए पिपासु बने हुए हैं।

जिस समय आप श्री सं० २०१५ में सिकन्द्राबाद का चातुर्मास सानन्दपूर्ण करके अपने सहचारी प० मुनि श्री लाभचन्दजी म०, सेवाभावी दीपचन्दजी म० तपस्वी बसन्तीलालजी म० आदि ठाणा चार के साथ दक्षिण प्रान्त में हैद्राबाद आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए रायचूर पधारे तब मुनि श्री मन्नालालजी म० तथा मुनि श्री गणेशीमलजी म० भी विहार करते हुए आपकी सेवा में उपस्थित हो गए। वहाँ की जनता ने पधारे हुए मुनि-मण्डल का भाव-भीना स्वागत किया।

वहां आप श्री का श्री पार्श्वनाथ जयन्ति के उपलक्ष में तारीख ४-१-५९ को चन्द्रकान्ता टाकीज में सार्वजनिक प्रवचन हुआ। प्रवचन स्थल पर गणमान्य राजकर्मचारियों एवं बाहर से आए हुए श्रोताजनों ने मार्मिक प्रवचन का लाभ लिया। इसी प्रवचन समारोह में बैंगलोर श्रावक सघ ने खड़े होकर म० श्री से शेष काल में बैंगलोर पावन करने को आग्रह भरी विनती की। म० श्री ने श्रावक संघ को साधु भाषा में सुखे समाधे बैंगलोर क्षेत्र पावन करने का अभिवचन दे दिया।

तदुपरान्त म० श्री ने शिष्य मण्डली सहित रायचूर से विहार कर रास्ते में अनेक ग्रामों तथा शहरों में धर्म प्रचार करते हुए तारीख

१६-३-५६ को बैंगलोर में पदार्पण किया। म० श्री के शुभागमन की सूचना तार के समान सारे शहर में फैल गई। वहां की जनता में एक अपार खुशी की लहर दौड़ गई। हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुषों ने अपने आगन्तुक गुरुदेवों का स्थानीय टाउन हॉल में सुस्वागत किया। मुनि श्री को चिकपैठ के उपाश्रय में ठहराया गया। यहां बिराजने के पश्चात आप श्री के आठ प्रवचन अन्य स्थानों पर हुए। आपके सारगर्भित प्रवचनों को श्रवण कर जनता के हृदय पर गहरा असर पड़ा। स्त्री-पुरुषों में त्याग-पच्चक्खाण भी काफी मात्रा में हुए।

जिस उद्देश्य से बैंगलोर श्रावक संघ ने म० श्री से बैंगलोर क्षेत्र पावन करने की रायचूर में विनती मन्जूर कराई थी वह शुभ दिवस भी आ पहुंचा। यहां के श्रावक संघ ने सामूहिक रूप में खास होली त्यौहार के दिन म० श्री से बैंगलोर में चातुर्मास करने की आग्रह पूर्ण विनती की। संघ की विनती को हृदय में स्थान देते हुए म० श्री ने संघ को भगवान महावीर जयंति के परम दिवस पर अपने भाव प्रदर्शित करने का आश्वासन दिया।

चिक पैठ से विहार कर म० श्री ता० १-४-५६ को शूले बाजार पधारे। सेठ छगनमलजी सा० मूथा के बंगले पर मेयर श्री एन० नारायण सेट्टी की अध्यक्षता में भ० ऋषभदेव जयंति बड़े धूम-धाम से मनाई गई। म० श्री का भगवान ऋषभदेव के जीवन पर सार-गर्भित भाषण हुआ। महासतिजी श्री सायर कंवरजी आदि ठाणा ५ ने भी उक्त जयति समारोह में भाग लिया।

शूले से विहार कर म० श्री हरशूज़ा बाज़ार पधारे। वहां आपके भव्य पंडाल में प्रवचन हुए। सेठ श्री जवरीलालजी ने म० श्री के सदुपदेश से प्रेरित होकर वहां के भाई-बहिनों के धर्म ध्यान करने के लिए तीन माह में धर्म स्थान बनाने का उदारता पूर्वक वचन

दिया। उन्होंने वचन ही नहीं दिया अपितु उक्त कार्यारंभ भी करवा दिया। यहीं से उपाश्रय के लिए महावीर फंड भी चालू किया गया।

कुछ दिवस यहां ठहर कर म० श्री ता० ६-४-५६ को विमानपुर पधारे। वहां म० श्री का सिनेमा की जमीन पर प्रवचन हुआ। सेठ श्री धनराजजी भरलेचा ने श्रोताजनों को गिलासों की प्रभावना एवं प्रीति-भोज दिया।

यहां से म० श्री ता० १०-४-५६ को काली तुरप बाजार के उपाश्रय में पधारे। यहां के वेष्यम् होस्टल में आप श्री के तीन प्रवचन हुए। म० श्री के प्रवचनों को सुनकर मोरचरी तथा सपींग्स रोड़ वाले भाइयों में एकता की भावना जागृत होगई। यहां के भाइयो में कई दिवस से कई कारणों से आपस में मनोमालिन्य चला आरहा था। परन्तु म० श्री की सद् प्रेरणा तथा सेठ श्री किशनलालजी लूणिया के सद् प्रयत्न से आपसी मन मुटाव मिट गया और यहां का श्रावक संघ प्रेम पूर्वक एकता का प्रतीक बन गया।

यहां से म० श्री ता० १४-४-५६ को विहार कर सिमैया रोड बाजार में स्थित सरकारी स्कूल में ठहरे। नवयुवक श्री मोतीलालजी छाजेड़ ने उपस्थित करीब ५०० भाई बहिनों को (दया-व्रत वालों सहित) प्रीति-भोज दिया। यहां भी म० श्री के सदुपदेश से महावीर फंड चालू हुआ।

तदन्तर म० श्री ता० १७-४-५६ को गनतुरुप बाजार में पधारे वहां म० श्री का प्रवचन हुआ तथा आगन्तुक भाई बहिनों को सेठ जुगराजजी मकाना की तरफ से प्रभावना व प्रीति-भोज दिया गया।

ता० १६-४-५६ को म० श्री यहां से विहार कर विमानपुर पधारे। आज का दिवस वह शुभ दिवस था जो कि इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित किया हुआ है। आज के शुभ दिवस पर ही

बैंगलोर श्रावक-संघ के भाग्य का फैसला भी होने वाला था। आज यहां के भव्य पंडाल में बैंगलोर श्रावक-संघ एक बड़ी संख्या में अपने भाग्य का फैसला सुनने को एकत्रित हो चुका था। आज की पुण्य तिथि भी म० महावीर की जन्म जयंति चैत्र शुक्ला त्रयोदशी! म० महावीर जयंति का आयोजन विशाल पैमाने पर किया था। आज के शुभ दिवस के अध्यक्ष थे माननीय भूतपूर्व चीफ मिनिस्टर निज लिंगाप्पा। करीब तीन हजार की जनमेदिनी के मध्य म० श्री का भगवान के जोवन के सम्बन्ध में ओजस्वी प्रवचन हुआ। श्रोताजन म० श्री के प्रवचन को सुनकर गद्‌गद् होगये। आगन्तुक भाई-बहिनों को लड्डुओं की प्रभावना दी गई। द्वितोय दिवस ता० २०-४-५६ को ब्लोक पल्ली के उपाश्रय के बंगले में म० श्री पधारे। वहां आप श्री के प्रवचन कोरपोरेशन के मैदान में बनाए गए एक विशाल पंडाल में हुए। वहां भो हजारों की जनता ने महावीर जयंति समारोह में भाग लिया। यह जयत्युत्सव यहां के इतिहास में सर्व प्रथम था। म० श्री के ओजस्वी भाषण के पश्चात् बैंगलोर श्रावक-संघ ने खड़े होकर म० श्री से चातुर्मास काल बैंगलोर में बिताने की आग्रह भरी विनती को चूंकि म० श्री के हृदय में यहां के श्रावक संघ का असीम धर्म प्रेम घर कर चुका था अतः म० श्री ने संघ को निराश नहीं करते हुए चातुर्मास काल पर्यन्त विराजने की स्वीकृति प्रदान कर दो। स्वीकृति शब्द सुनते हो श्रावक संघ में अपार खुशी की लहर दौड़ गई। समस्त जनता खुश खबरी लेकर अपने अपने घर लौट गई।

ता० २३-४-५६ को पापरेट पालिया म० श्री पधारे। म० श्री के सदुपदेश से यहां के श्री संघ ने उपाश्रय के लिए जमीन लेने का निश्चय किया। यहां से विहार कर ता० २५-४-५६ को म० श्री मलेश्वरम पधारे। ता० २६-४-५६ को आपके सान्निध्य में प्ले-ग्राउन्ड पर शामियाने से बनाए हुए पंडाल में महावीर जयंति महोत्सव मनाया गया। सभा की अध्यक्षता मैसूर राज्य के वर्तमान

राज्यपाल श्री मंगलदास पकवासा ने की। इसी सुअवसर पर कानून मंत्री श्री सुबुण्यमजी ने भी म० श्री के प्रवचन श्रवण का लाभ लिया प्रवचन का विषय "स्वार्थ से हानि" था। द्वितीय दिवस अर्थात् ता० २७-४-५६ को मैसुर राज्य के मुख्य मंत्री श्रीमान् बी० डी० जत्तोजी की अध्यक्षता में पुनः महावीर जयंति महोत्सव मनाया गया। आज म० श्री का "मानव समाज की उन्नति' पर सारगर्भित प्रवचन हुआ। म० श्री के भाषणोपरांत डाक्टर टी० पार्थसारथी एम. एल. ए. का भी उक्त विषय पर भाषण हुआ। आज के पुनीत दिवस पर मैसूर से आए हुए श्रावक संघ ने मैसूर फरसने की आग्रह पूर्वक विनती की। म० श्री ने भावुक हृदय से श्रावक-संघ की विनती को मान्यता देते हुए सुखे समाधे मैसूर आने की स्वीकृति प्रदान की।

फिर यहां से म० श्री ता० २८-४-५६ को श्री रामपुर पधारे। यहां भी एक विशाल पंडाल में मेयर श्री एन० नारायण सेट्टी के सभापतित्व में महावीर जयंति बड़े उत्साह के साथ मनाई गई। आज की सभा में म० श्री का "विश्व शांति" पर प्रवचन हुआ। अतिथि महिला संसद सदस्या श्रीमती सुशीला बहिन ने भी म० श्री का भावपूर्ण वक्तव्य श्रवण किया। यहां से ता० ३०-४-५६ को म० श्री मागड़ी रोड़ पधारे। एक दिवस वहां ठहर कर ता० १-५-५६ को आपने पेलेस गुट्टली के लिए विहार कर दिया। और ता० २-५-५६ को मुंडेरी पालिया में आपका प्रवचन हुआ।

ता० ३-५-५६ को म० श्री गांधी नगर पधारे। यहां आप गुजराती स्कूल में बिराजे। यहां के गुब्बी थिएटर में म० श्री के दो व्याख्यान हुए।

म० श्री अब तक अपने अनेक सद्गुणों के कारण इतने लोक प्रिय हो चुके थे कि जनता अपने गुरु को अपनी आंखों से ओझल हुआ नहीं देखना चाहती थी। वह चाहती थी कि म० श्री अभी कुछ

दिवस और बेंगलोर में ही ठहर कर अपने उपदेशामृत का पान कराते रहे। इसी उद्देश्य से यहां के संघपति दानवीर श्रीमान् सेठ कुन्दनमलजी पुखराजजी लूंकड ने इक्कीस हजार तथा संघ मंत्री श्रीमान् सेठ मिश्रीमलजी पारसमलजी कातरेला ने ग्यारह हजार रुपये सिटी में उपाश्रय बनवाने का उदारता पूर्वक वचन देकर म० श्री का हृदय जीत लिया। चूंकि संत जन धर्म प्रेम के भूखे होते हैं अतः इस धर्म कार्य के वशीभूत होकर बैशाखी पूर्णिमा तक यहां ठहरने की म० श्री ने स्वीकृति प्रदान कर दी। एक बार पुनः यहां के श्रावक-संघ में जागृति की लहर दौड़ गई। आज की सभा में म० श्री का मैसूर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री एस० के० विरन्ना की अध्यक्षता में "आज के युग की समस्या" विषय पर ओजस्वी भाषण हुआ। मध्याह्न समय में इसी स्थान पर बालकों की सभा में म० श्री का "बाल जीवन" पर भाषण हुआ। यहां से भाषण देने के पश्चात म० श्री सेन्ट्रल जेल पधारे। वहां म० श्री का ७०० कैदियों के समक्ष "अचौर्य व्रत" पर मार्मिक प्रवचन हुआ। म० श्री के सदुपदेश का उन कैदियों के हृदय पर भी इतना गहरा असर पड़ा कि उन्होंने मिल कर म० श्री से भविष्य में चोरी नहीं करने की प्रतिज्ञा धारण कर ली। सैन्ट्रल जेल से पधारने पर आप श्री का महिलाओं की सभा में "महिला समाज की उन्नति" पर सारगर्भित प्रवचन हुआ।

यहां से ता० ५-५-५६ को म० श्री दो दन्ना हौल पधारे। फिर ता० ७-५-५६ को आप श्री वसंत गुडी पधारे। यहां भी आप श्री के सदुपदेश से आपसी मनमुटाव प्रेम में तबदील हुआ। ता०६-५-५६ को आप श्री मामूली पैठ पधारे और स्थानीय स्कूल में बिराजे। यहां अक्षय तृतीया को महासतीजी श्री सायरकंवरजी की सुशिष्या के वर्षीतप का पारणा सुख शांति पूर्वक हुआ। अन्य तीन चार भाई बहिनों के भी पारणे हुए। इसी शुभ अवसर पर 'भवन फंड' प्रारंभ

किया गया जिसकी शुरुआत श्रीमान् भंवरलालजी सियाल ने साढे सात हजार की उदारता प्रगट कर की।

अक्षय तृतीया दिवस उत्साह पूर्वक मनाने के पश्चात् म० श्री ता० २४-५-५६ को बालापुर पैठ होते हुए सामराज पैठ पधारे। यहां म० श्री राम मन्दिर मे विराजे। यहां के भाइयों में भी कई दिनों से आपसी वैमनस्य था परन्तु म० श्री तथा दानवीर सेठ श्री छगनमलजी सा० मूथा के सद् प्रयत्नों से उसकी इति श्री हुई और आपस मे सम्प करा दिया गया। ता० २६-५-५६ को इस राम मन्दिर की सहायतार्थ श्रावक-संघ की ओर से ५०१) रु० प्रदान किए गए।

तत्पश्चात् म० श्री ने ता० २७-५-५६ को मैसूर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में कई ग्रामों में धर्म प्रचार करते हुए म० श्री ता० १४-६-५६ को मैसूर शहर में पधारे। वहां आप श्वेतांबर मूर्ति पूजक धर्मशाला में विराजे। शहर की जनता ने अपार भीड़ में म० श्री का भाव-भीना स्वागत किया। स्थानीय टाउन हॉल में म० श्री ने स्वागत भाषण दिया। यहां पं० मुनि श्री लाभचन्दजी म० ने हाई स्कूलों मे पधार कर श्रीमान् सेठ माणकचन्दजी सा० छल्लानी के सद् प्रयत्नों के द्वारा छः हजार विद्यार्थियों के मध्य भाषण दिए।

मैसूर शहर की जनता को उपदेशामृत का पान कराकर म० श्री ने पुनः ता० २८-६-५६ को बैंगलोर की ओर विहार कर दिया। रास्ते में अनेक ग्रामो में धर्म प्रचार एवं उपकार करते हुए म० श्री ता० ८-७-५६ को पुनः बैंगलोर शहर में पधार गए। यहां के श्रावक संघ ने अपने धर्म नायक का पुनः सुस्वागत किया और म० श्री को शूले बाजार के धर्म स्थानक मे लेजा कर ठहराया।

ता० १२-७-५६ को म० श्री का सेठ कुन्दनमलजी पुखराजजी लूंकड़ के बंगले पर भाषण हुआ। यहां मोरचरी तथा समोंग्स रोड

के श्रावक-संघ ने खड़े होकर मोरचरी में चातुर्मास काल बिताने की आग्रह पूर्ण विनती की। म० श्री ने श्रावकों की विनती को मान्यता प्रदान करते हुए स्वीकृति प्रदान की। बैंगलोर श्रावक-संघ ने हर्षध्वनि में भगवान की जयनाद की। सभा विसर्जित हुई। पधारे हुए भाई-बहिनों को सेठ कुन्दनमलजी लूंकड की ओर से प्रीति-भोज दिया गया।

यहां से ता० १६-७-५६ को म० श्री विहार कर मोरचरी बाजार पधारे। यहां के श्रावक-संघ ने भारी संख्या में उपस्थित होकर अपने सम्माननीय अतिथि धर्मनायक गुरुदेव का स्वागत किया। म० श्री ने मोरचरी स्थित सेठ श्री नेमीचन्दजी सियाल के मकान में ठहराया गया। म० श्री ने मंगलाचरण के रूप भजन कह कर सभा विसर्जित की। यहां म० श्री का दैनिक प्रवचन चातुर्मास काल में शिवाजी छत्रम, नारायण पिल्ले स्ट्रीट में होता रहा। इसके अतिरिक्त चातुर्मास काल में विशेष प्रसंगों पर अन्यत्र भी प्रवचन होते रहे।

जिस पुनीत उद्देश्य को लेकर यहां के श्रावक संघ ने म० श्री का आग्रह पूर्वक चातुर्मास करवाया था। वह भावना भी शीघ्र ही साकार रूप में परिणत होगई। म० श्री के सारगर्भित प्रवचनों को श्रवण कर यहां के श्रावक-संघ में जागृति की लहर दौड गई। उनके हृदय में दान भावना का स्रोत उमड़ पड़ा। और उसी के फल स्वरूप यहां के श्रावक-संघ ने धन राशि एकत्रित करके ५१) हजार में एक बंगला नं० १०१ सर्पीग्स रोड स्थित स्व० चुन्नीलालजी कातरेला की धर्म-पत्नि से खरीद करके ता० १६-६-५६ को मोरचरी तथा सर्पीग्स रोड वर्ध० स्था० जैन श्रावक-संघ, बैंगलोर के नाम से रजिस्ट्री भी करवा ली। इस बंगले के खरीदने में उक्त सेठानीजी ने भी २१) हजार की उदारता पूर्वक सहायता प्रदान की। वास्तव में यहां के

श्रावक-संघ के लिए धर्म ध्यान करने के लिए जगह की भारी कमी थी जिसकी म० श्री के सदुपदेश से पूर्ति हुई।

जब से म० श्री ने बैंगलोर में पदार्पण किया तभी से म० श्री के यत्र तत्र सर्वत्र जन कल्याणकारी प्रवचनों की धूम सारे शहर में फैल गई। दूर दूर से नर, नारी, बसों, मोटरों, तांगों में बैठ कर आते और म० श्री का प्रभावशाली भाषण सुनते थे। उन ओजस्वी प्रवचनों को सुन सुन कर स्थानीय श्रावक-संघ मे जागृति की लहर दौड़ गई। यहां के श्रावक-संघ ने एक दिन दृढ निश्चय किया कि म० श्री की अनमोल वाणी व्यर्थ हो न चली जाय अतः उसे संग्रहीत करवाने का प्रयत्न करना चाहिए। परिणाम स्वरूप उस अमूल्य वाणी का हमेशा के लिए सदुपयोग हो सके, एतदर्थ अजमेर ,से श्रीमान् धर्मपालजी मेहता, संकेत-लिपि लेखक को लिपि बद्ध कराने के लिए बुला लिया गया। चूंकि धर्मपालजी मेहता विगत चातुर्मासों में स्व० जैन दिवाकर पं० मुनि श्री चौथमलजी म० उपाध्याय कवि पं० मुनि श्री अमरचंदजी म० संयुक्त चातुर्मास जोधपुर में उपाचार्य पं० मुनि श्री गणेशीलालजी म०, मं० पं० मुनि श्री मदनलालजी म० उपा० आनन्दऋषिजी म० उपा० हस्तीमलजी म० आदि महान संतों के तथा मंत्री पं० मुनि श्री प्रेमचन्दजी म० के ब्यावर चातुर्मास में प्रवचन लिपी बद्ध कर चुके थे अतः शास्त्रीय भाषा का ज्ञान होने से उन्हें ही बुलाना उचित समझा गया। आपने आते ही म० श्री के सफलता पूर्वक प्रवचन लिपि-बद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। यहां रह कर आपने म० श्री के पांच मास पर्यन्त प्रवचन अक्षरशः लिपि बद्ध किए।

पर्यूषण पर्वाधिराज का समय सन्निकट आ पहुंचा। आठ महा पर्व दिवस पर पांच हजार की जनता को एक स्थान पर शांति पूर्वक बैठाने की समस्या श्रावक-संघ के सम्मुख थी। परन्तु इस समस्या का

हल भी निकाल लिया गया। उक्त खरीदे हुए बंगले के कम्पाउन्ड में एक विशाल पंडाल बनवाया गया। उसी विशाल पंडाल के नीचे धर्म प्रेमी स्त्री-पुरुषों ने म० श्री के आठ दिन पर्यन्त प्रवचन सुने तथा पर्यूषण पर्व की आराधना की। म० श्री के सदुपदेश से संघ में धर्म जागृति हुई तथा व्रत प्रत्याख्यान दान वगैरह काफी संख्या में हुए। आगन्तुक अतिथियों को यहां के श्रावक-संघ ने सोत्साह आतिथ्य सत्कार किया। स्वधर्मी बन्धुओं को मनुहार पूर्वक स्थानीय श्रावक-संघ की ओर से सेठ श्री किशनलालजी के बंगले पर चौका खुलवा कर प्रीति-भोज दिया गया। यहां के नवयुवक बन्धुओं ने भी खुले दिल से धर्म कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। पर्यूषण पर्वाधिराज शांति एवं उत्साह पूर्वक समाप्त हुए।

बाहर से आई हुई संस्थाओं के अनेक प्रचारकों का भी यहां के श्रावक-संघ ने दिल खोल कर यथोचित आर्थिक सहायता देकर सत्कार किया।

इस चातुर्मास काल में विविध प्रवृत्तियों के साथ-साथ कई अखण्ड शान्ति सप्ताह भी मनाए गए। भाई-बहिनों ने विविध प्रकार की तपस्याएं की और कई श्रीमानों की तरफ से विविध प्रकार की प्रभावनाएं भी बांटी गई।

लिखते हुए हर्ष होता है कि यहां के इतिहास में म० श्री का चातुर्मास स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। यहां के भाई-बहिनों में धर्म जागृति भी अच्छी हुई और हमेशा के लिए वे म० श्री के होगए।

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को दिवंगत आत्मा जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० की ८२ वीं जन्म जयन्ती बड़े शानदार ढंग से स्थानीय बंगले के भव्य पण्डाल में मनाई गई। म० श्री ने जैन दिवाकर जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए श्रद्धान्जलि अर्पित की। स्थानीय श्रावक-संघ की ओर से प्रभावना बांटी गई।

कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को श्रीमद् क्रान्तिकारी लौंकाशाह जयन्ति भी इसी भव्य पण्डाल में श्रावक-संघ द्वारा सोत्साह पूर्वक मनाई गई। उस पुनरुद्धारक धर्म नेता के जीवन की विशेषताओं पर अनेक वक्ताओं ने प्रकाश डाला एवं कविता पाठ हुए।

आखिरकार एक दिन मार्गशीर्ष बदी १ ता० १६-११-५६ का वह दिन भी आ पहुँचा जिस दिन सभी आबाल वृद्ध स्त्री-पुरुषों के हृदय में शोक छा गया। सभी के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। आज का दिवस था आदरणीय अतिथि मुनिवरों को अपने यहां से विदाई देने का! एक दिन हर्ष एवं उत्साह का रहा था जब कि आज सभी शोक मग्न थे। परन्तु विधि का नियम ही कुछ ऐसा अटपटा सा है कि जिसका पालन किया जाना भी अवश्यभावी है। भगवान के नियमानुसार सन्त वर्ग को इस दिन प्रस्थान करना ही होता है। आज यहां की जनता ने नहीं चाहते हुए भी अपने हृदय के टुकड़े को अपार जन समूह के बीच मध्याह्न में २॥ बजे के लगभग शूले बाजार की ओर प्रस्थान कराया।

म० श्री के शूले बाजार में विराजने से धर्म ध्यान काफी मात्रा में हुआ। यहां के श्री संघ ने दो अखण्ड शान्ति सप्ताह भाई-बहिनों ने पृथक रूप में मनाए। मिगसर बदी १२ को सप्ताह की समाप्ति पर सभी बाजारों से आए हुए भाई-बहिनों को श्रीमान सेठ चन्दनमलजी मरलेचा की ओर से प्रीति भोज दिया गया। श्रीमान् मधुभाई मेहता पालनपुर वालों की ओर से सबको गिलासों की प्रभावना दी गई।

ता० २०-११-५६ तथा २१-११-५६ को म० श्री तथा पं० मुनि श्री लाभचन्दजी म० अनेक गणमान्य श्रावकों के साथ मैसूर प्रान्तीय महाधीशों द्वारा आयोजित विराट-सभा, लाल बाग में भाग

लेने पधारे। वहां आप श्री से अत्यन्त आग्रह करने पर आपके तथा मुनि लाभचन्द्जी के भाषण हुए। प्रथम दिवस की सभा के अध्यक्ष थे श्रीमान् आर० आर० दिवाकर भूतपूर्व राज्यपाल, विहार प्रान्त तथा द्वितीय दिवस की अध्यक्षता श्रीमान् हनुमन्तैया भूतपूर्व मन्त्री मैसूर प्रान्त ने की।

मार्गशीर्ष बदी १२ को म० श्री दोपहर में स्थानीय श्री सुमति जैन छात्रालय का निरीक्षण करने पधारे। वहां आप श्री ने तथा प० मुनि श्री लाभचन्दजी म० ने अध्यापकों एवं छात्रों के समक्ष 'अहिंसा' पर सारगर्भित भाषण दिया। भाषणोपरान्त पं० श्री जोधराजजी सुराना ने म० श्री का आभार प्रदर्शित किया।

ता० २८-११-५६ तदनुसार मिति मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी का विहार शूले यशवन्तपुर की ओर हुआ। यहां म० श्री तीन दिवस विराजे। यहां भी मिगसर बदी अमावस को अखण्ड शान्ति सप्ताह पूर्णाहुति दिवस मनाया गया। यहां के श्रावक-संघ ने भी आई हुई जनता को प्रीति भोज दिया।

यहां से म० श्री ता० १-१२-५६ को मलेश्वरम पधारे। यहां आपका स्थानीय श्री सनातन धर्म सभा-भवन में प्रवचन हुआ। यहां के श्री संघ ने भी भाई-बहिनों को प्रीति भोज दिया।

ता० ३०-१२-५६ को म० श्री जालहल्ली पधारे। वहां के अनेक अजैन बन्धुओं के समक्ष सारगर्भित भाषण दिया। उपदेश श्रवण कर कई भाई बहिनों ने मांस-मदिरा के त्याग किए।

पं० मुनि श्री ता० २-१२-५६ को गांधी नगर पधारे। वहां आपका गुजराती समाज ने भव्य स्वागत किया और म० श्री को बणकर छात्रालय के विशाल सभा भवन में ठहराया। म० श्री के

दो ओजस्वी प्रवचन हुए। समाज की तरफ से आगन्तुक भाई-बहिनों को प्रीति भोज दिया गया।

इसके पश्चात् ता० ४-१२-५६ को म० श्री ने मांगडी रोड के लिए विहार कर दिया। वहां आप श्री को नई बिल्डिंग में ठहराया गया। संघ की ओर से सबको प्रीति भोज दिया गया।

वहा से विहार कर ता० ५-१२-५६ को म० श्री सिटी पधारे। बैंगलोर श्रावक संघ ने आपका उत्साह पूर्वक स्वागत किया। आप श्री चिकपेट के नव-निर्मित उपाश्रय में ठहराए गए। यहां के श्रावक, संघ की ओर से भाई-बहिनों को प्रीति भोज दिया गया। यहां आपके दो प्रवचन सरकारी स्कूल में हुए। प्रवचन श्रवण कर कई भाई-बहिनों ने त्याग किए। जीव दया के लिए चन्दा एकत्रित किया गया।

ता० ७-१२-५६ को म० श्री शिष्यों सहित क्लौक पल्ली पधारे, वहां आप बगले के उपाश्रय में बिराजे। मार्ग शीर्ष शुक्ला नवमी मंगलवार को आप श्री के सान्निध्य में विशाल पंडाल के नीचे स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० की निर्वाण-तिथी मनाई गई। म० श्री का श्री दिवाकरजी म० के पवित्र जीवन के सम्बन्ध में मार्मिक भाषण हुआ। जैन दिवाकरजी म० के आन्तरिक गुणों का बखाण करते हुए म० श्री का दिल भर-भर आता था। उस महापुरुष की निर्वाण तिथि के उपलक्ष में यहां के समाज ने गरीबों के भोजन के लिए करीब १५००) पन्द्रह सौ रुपये एकत्रित किए। श्रीमान् मिश्रीमलजी सा० कातरेला ने भी जैन दिवाकरजी के जीवन के सम्बन्ध में प्रकाश डाला अन्त में श्री धर्मपालजी मेहता ने मीठे स्वर में श्री जैन दिवाकरजी म० के प्रति कविता पाठ करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की। यहां के श्रावक संघ की ओर से सबको प्रीति भोज दिया गया।

यहां से म० श्री पापरेट पालियम ता० ६-१२-५६ को पधारे। वहां आपके दो प्रवचन स्कूल के विशाल पंडाल में हुए। आप श्री के सदुपदेश से वहां के श्री संघ ने उपाश्रय के लिए २५०००) पच्चीस हजार का चन्दा एकत्रित किया। सभी भाई-बहिनों को प्रीति भोज दिया गया।

ता० ११-१२-५६ को आप श्री कालीतुरूप पधारे। वहां भी आप श्री के उपाश्रय में दो प्रवचन हुए।

ता० १३-१२-५६ को आप श्री हलसूर पधारे। वहां आप श्री बोहन्दियाजी के मकान पर बिराजे। श्री रैय्यर अप्पा, मजिस्ट्रेट के बंगले पर विशाल हौल में आप श्री के दो प्रवचन हुए। कई वर्षों से वहां के समाज में जो मनमुटाव चला आरहा था उसे म० श्री ने खूबी के साथ मिटाकर आपस में प्रेम उत्पन्न करवा दिया। वहां के श्री संघ ने सबको प्रीति-भोज दिया। ता० १४-१२-५६ को अखिल बैंगलोर श्रावक-संघ ने मिलकर म० श्री को उनकी सेवाओं के उप-लक्ष्य में अभिनन्दन-पत्र दिया। साथ ही साथ श्री धर्मपालजी मेहता को भी आभार प्रदर्शित किया गया। आज ही प्रातः काल म० श्री सर्पांग्स रोड़ स्थित श्रीमान् सेठ किशनलालजी लूनिया के बंगले पर समाज के अत्याग्रह से "श्री जैन सिद्धान्त श्री पाठशाला" का उद्‌घाटन करने पधारे। पाठशाला के लिए चन्दा भी म० श्री के उप-देश से प्रारम्भ हुआ।

यहां से म० श्री ता० १४-१२-५६ को मध्याह्न में विहार कर सिंधायन पालिया पधारे। वहां आप शिष्य मण्डली सहित श्रीमान् मिश्रीमलजी कातरेला के प्रेम बाग में बिराजमान हुए। आप श्री के यहां तीन प्रवचन हुए। श्रीमान् कातरेलाजी की तरफ से करीब तीन हजार स्त्री-पुरुषों को प्रीतिभोज दिया। गौशाला के लिए चन्दा चालू

किया गया। अनेकों ने त्याग-प्रत्याख्यान किए। बैंगलोर की सरहद में आज तक म० श्री के प्रति स्थानीय श्रावक-संघ का अत्यधिक प्रेम भाव रहा।

ता० १७-१२-५६ को म० श्री यहां से विहार कर व्हाइट फील्ड पधारे। रास्ते में अन्धे बच्चों के स्कूल का निरीक्षण करने पधारे। म० श्री की सेवा में जाने वाले भाइयों ने तत्काल तीन सौ-साढ़े तीन सौ का चन्दा इकट्ठा करके उक्त संस्था को दिया। स्थानीय संघ ने सबको प्रीति भोज दिया।

यहां से आप श्री १८-१२-५६ को हासकोठा पधारे। यहां भी प्रीतिभोज दिया गया।

ता० २१-१२-५६ को म० श्री कोलार डिस्ट्रिक्ट पधारे। यहां म० श्री का स्थानीय गवर्नमेन्ट हाईस्कूल में एक हजार विद्यार्थियों के समक्ष "विद्यार्थी कर्तव्य" पर प्रवचन हुआ। ता० २२-१२-५६ को स्थानीय टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में शिक्षकों के समक्ष प्रवचन हुआ।

यहां से विहार कर म० श्री रोबर्टसन पेट ता० २४-१२-५६ को पधारे। यहां की जनता ने हजारों की संख्या में सम्मिलित होकर पधारे हुए मुनिराजों का हृदय से स्वागत किया। ता० २५-१२-५६ को म० पार्श्वनाथ जयन्ति किंग जौर्ज होल में बड़े शानदार ढंग से मनाई गई। म० श्री का भगवान के जीवन के सम्बन्ध में ओजस्वी भाषण हुआ। जयन्ति समारोह में भाग लेने के लिए बैंगलोर से सैकड़ों स्त्री-पुरुष पधारे। सबको प्रीति भोज दिया गया।

ता० ३-१-६० को म० श्री अन्डरसन पेट (कोलार) पधारे। वहां सर्व धर्म सम्मेलन बड़े ही उत्साह एवं आनन्द पूर्वक मनाया गया। कई विद्वानों के भाषण हुए। श्रीमान् सेठ सेंसमलजी धाड़ीवाल ने

म० श्री के सदुपदेश से स्थानक निर्माण करने के लिए अपनी जमीन उदारता पूर्वक संघ को भेंट में दी। और शीघ्र ही उक्त जमीन पर स्थानक बनवाने का श्री संघ ने निश्चय किया।

ता० ९-१-६० को आप श्री का स्थानीय स्कूल में प्रवचन हुआ। उक्त स्कूल के विद्यार्थियों में सात सौ कोपिएँ वितीर्ण की गई।

इस प्रकार म० श्री शिष्य मण्डली सहित रास्ते में कई गांवों में धर्म प्रचार करते हुए वेलूर पधारे। यहां श्रीमान सेठ मोहनमलजी सा० चोरडिया के सान्निध्य में मदरास से एक डेप्युटेशन म० श्री से मदरास फरसने के लिए आग्रह पूर्वक विनती करने के लिए आया। अब यहां से म० श्री मदरास की ओर सुखे समाधे विहार करेंगे।

म० श्री के गुणों की प्रशंसा जितनी भी की जाय थोड़ी ही सिद्ध होगी। आपकी सरल एवं भद्रिक प्रकृति जन मानस के स्तर को ऊंचा बनाने वाली है। कई भाई-बहिनों के जीवन में आपकी मधुर जबान के कारण परिवर्तन आया है। आप यहां सदैव चिर-स्मरणीय बने रहेंगे। आपके विचारों में सदैव श्रमण-संघ ऐक्य की सुगन्ध आया करती है और उसी के लिए आप हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं।

अन्त में शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि ऐसे कर्मठ एवं सफल प्रचारक पं० मुनि श्री इस अवनीतल पर युगों तक जैन धर्म का प्रचार करते हुए यश परिमल से सुवासित हों और जैन समाज का कल्याण करें।

इसी विनीत भाव के साथ—

आपका

मन्त्री,

भंवरलाल बांठिया

:: प्रस्तावना ::

卐

'हीरक प्रवचन' पाठकों के कर-कमलों में है। प्रस्तुत पुस्तक दिवंगत पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज के अन्यतम शिष्य पण्डित मुनि श्री हीरालालजी म० के प्रवचनों का प्रथम भाग है। मुनि श्री ने विगत वर्ष बैंगलोर श्री संघ की प्रार्थना स्वीकार कर वहां चौमासा किया। जब आपके प्रवचन प्रारंभ हुए तो वे श्रोताओं को अत्यन्त उपयोगी और प्रभावशाली प्रतीत हुए और उन्हें लिपिबद्ध कराने का निर्णय किया गया। तदनुसार श्री धर्मपालजी महता को बुलाया गया और उन्होंने संकेत लिपि में उन्हें लिख डाला। तत्पश्चात् सर्व-साधारण जनता उनसे लाभ उठा सके, इस उदात्त और परहितमयी भावना से प्रेरित होकर उनको मुद्रित कराने की व्यवस्था की गई। उसी व्यवस्था के फलस्वरूप 'हीरक प्रवचन' का प्रथम भाग पाठकों के समक्ष उपस्थित हो सका है।

पिछले कुछ वर्षों से स्थानकवासी समाज में मनीषी मुनिराजों के प्रवचन-साहित्य के प्रकाशन की एक परम्परा-सी प्रचलित होगई है अब तक पूज्य श्री जवाहरलालजी म०, जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म०, उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म०, उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म०, पं०के० मंत्री मुनि श्री प्रेमचन्दजी म०, प्र०व० श्री सौभाग्यमलजी म०, उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म० आदि संतों के तथा प्रवर्तिनी श्री उज्जवकुमारीजी म० पंजाब की विदुषी महासती श्री चंदाजी म० आदि साध्वियों के प्रवचन प्रकाश में आये है। वास्तव में यह एक प्रशस्त परम्परा है और इससे अनेक जिज्ञासु जनों को अपने जीवन

का उत्कर्ष सिद्ध करने में अवश्य सहायता मिली होगी। कइयों को विचारशोधन का भी अवसर मिला होगा। यह परम्परा जितनी अधिक अग्रसर हो कल्याणकर ही है।

मगर एक बात ध्यान में रहनी चाहिए। आज हमारा देश और समाज शिक्षण एवं चिन्तन-मनन के क्षेत्र में अच्छी प्रगति कर चुका है और हमारे साहित्य का स्तर भी ऊंचा उठ रहा है। इस तथ्य को सामने रख कर ही प्रवचन साहित्य और इतर साहित्य अगर सामने आएगा तो वह स्पृहणीय होगा और उससे जैन समाज के गौरव की वृद्धि होगी। यह सत्य है कि मूलभूत तथ्य तो चिर पुरातन ही होंगे, मगर उन्हें अभिव्यक्त करते की शैली युगानुकूल गंभीर, प्रांजल और विशद होनी चाहिए और उसमें चिन्तन की गम्भीरता परिलक्षित होनी चाहिए। जितनी जल्दी हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट हो, उतना ही अच्छा।

प्रस्तुत पुस्तक में अनेक विषयों पर विचार व्यक्त किये गये हैं। पौषध, समय का सदुपयोग, ज्ञान की उपासना, ब्रह्मचर्य, प्रार्थना का महत्व, सुपात्रदान महात्मय आदि विषयों के साथ ऋषभचरित्र तथा सुबाहुकुमार की सुप्रसद्धि कथा का भी इसमें समावेश है। आशा है सर्व साधारण पाठकों के लिए यह प्रवचन उपयोगी सिद्ध होंगे।

ज्ञात हुआ है कि 'हीरक प्रवचन' के अगले भाग भी क्रमशः सम्पादित और प्रकाशित होने वाले हैं। भावों की समीचीनता एवं भाषा शुद्धि पर अधिक ध्यान देने से, आशा है अगले भाग और भी सुपाठ्य होंगे। इस साहित्य को पाठकों के समक्ष उपस्थित करने में जो जो महानुभाव निमित्त बने हैं, उनकी उदार भावना आदरणीय है।

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

---

* विषयानुक्रम *

पौषध-व्रत

यैः शान्तराग रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रि भुवनैक ललाम भूतः ।
तावन्त एव खलु तेप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

卐

भाइयों ! यह भक्तामर स्तोत्र का बारहवां श्लोक है । भक्तामर स्तोत्र के अड़तालीस श्लोकों की काव्यमय रचना जैन-जगत के प्रसिद्ध आचार्य मानतुंग ने भगवान ऋषभदेव की महिमा में की है । राजा भोज ने आचार्य श्री को लौकिक एवं आध्यात्मिक चमत्कार की अलौकिक प्रतिभा देखने के लिए, कारागार में, अड़तालीस तालों में, हाथ-पैरों में बन्धन बांध कर डाल दिया था । तब ऐसी विकट परिस्थिति में उन्होंने भगवान के नाम का ही आश्रय लिया और भगवान ऋषभदेव की महामहिम स्तुति में उक्त भक्तामर स्तोत्र की रचना की । उनके शुद्ध अंतःकरण से निकली हुई स्तुति के प्रभाव से एक-एक श्लोक पर एक-एक ताला टूटता गया और अंतिम अड़तालीसवें श्लोक पर वे अपने बन्धनों से निर्बन्धन होगए । राजा भोज, यह

अलौकिक चमत्कार देखकर बड़ा प्रभावित हुआ और आचार्य श्री का अनुयायी बन गया।

भाई! जब २ धर्म संकटकालीन स्थिति में होता है और धर्म की रक्षा के लिए जब कोई महापुरुष शुद्ध हृदय से तथा अत्यन्त कारुणिक भाव से भगवान को स्मरण करता है तब २ आंतरिक शुद्ध भावना के द्वारा उस आए हुए संकट का विमोचन होता है और विश्व में धर्म-सूर्य का उद्योत हो जाता है।

उक्त बारहवें श्लोक में आचार्य श्री भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे भगवन्! आप तीनों लोक में अद्वितीय सुन्दर है। आपके समान सुन्दर अन्यत्र कोई भी दिखाई नहीं देता। क्योंकि आपका शरीर जिन शान्त और सुन्दर परमाणुओं से बना है तो वे परमाणु समस्त संसार में उतने ही थे। यदि और भी परमाणु अवशिष्ट होते तो आपके समान और भी कोई सुन्दर दिखाई देता किंतु तीनों लोक में तलाश कर लेने पर भी आपके समान सुन्दर रूप किसी का दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः इससे सिद्ध होता है कि वे शान्त और सुन्दर परमाणु इस पृथ्वीतल पर उतनी ही मात्रा में थे और इस अद्वितीय सुन्दरता का प्रतीक है तीर्थंकर नामकर्म! तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से ही वे सुन्दर एवं शान्त परमाणु स्वभावतः खिंच २ कर चले आते हैं और उन्हीं के द्वारा भगवान के शरीर का निर्माण होता है। जिस प्रकार लोह चुम्बक इधर-उधर बिखरे हुए लोह-कणों को अपनी ओर खींच लेता है उसी प्रकार तीर्थंकर नाम कर्म के प्रभाव से तीनों लोक के सुन्दर से सुन्दर परमाणु खिंच कर तीर्थंकर के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं और भगवान का असाधारण सुन्दर एवं दिव्य शरीर बना देते हैं और करोड़ों इन्द्रों का सौन्दर्य भी भगवान के सौन्दर्य के सामने फीका सा प्रतीत होता है।

इसी कारण भगवान अद्वितीय सुन्दर होने के साथ २ तीनों जगत मे भूषण रूप हैं। जिस प्रकार शरीर के पंचाङ्गों में मस्तक शरीर का भूषण माना जाता है उसी प्रकार भगवान तीनों लोक में भूषण स्वरूप हैं।

भगवान की शान्त मुख-मुद्रा से शान्ति का वह अनुपम झरना झरता है कि देखने वालों के चित्त में भी शांति का आभास होने लगता है। तीर्थंकर की प्रशान्त छाया के नीचे जो भी पहुँच जाता है वही त्रिताप से विमुक्त होकर अद्भुत शान्ति का अनुभव करने लगता है। यहां तक कि भगवान के समवसरण में पहुँच कर जन्म जात बैरी—सिंह–बकरी, कुत्ता–बिल्ली या असुर व वैमाणिक भी अपने वैर-भाव को भूलकर एक अनूठे प्रेम सरोवर में अवगाहन करने लगते हैं और फिर भगवान की सौम्य मुख-मुद्रा को अनिमेष दृष्टि से देखने पर भी कोई अघाता नहीं है। प्रत्येक दर्शक का यही जी चाहता है कि इस शान्त एवं सुन्दर मुख की छवि को निहारता ही रहे। तो ऐसे भगवान ऋषभदेव अद्वितीय सुन्दरता के प्रतीक थे और उन्हीं को हमारा बारबार नमस्कार है।

भाई! शरीराकृति के साथ २ यदि किसी का हृदय भी स्वच्छ हो तो वह सुन्दरता और भी निखर आती है। केवल बाह्य शरीर की सुन्दरता से ही काम नहीं चल सकता जबकि हृदय की स्वच्छता की भी नितान्त आवश्यकता है। एक क्रोधी मनुष्य की सुन्दराकृति भी क्रोध के आवेश में भयानकता मे तबदील हो जाती है और वह वास्तविक सुन्दरता गायब हो जाती है और देखने वाले को भी उससे प्रसन्नता न होकर भय-सा प्रतीत होने लगता है। वह उस क्रोधी से दूर भागने की कोशिश करता है। किंतु इसके बावजूद जब एक शान्त कुरूप व्यक्ति भी देखने वालों को सुन्दर लगता है। क्योंकि उसका

हृदय शुद्ध है और जहां तहां अपनी शान्त वाणी के प्रसून बिखेरता रहता है। तो शुद्ध हृदय की सुन्दरता से शरीर की सुन्दरता में चार चांद लग जाते हैं।

भगवान् ऋषभदेव भी इसी कारण इतने सुन्दर दृष्टिगोचर होते थे, कि उनमें तीर्थङ्कर नाम के कर्म उदय से अद्वितीय सुन्दरता के साथ साथ अन्तःकरण की निर्मलता भी थी। और फिर उसका प्रतिबिम्ब दर्शक के हृदय पर इतना गहरा पड़ता था कि वह सहजभाव से आकृष्ट होकर भगवान् के सौन्दर्य को निहारता रहता और अपने हृदय में एक अनुपम शान्ति की अनुभूति करने लगता था। उनकी दिव्याकृति से प्राणि-मात्र के प्रति करुणा, प्रेम एवं वात्सल्य का स्रोत फूट पड़ता था। और यही कारण था कि वे तीनों लोक के प्राणियों को प्रिय लगते थे। हजारों व्यक्ति उनके दर्शन के पिपासु रहते थे और हजारों दर्शन करके अपने जीवन को सफल मानते थे।

भगवान् ऋषभदेव ने ही सर्व प्रथम लोकहित के लिए उपदेश दिया और दुनियां को सच्ची राह दिखाई। उस जमाने में युगलिक-धर्म निवारण होने लगा था। कल्पवृक्ष उनकी मनोकामना पूर्ण करने में असमर्थ होने लगे थे और फल देना बन्द कर दिया था। अतः ऐसी हालत में जनता मे असंतोष बढने लगा और आवश्यकता की पूर्ति न होने से आपस में वैमनष्यता फैलने लग गई। जब उनकी व्याकुलता ने उग्ररूप धारण कर लिया तो भगवान ऋषभदेव ने आई हुई जनता का पथ-प्रदर्शन किया। उन्होंने जनता को पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाया और कहा कि जो मनुष्य पुरुषार्थ करेगा, अपने पैरों पर खड़ा रह सकेगा वही इस संसार में जीवित रह सकेगा। इस प्रकार जनता का कल्याण करने के लिए उन्होंने असि, मसि और कृषि की शिक्षा दी। भगवान ऋषभदेव नवीन युग के निर्माता और युग प्रव-

र्तक महापुरुष थे। उस युग की भोली जनता ने अपने पथ-प्रदर्शक का अनुकरण एवं अनुशीलन किया। उनके बताए हुए मार्ग पर चलकर अपने जीवन की रोटी, वस्त्र और मकान की समस्या को हल किया। आज प्रत्येक मानव अपने उपकारी जीवन-दाता भगवान के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

किन्तु आज पुनः स्वार्थ-परायणता के कारण मानव जाति में रोटी, वस्त्र एवं मकान की जटिल समस्या खड़ी हो गई है। आज विश्व के प्रतिभाशाली बड़े २ अर्थशास्त्री इस समस्या को सुलझाने में व्यस्त है। किन्तु कितने ही सुझाव रखे जाने पर भी यह विकट समस्या सुलझाई नहीं जा सकी है। इससे मानव जाति में एक विषमता पैदा होगई है। यद्यपि संसार में अपार जीवनोपयोगी सामग्री भरी पड़ी है फिर भी मानव, समाज व्यवस्था एवं वितरण प्रणाली के दोष के कारण उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए तरस रहा है। यदि आज भी संसार भगवान के बताए हुए सिद्धान्त को अपना ले और उस सुखद मार्ग पर अग्रसर हो जाय तो मेरा कहना है कि संसार में न कोई भूखा रहेगा, न वस्त्र विहीन रहेगा, और न फुट-पाथ पर ही सोता हुआ पाया जायगा। किन्तु इस समस्या को हल करने में एक बड़े बलिदान की आवश्यकता होगी। उसके लिए मानव को सबसे पहिले अपने स्वार्थ का बलिदान देना होगा।

तो भगवान ने जनता की रोटी, वस्त्र और विश्रान्तिग्रह की समस्या का भी सुन्दर एवं सुगम रीति से हल किया। जब रोटी, वस्त्र और मकान की बुनियादी परेशानियां हल हो गई तब जनता में किसी प्रकार की विषमता नहीं रही और सुख पूर्वक सब जीवन यापन करने लगे। भाई! जब मनुष्य का पेट भर जाता है तब उसे चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश नजर आने लगता है। उसके शरीर के

विकास के साथ २ मस्तिष्क भी विकसित होने लगता है। अपने पेट भर जाने के पश्चात् वह दूसरे को वितरण करने की भावना को भी स्थान देता है और दूसरों के दुःख निवारण करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार भगवान ने लोक नायक राजा बनकर जनता की कठिनाइयों को दूर किया। किन्तु जनता को लौकिक समृद्धि से परिपूर्ण कर देना ही अन्तिम उद्देश्य नहीं था। वे जनता को इससे आगे बढ़कर एक अलौकिक सुख के मार्ग का प्रदर्शन भी कराना चाहते थे। अतः उस मार्ग पर जनता को चलाने के लिए उन्होंने स्वयं राज्य-धन वैभव कुटुम्ब का परित्याग किया और धर्मनायक के रूप में वे जनता के सामने आए। धर्मनायक बन कर उन्होंने संसार को एक दिव्य संदेश दिया—आध्यात्मिकता का ! इस प्रकार भगवान युग की आदि करने वाले कहला कर धर्म की आदि करने वाले कहलाए। भगवान ने केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात तीर्थङ्कर के रूप में चारों तीर्थ की स्थापना की—साधु-साध्वी श्रावक और श्राविका। फिर धर्म चक्रवर्ती के रूप मे विख्यात हुए। भगवान ने केवलज्ञान के प्रकाश में जनता को आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाया। उस धर्मोपदेश से प्रभावित होकर विषयभोगों से विरक्ति ली और भगवान के मार्ग पर चलते हुए अक्षय सुख निधि को प्राप्त किया।

जो धर्मोपदेश भगवान् ऋषभदेव ने जनता के हित के लिए फर्माया वही उपदेश समय २ पर होने वाले तेईस तीर्थङ्करों ने दिया और मन्द होते हुए आध्यात्मिक प्रकाश को पुनः प्रज्वलित करते रहे। इस प्रकार अवसर्पिणी काल में होने वाले चौबीस ही तीर्थंकरों ने एक समान उपदेश दिया। जैसा कि आचारांग सूत्र में कहा गया है:—

"जे य अईआ, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगामिस्सा, अरहंता भगवंतो वे सव्वे वि एव माइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णविंति एवं परुवेंति।"

आचारांग-सूत्र के चतुर्थ अध्ययन के प्रथम सूत्र में भगवान ने फर्माया है कि भूतकाल में, वर्तमान काल में और भविष्य काल में जितने भी अरिहंत भगवान हुए हैं, मौजूद हैं और आगामी चौवीसी मे होंगे, उन सब का एक समान ही उपदेश होता है और एक समान ही प्ररुपणा होती है।

तो भगवान ऋषभदेव ने तीर्थंकर पद से धर्मोपदेश फर्माया। उसी जन कल्याणकारी उपदेश को निकटवर्ती गणधरों ने सूत्र रूप में गूंथ कर जनता के समक्ष रख दिया। जैसा कि कहा है:—

"अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गुत्थन्ति गणहरा"

अर्थात—तीर्थङ्कर अरिहतं भगवान अर्थ की प्ररुपणा करते हैं और गणधर महाराज उन्हें सूत्र रूप में गुथॅन कर देते हैं। इस प्रकार तीर्थङ्कर के द्वारा फर्माई हुई द्वादशांगी वाणी की रचना होती है। यह वाणी समष्टि संसार को मोक्ष मार्ग का दर्शन कराने वाली है। इसका आधार लेकर प्रत्येक प्राणी तत्त्वातत्त्व का निर्णय करके स्व-पर का कल्याण करने में समर्थ हो सकता है। और विशेष रूप से यही द्वादशाङ्गी वाणी स्थानकवासी समाज के लिये प्रमाणभूत है। उसी द्वादशांगी वाणी में जो विभाग सूत्र नामक ग्यारहवां अंग है वह आपके सामने रखा जा रहा है। विपाक

(३) विपाक सूत्र दो भागों में विभक्त है:—(१) सुख विपाक और (२) दुख विपाक। शुभ कर्मों का नतीजा सुखदायक होता है और जिन्होंने शुभ कर्तव्यों द्वारा अक्षय सुख को प्राप्त किया है उनका वृतांत सुख विपाक से, और दुख विपाक मे दुष्कर्म करने वालों को जो दुख की प्राप्ति हुई वह विवरण दिया है। चूंकि सभी सुख प्राप्ति के इच्छुक है अतः सबसे प्रहिले आपके सामने सुख विपाक सूत्र को रख रहा हूँ।

सुख-विपाक में दस अध्ययन हैं और उनमें से प्रथम अध्ययन का जिक्र आपको सुना रहा हूँ।

भगवान सुधर्मास्वामी, अपने सुशिष्य जंबू स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे फर्मा रहे हैं कि हे जंबू! भगवान महावीर स्वामी के मुखारविंद से सुख विपाक सूत्र के प्रथम अध्ययन के जो भाव मैंने सुने हैं वे ही भाव तुम्हारे सामने रख रहा हूँ। हे जंबू! उस काल और उस समय में हस्तिशिखर नाम का नगर था। वहां अदीनशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उनके धारिणी नामकी महारानी थी। एक समय महारानी ने रात्रि के समय सिंह का स्वप्न देखा। अपने पति के शयनागर में जाकर महारानी ने उन्हें अपना स्वप्न सुनाया। राजा ने सुन कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और भविष्य फल में कहा कि तुम एक भाग्यशाली पुत्र को प्रसव करोगी। महारानी अपने शयनागर में लौट आई और धर्म जागरणी करते हुए रात्रि व्यतीत की। सवा नौ मास पूर्ण होने पर महारानी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। बारहवें दिन अशुचिकर्म से निवृत्त होने के पश्चात् पुत्र का शुभ नाम सुबाहु कुमार रखा गया। माता पिता ने पुत्र का जन्मोत्सव खूब धूम धाम से मनाया। जब कुमार की आठ वर्ष की अवस्था हुई तो उन्हें कलाचार्य के पास विद्याध्ययन के लिए भेजा गया। अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण कुमार शीघ्र ही ७२ कलाओं में प्रवीण होगया। पिता ने अपने पुत्र की परीक्षा ली। कुमार परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। राजा ने खुश होकर कलाचार्य को यथेष्ट और पर्याप्त धन की राशि दी।

भाई! संसार में ज्ञानदाता का भी विद्यार्थी के प्रति महान उपकार है। उस उपकार के ऋण से बिरले ही विद्यार्थी उऋण हो पाते हैं। फिर भी नीतिकारों ने ज्ञानदाता के उपकार से उऋण होने के तीन मार्ग बताये हैं:—(१) ज्ञान के बदले ज्ञान देकर अर्थात् जिससे

जो कला सीखी हो उसे कोई दूसरी कला सिखा कर भी ऋण से उऋण हुआ जा सकता है। (२) ज्ञानियों की ज्ञान के बदले सेवा करके भी ज्ञान दाता के ऋण से उऋण हो सकते है। और तीसरा उपाय यह है कि ज्ञान दाता को ज्ञान के बदले में यथा योग्य धन, पारितोषिक में देकर भी उनके ऋण से उऋण हो सकते हैं। तो सुबाहु कुमार के पिता ने भी कलाचार्य को पर्याप्त धन देकर संतुष्ट किया।

विद्याध्ययन काल समाप्त होने के पश्चात् सुबाहु कुमार अब युवावस्था में प्रविष्ट हो चुका था। उसके सोये हुए नौ ही अंगो में जागृति पैदा हो चुकी थी। अतः उसके माता पिता ने समान कुल, शील, वय वाली सुन्दर, सुशिक्षित पुष्प चूला प्रमुख पांच सौ कन्याओं के साथ एक ही दिन खूब धूम धाम से विवाह कर दिया। अमित धन राशि दहेज के रूप में प्राप्त हुई। दहेज मे प्राप्त धनराशि बंधुओं को वितरित कर दी गई। पिता के द्वारा बनवाए हुए पाचसौ प्रासादों में सुबाहु कुमार सांसारिक सुखोपभोग करते हुए पांचसौ वधुओं सहित समय व्यतीत करने लगा।

कालान्तर में चरम तीर्थङ्कर श्रमण भगवान महावीर ग्राम, पुर, पत्तन आदि को अपने चरण कमलों से पवित्र करते हुए हस्ति शिखर नगर के बाहर पुष्पकरंड उद्यान में विराजमान हुए। भगवान के शुभागमन की सूचना मिलते ही नगर की जनता एक विशाल समूह में दर्शनों के लिये उद्यान की ओर उमड़ पड़ी। अदीनशत्रु राजा भी भगवान के दर्शनार्थ गए। सुबाहु कुमार ने एक ही ओर विशाल जन समूह को उमड़ता हुआ देख कर अनुमान लगाया कि नगर के बाहर कोई मेला तो नहीं लग रहा है! किंतु उत्कंठित हो पूछने पर ज्ञात हुआ कि नगर के बाहर उद्यान में भगवान के दर्शनों के लिए ही

विशाल जन समूह उमड़ा जा रहा है। यह सुन कुमार के हृदय में भी उत्कंठा जागृत हुई और वे भी स्नान मंजन करके वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर रथ पर आरूढ़ होकर भगवान के दर्शनार्थ रवाना हुए। समवसरण में पहुँच कर भगवान को सविधि वन्दन कर धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए परिषद् में बैठ गए।

भगवान महावीर ने बैठे हुए विशाल जन समूह को धर्मोपदेश दिया। परिषद् मे बैठे हुए श्रोता जनों ने भगवान के मुखारविंद से निकली हुई अमृतवाणी का एकाग्र चित्त होकर आस्वादन किया। भगवान ने भी ससार सागर से पार होने और मोक्ष मार्ग में प्रयत्नशील होने का उपदेश दिया। धर्मोपदेश होजाने के पश्चात् जनता ने विविध व्रत नियम धारण किए। भगवान के गुणानुवाद करके, वन्दन करके परिषदा नगर को लौट गई।

किंतु सुबाहु कुमार भगवान महावीर के समीप आकर वन्दन कर विनम्र भाव से कहने लगे:—भगवन्! मैंने आपके दर्शन कर नेत्रों को पवित्र किया, वाणी सुनकर मेरे कान पवित्र हो गये और उपदेश सुनकर उस पर पूर्ण श्रद्धा करता हूँ। मुझे उपदेश सुनकर आनन्द की प्राप्ति हुई है अतः मैं अन्तः करण से उस पर प्रतीति करता हूँ। वे महापुरुष धन्य हैं जो आरम्भ परिग्रह को त्याग कर आपके समीप मुनिव्रत धारण करते हैं। मै अभी साधु मार्ग को अङ्गीकार करने में असमर्थ हूँ। अतः आपने जो दूसरा मार्ग श्रावक धर्म का बतलाया है उस पर मैं चलना चाहता हूँ। कृपा कर आप मुझे श्रावक के बारह व्रत अंगीकार करा दीजिये।

भगवान महावीर ने 'अहा सुहं देवाणुप्पिया' कह कर सुबाहु कुमार को श्रावक के बारह व्रत धारण करवा दिये।

श्रावक के बारह व्रत अंगीकार करके सुबाहु कुमार रथ में बैठ कर अपने नगर को लौटने लगे तो गौतम स्वामी ने उन्हें जाते हुए देखा। वे उन्हें अधिक प्रिय लग रहे थे। अतः उन्होंने भगवान महावीर के समीप जाकर निवेदन किया कि हे भगवन्! सुबाहु कुमार बड़े प्रिय लगते है, मनोज्ञ मालूम होते हैं, इनका सौम्य दीदार है और इनका दर्शन बड़ा प्रियकारी है। ये राजा, सेठ आदि सद् गृहस्थों को तो प्रिय लगते ही है किन्तु साधुओं को भी प्रिय लग रहे है। इनकी मनोज्ञता और दर्शन प्रियता का क्या कारण? भगवन्! इन्होने पूर्व जन्म मे क्या दान दिया है? क्या भोगवा की है? क्या आचरण किया है? जिससे इन्हें यह सुन्दरता और ऋद्धि प्राप्त हुई है?

भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी के प्रश्न के समाधान में फर्माया:—हे गौतम्! हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहां सुमुख नाम का गाथापति रहता था। वह बड़ा ऋद्धिशाली था और किसी के दबाए दबने वाला नहीं था। किसी समय उस नगर मे धर्मघोष नाम के स्थविर अपने पाच सौ शिष्यों सहित पधारे और सहस्त्रंब नाम के उद्यान में विराजमान हुए। उनके सुशिष्य सुदत्त नाम के अणगार मासखमण की तपस्या करते थे। पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान और तीसरे प्रहर में प्रतिलेखना करके वे गुरु के समीप आये। गुरुदेव से भिक्षा के लिए आज्ञा लेकर हस्तिनापुर नगर में भिक्षार्थ गए। मार्ग में यत्नपूर्वक चलते हुए और ऊँच नीच मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए घूमते हुए वे सुमुख गाथापति के घर में प्रविष्ट हुए।

सुमुख गाथापति ने ज्योंही मुनिराज को अपने घर पर आते हुए देखा त्योंही उसका रोम रोम पुलकित हो उठा। वह हर्षित होता हुआ मुनि के स्वागतार्थ सात–आठ कदम आगे गया और वंदना कर आदर पूर्वक मुनिराज को रसोई घर में लाया। उसने भावना सहित

उदार परिणामों से मुनिराज को दोषों का निवारण करते हुए आहार पानी बहराया।

शास्त्रकार ने दशवैकालिक सूत्र के पांचवें अध्ययन की सौवीं गाथा में कहा है:—

"दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुग्गइं॥"

अर्थात्—सात्विक और वास्तविक दान देने वाले और शुद्ध तथा सच्चे दान लेने वाले दोनों ही दुर्लभ हैं। और शुद्ध एवं सात्विक दान देने वाले और लेने वाले दोनों ही सद्गति को प्राप्त करते हैं।

तो उक्त कथन के अनुसार ही सुमुख जैसे दानदाता और सुदत्त जैसे तपस्वी मुनिराज भिक्षा लेने वाले का संयोग प्राप्त हुआ है। चित्त वित्त और पात्र की शुद्धता मिल जाने पर त्रिविध योग्यता का त्रिवेणी संगम हो गया। इससे दान की उत्कृष्टता और भी बढ़ गई। सुमुख गाथापति के अन्तःकरण मे उदार भावना थी, उत्कट परिणाम धारा प्रवाहित हो रही थी और इस उत्तम प्रसंग को प्राप्त करने के कारण वे अपने आप को सौभाग्यशाली मान रहे थे। इस प्रकार चित्त की विशुद्धता का सयोग हुआ। फिर वित्त अर्थात दी जाने वाली वस्तु भी शुद्ध थी। निर्दोष एवं सात्विक आहार तैयार था। और पात्र अर्थात् लेनेवाले मास खमण की तपस्या करने वाले सुदत्त अणगार घर पर पधार गए थे। इस प्रकार चित्त, वित्त पात्र के त्रिवेणी संगम से दान का महत्व चमक उठा। इस भव्य प्रसग पर दान की महिमा प्रकट करने वाले पांच प्रकार के उत्तम द्रव्य प्रकट हुए:—आकाश से सौनैयो की वृष्टि, पांच वर्ण के पुष्प, वस्त्र आदि की वर्षा, आकाश में देव-दुन्दुभी की गर्जना और देवों ने आकाश में 'अहोदानं—अहो दानं' की उद्घोषणा की।

सुदत्त अणगार को दान देने से जो दान की दिव्य महिमा प्रकट हुई उसे सुनकर जन-जन के कंठ से यही ध्वनि निकलने लगी कि धन्य है सुमुख गाथापति ! जिसने मासखमण के पारणे में भाव भक्ति सहित मुनिराज को निर्दोष दान दिया !

फिर भगवान ने कहा—'हे गौतम ! उस दिव्य दान के फल-स्वरूप सुमुख गाथापति ने संसार परत कर, मनुष्य आयुष्य बांध, यथासमय अपने आयुष्य को पूर्ण करके इस भव में अदीनशत्रु राजा की धारिणी रानी की कुक्षि से सुबाहुकुमार के रूप में पैदा हुआ है। यह दान का ही परिणाम है जिससे सुबाहुकुमार को इतनी ऋद्धि प्राप्त हुई है और ये सबको प्रिय लगते हैं।

भगवान महावीर के द्वारा इस प्रकार समाधान कर दिए जाने के पश्चात् गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया कि हे भगवन् ! क्या सुबाहुकुमार मुनि बनेंगे ?

भगवान ने कहाः—'हां, गौतम ! ये सांसारिक सुखोपभोगों के साधनों को तृणवत छोड़कर मुनिवृत्त अंगीकार करेंगे।

प्रश्नों का समाधान हो जाने के पश्चात गौतमस्वामी तप-संयम में लीन हो गए। कुछ समय बाद भगवान महावीर ने वहां से अन्यान्य जनपदों के लिए विहार कर दिया।

हां तो, सुबाहुकुमार अब एक राजकुमार से श्रावक की गणना में आ चुके थे। उन्होंने जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष आदि नव तत्वों का ज्ञान प्राप्त किया। आत्मा को कर्मों का बंध क्यों और कैसे होता है, किस प्रकार यह आत्मा कर्म-बन्धन से छूट सकती है, किस प्रकार आत्मा सिद्ध, बुद्ध,

और मुक्त पद को प्राप्त कर सकती है—यह सब उन्होंने जाना। उन सब के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे बारह व्रतों का अच्छी तरह पालन करने लगे। वे प्रति मास छह-छह पौषध करते हैं। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या को पौषधशाला को प्रमार्जन करके योग्य स्थान पर आसन बिछाकर पूर्व या उत्तर दिशा में मुंह करके पौषध-व्रत अंगीकार करते हैं और धर्म जागरण करते हैं।

मैं यहां प्रसंगवशात् पौषधव्रत के संबन्ध में विस्तार पूर्वक विवरण कर देना आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि सिद्धान्त में बहुत सी बातें मूल रूप में हैं और उनका अर्थ रूप में सर्वसाधारण को ज्ञान कराने के लिए आचार्य वगैरह उनका विस्तार से विवेचन कर देते हैं। किसी भी क्रिया को आचरण रूप में लाने से पहिले यह जरूरी है कि उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर ली जाय। क्योंकि जब तक वस्तु या क्रिया के स्वरूप को नहीं समझा जाएगा तब तक उस वस्तु और क्रिया का ठीक तरह से आराधन नहीं हो सकेगा। जिसे जीवाजीव, भक्ष्याभक्ष्य या कृत्याकृत्य का ज्ञान नहीं होगा वह जीवों की दया कैसे करेगा। शुद्ध एवं सात्विक भोजन कैसे करेगा? और दुष्कृत्यों को कैसे छोड़ेगा? इसलिए पहिले वस्तु और क्रिया का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। तो पौषध व्रत की निर्मल आराधना के लिए पौषधव्रत का स्वरूप समझ लेना भी आवश्यक है। पौषधव्रत किसे कहते है, व्रत लेकर क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए आदि २ बातों की जानकारी करना चाहिए। ताकि पौषधव्रत यथाविधि पालन किया जा सकता है। अतः मैं इसी विषय में आपके सामने खुलासा कर रहा हूँ।

भाई! 'पौषध' शब्द का अर्थ है पोषण देने वाला—पुष्टि करने वाला। अर्थात् जो आत्मा को आध्यात्मिक पुष्टि देता है, जो आत्मिक

गुणों को पोषण देता है उसे 'पौषध' कहते हैं। पौषध में शारीरिक खुराक बन्द करके आत्मा को पोषण देने वाली खुराक ली जाती है। इन्द्रियों की खुराक बन्द करने से आत्मा को खुराक मिल जाती है। इसलिए पौषधव्रत में अशन, पान, खादिम और स्वादिम—चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया जाता है। विविध प्रकार के सावद्य योगों का परित्याग कर दिया जाता है। शरीर श्रृंगार, कुशील सेवन, आदि २ सावद्य क्रियाओं का त्याग करके पौषधव्रत स्वीकार किया जाता है। इस व्रत में रहकर आत्मा को पुष्ट बनाने के लिए धर्म जागरणा की जाती है। समस्त सांसारिक झंझटों से निवृत्त होकर आत्म चिन्तन में लीन रहना ही पौषधव्रत की आराधना है।

आचार्यों ने मानव हृदय की हरकतों को पहिचान कर पौषधव्रत की निर्मल आराधना के लिए अठारह दोषों से निवृत्ति करने का विधान किया है। उन दोषों के स्वरूप को ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उनकी निवृत्ति करनी चाहिए। उन अठारह दोषों का विवरण इस प्रकार दिया गया है—

(तर्ज:—धन ब्राह्मी धन सुन्दरी जाने पाल्यो शील अखंड)

जो श्रावक दोष अठारे पौषा तणा तुम, मूल भी दूर निवार ॥टेक॥

स्नान करे सोभा कारणे कांई, घाले पट्टा मांहि तेल।
जो श्रावक घाले पट्टा मांहि तेल,
चोथो अधर्म सेवे सही करे, स्त्री संगा ते केल ॥ १ ॥

बार बार भोजन करे, कांई वस्त्र धुवावे तेम।
जो श्रावक वस्त्र धुवावे तेम।
रात्रि तणो भोजन करे, ते तो ज्ञानी गुरु कहे एम ॥ २ ॥

पौषा के पहिले दिने सेव्यां, यह षट दोष न जान।
जी श्रावक यह षट दोष न जान।
पौषा लिया पीछे हम करे तो, द्वादश दोष बखान॥ ३॥
खुला तणी व्यावच करे वलि, वलि संवारे केश।
जी श्रावक वलि वलि संवारे केश।
मैल उतारे शरीर को कांई, निद्रा लेवे विशेष॥ ४॥
खाज खने बिन पूंजिया ठालो बैठो, विरथा करे चार।
जी श्रावक ठालो बैठो विरथा करे चार।
पर दूषण परगट करे तेने, नवमो दोष विचार॥ ५॥
संसार ना सौदा करे कांई, निरखे अंग-उपांग।
जी श्रावक निरखे अंग-उपांग।
चिंतवे काम संसार का कांई, बोले मुख अभंग॥ ६॥
देव, मनुष्य, तिर्यञ्च को भय, आणे मन्न मुझार।
जी श्रावक भय आणे मन्न मुझार।
दोष लागे अठारमो ते तो, टालिए बारम्बार॥ ७॥
आतम हित के कारणे कांई सतगुरु देवे छे सीख।
जी श्रावक सतगुरु देवे छे सीख।
दोष अठारा ही टालसी तेहने, मुक्त पुरी छे नजीक॥ ८॥
मुनि नन्दलालजी दीपता तस्य, शिष्य कहे हुलसाय।
जी श्रावक तस्य शिष्य कहे हुलसाय।
जोड़ करी अति दीपती गायो, मांडल गढ़ के माय॥ ९॥

भाई ! उपरोक्त पद्य में आचार्य श्री ने पौषध-व्रत अंगीकारकरने वाले के लिए अठारह दोषों का परित्याग करना अनिवार्य बताया है। जिनमें से छह दोष तो पौषध-व्रत अंगीकार करने से पहिले ही टालने चाहिए। उन्हीं छह पूर्ववर्ती दोषों का यहां पहिले वर्णन किया गया है।

(१) पौषध के निमित्त से शरीर के शृङ्गार हेतु स्नान करना पौषध व्रत का दूषण है। अर्थात् कोई व्यक्ति यह समझ कर स्नान करे कि कल मुझे पौषध करना है और पौषध में स्नान करना वर्जित है अतः आज ही स्नान करलूं। इस प्रकार पौषध के निमित्त से स्नान करना दूषण है।

(२) पौषध-व्रत में बालों में तेल डालना, इत्र लगाना वर्जित है अतः पौषध के निमित्त से ही तेल, इत्र-सेंट आदि सुगन्धित द्रव्यों का इस्तेमाल किया जाय तो यह भी पौषध-व्रत का दूषण है।

(३) पौषध व्रत में कुशील का सेवन करना वर्जित है अतः आज ही स्त्री प्रसंग करलूं—इस प्रकार यदि पौषध-व्रत निमित्त से अब्रह्म का सेवन किया जाता है तो यह भी पौषध-व्रत का दूषण है।

(४) पौषध-व्रत में भोजन करना, जलपान करना वर्जनीय है अतः उसके निमित्त से दिन भर अच्छे २ पदार्थ खाना और शाम को विचारना कि कल उपवास है अतः आज बन्दूक में बारूद की तरह ठूँस-ठूँस कर खालूं, बाटी और चूरमा खालूं, बादाम या दाल का हलवा खालूं तो कल भूख नहीं लगेगी। तो पौषध के निमित्त से यदि गरिष्ठ भोजन करता है, रात्रि में दूध, रबड़ी खाता है, शर्बत-ठंडाई पीता है तो यह भी पौषध व्रत का दूषण है। हां! सहज भाव में भोजन करने की बात निराली है।

(५) चूंकि पौषध-व्रत में वस्त्र नहीं धोना है अतः वस्त्र उस निमित्त से यदि धोता है, धुलवाता है तो यह भी दूषण है।

(६) पौषण व्रत में भोजन करना वर्जित है अतः उस निमित्त से सूर्योदय से पहिले यदि रात्रि में भोजन करता है, पेट को अच्छी तरह भर लेता है तो यह भी पूर्ववर्ती दूषण है।

तो इन छह ही पूर्ववर्ती दूषण में से प्रत्येक पौषध-व्रत के अभिलाषी को बचना चाहिए।

इन छह पूर्ववर्ती दूषणों के अतिरिक्त पौषध-व्रत अंगीकार कर लेने के पश्चात् बारह दोषों के लगने की संभावना रहती है, अतः उन दूषणों के सम्बन्ध में भी जानकारी कर लेना नितान्त आवश्यक है।

(७) भाई ! त्याग और संयम की पुष्टि के लिए पौषध-व्रत किया जाता है इसलिए त्याग और संयम को पौषध देने वाली क्रियाएं की जानी चाहिए। चूंकि पौषध-व्रती संयत है, अतः उसे किसी भी अप्रत्याख्यानी का आदर-सन्मान नहीं करना चाहिए। क्योंकि पौषध में आदर-सन्मान करना, पूछ-ताछ करना, असंयती को सेवाशुश्रूषा करना वर्जनीय है। हां ! पौषधव्रत में जो हो उसकी सार संभाल, सेवाशुश्रूषा, वैयावृत्य आदि क्रियाएं एक पौषधव्रती कर सकता है। अतः पौषध-व्रत की निर्मलता के लिए उक्त दूषण से बचना चाहिए।

(८) पौषध व्रत में बालों को संवारना वर्जित है। प्रायः देखा जाता है कि कोई कोई पौषध में बैठे बैठे बालों को हाथ फेर फेर कर जमाते हैं, मूछों पर ताव ही लगाते रहते हैं। अतः पौषधव्रती को इस दूषण से भी बचना चाहिए।

(९) पौषध-व्रत में शरीर का मैल निकालना वर्जित है। कई लोग गर्मी के दिनों में पौषध मे बैठे बैठे शरीर का मैल ही उतारते रहते हैं। ऐसा समझिए कि उन्हें मैल निकालने का फुर्सत का टाइम पौषध में ही मिला है। किन्तु पौषधव्रत में ऐसा करना भी दूषण है।

(१०) पौषध में विशेष रूप से नींद लेना भी वर्जित है। चूंकि पौषध आत्म शुद्धि के लिए, तत्व चिन्तन के लिए, आत्म-दर्शन के लिए, आत्मा के अवगुणों का निरीक्षण करने के लिए, भगवान की

उपासना के लिए, आदि २ आत्म-शुद्धि की क्रियाओं के लिए किया जाता है। उसमें धर्म-जागरणा करते हुए समय व्यतीत करना चाहिए। अतः पौषध में लम्बे लेटकर पौषध काल को निद्रावस्था में ही व्यतीत कर देना भी दूषण है।।

(११) पौषध-वृत में बिना पूंजे खुजलाना भी वर्जनीय है। बिना पूंजे खुजलाने से शरीर पर बैठे हुए डास,मच्छर आदि सुक्ष्म जन्तुओं के प्राण विसर्जन हो जाने की संभावना रहती है। पौषध मे सुक्ष्म से सुक्ष्म जीव की विराधना से बचना चाहिए। अतः बिना पूंजे खुजलाना भी पौषध-व्रत का दूषण है।

(१२) पौषध-व्रत में निकम्मे बैठकर निंदा, विकथा करना भी वर्जित है। पौषध में धार्मिक पुस्तकों का अवलोकन, ज्ञानचर्चा, संघ की उन्नति के विषय में विचार विनिमय, शंका समाधान, आदि २ प्रशस्त क्रियाएं ही करनी चाहिए। किन्तु प्रायः करके देखा जाता है कि लोग धर्म स्थानों में बैठकर इधर उधर की गपशप लगाते रहते हैं जब दस-बीस-पचास पौषधव्रती धर्म स्थान पर इकट्ठे हो जाते हैं तो वे आपस में बैठकर पौषध-व्रत के उद्देश्य को भूलकर एक दूसरे की निंदा-स्तुत्ति करने लगते हैं या स्त्री-कथा,भोजन कथा, राज कथा और देश कथा रूप चार विकथाओ में अपना अनमोल समय गंवा देते हैं। मानव क्रियाशील प्राणी है। वह एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय नहीं रह सकता। वह कुछ न कुछ करता ही रहता है। अब वह क्रिया सद् क्रिया भी हो सकती है और असद् क्रिया भी हो सकती है। तो पौषध-व्रत में अधिकतर लोग विकथा में ही समय व्यतीत करते हैं। अमुक के यहां अच्छी रसोई बनाई गई थी, अमुक के यहां दाल का हलुवा कच्चा रह गया था, अमुक जगह डाका पड़ा था, अमुक जगह भूकम्प आ गया, अमुक प्रान्त में बाढ के प्रकोप से इतने आदमी मर

गए अमुक २ देशों में लड़ाई छिड़ने की संभावना है, अमुक जगह आग लग गई, इस प्रकार की विकथाओं में ही समय बिता देते हैं। अतः पौषधव्रत में निंदा-विकथा करना भी दूषण माना है।

(१३) पौषध व्रत में दूसरों के दोषों का बखान करना भी वर्जित है। जिनकी निन्दा करने, आलोचना करने की या टीका-टिप्पणी करने की आदत पड़ जाती है वह छूटना मुश्किल हो जाती है। और पौषध व्रत में भी दो चार जने इकट्ठे होकर दूसरे की आलोचना और निन्दा करने लगते हैं। अमुक साधु ऐसा है. अमुक साध्वी क्रिया पालन में ढीली है, अमुक आदमी ने ऐसा किया, अमुक ने वैसा किया, इस प्रकार की आलोचना और टीका टिप्पणी में बहुत सा समय व्यतीत कर देते हैं। जब कि पौषध में आत्मा की आलोचना, प्रत्यालोचना करना ही अभीष्ट है। जब स्वयं के दोषों का निरीक्षण किया जायगा तभी आत्मा की उन्नति सम्भावित है। दूसरों की निन्दा कर अपनी आत्मा को कर्म बन्धन में बांधता है। कभी २ हमारे सामने भी लोग ऐसी टीका–टिप्पणियां शुरू कर देते हैं। आखिर हमारा इन बातों से क्या लेना देना है! भाई! हम तो धर्म क्रिया करने और अपनी आत्मा को उज्जवल बनाने के लिए घर बार छोड़कर निकले है तो फिर हमें दूसरों की निन्दा–बुराई से क्या प्रयोजन है। फिर भी जब लोग दूसरों के विषय में बात छेड़ देते हैं तो कभी २ हम भी उनकी हां! में हां! मिलाने को तैयार हो जाते हैं। वास्तव में होना तो यह चाहिए कि हम अपनी स्वयं की आलोचना करें और अपने दोषों को निवारण करने का प्रयत्न करें। अतः पौषध व्रत में दूसरों की निन्दा, आलोचना करना भी पौषध व्रत का दूषण है।

(१४) पौषध में सांसारिक सौदे बाजी करना भी वर्जित है। कोई २ पौषध व्रत में सौदे सट्टे की बातें करते हैं, तेजी मन्दी की

धारणाएँ करते हैं अथवा लड़के—लड़की की सगाई या विवाह सम्बन्धी बातें ही करने लग जाते हैं। किन्तु पौषध में इस प्रकार की बातचीत करना भी पौषध व्रत में दूषण लगाना है।

(१५) पौषध में अपने अंग-उपांगों को बार-बार निरखना भी वर्जित है। कई लोग अपने सुन्दर एवं सुडौल शरीर को देखकर कहते हैं कि ओ हो! मेरे मुकाबले में उसका शरीर बिल्कुल सुन्दर नहीं है, मेरे चेहरे की खुबसूरती को लोग देखते ही रह जाते है! किन्तु भाई! एक क्षण भंगुर और जल बुद बुद के समान नश्वर शरीर को देख २ कर क्या अभिमान करते हो। यह सुन्दर शरीर तो अशुचि का भण्डार है और एक दिन देखते २ यह मिट्टी का घर नष्ट हो जाने वाला है। अरे! सनत्कुमार चक्रवर्ती के शरीर की सुन्दरता के मुकाबले में तो हमारा और आपका शरीर सुन्दर है भी नहीं। किन्तु उन सनत्कुमार चक्रवर्ती का देव दुर्लभ शरीर भी देखते ही देखते रोगों का शिकार बन गया! अतः शरीर की सुन्दरता निरखने के बजाय आत्मा की सुन्दरता को देखने का प्रयत्न करो। अतः शरीर के अंग-उपांगों को देखना भी पौषध व्रत में दूषण लाना है।

(१६) पौषध व्रत में सांसारिक दुकान-व्यापार सम्बन्धी संकल्प-विकल्प करना भी वर्जित है। कल मुझे अमुक सौदे को बेबाक कर देना है, अमुक चीज का स्टाक करना है, अमुक वकील से मशवरा लेने जाना है, अमुक नौकर को नौकरी से हटा देना है, इस प्रकार के विचार पौषध व्रत में करना पौषध को मलीन करना है। अतः इस प्रकार के संकल्प करना भी पौषध व्रत में दूषण माना गया है।

(१७) पौषध व्रत में सावद्य भाषा का प्रयोग करना भी वर्जित है। पौषध व्रत में विवेक पूर्वक प्रियकारी, आदर सूचक शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए। खुले मुँह अर्थात् मुखवस्त्रिका रहित बोलना

सावद्य भाषा मानी है। अतः यतना पूर्वक बोलना पौषध व्रत को निर्मल बनाता है। पौषध में विषय को पोषण देने वाली राग-रागनियां गाना भी वर्जित है। अतः सावद्य भाषा बोलना भी पौषध व्रत का दूषण माना है।

(१८) पौषध व्रत में भयभीत होना भी वर्जित है। भय अपने आप में एक महान् दोष है। निर्भयता मानव का भूषण है। भय से आतंकित व्यक्ति किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। सांसारिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में निर्भयता के बिना काम नहीं चल सकता। पौषध व्रत में यदि देव, मनुष्य या तिर्यञ्च कोई भी भयभीत करे तो भी अपने आप में निर्भय रहना चाहिए और किसी भी हालत में अपने पथ से विचलित नहीं होना चाहिए। मौत से अधिक भय तो अन्य किसी का नहीं हो सकता। किन्तु मुमुक्षु आत्मा न मौत से ही डरती है और न जीने की लालसा ही रखती है। उपासक दशांग-सूत्र में कामदेव श्रावक का जिक्र आता है। उन्हें पौषध व्रत से चलायमान करने के लिए देवता ने उनके सामने पिशाच, हाथी एवं सर्प का रूप धारण करके भयभीत करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। किन्तु धन्य है कामदेव श्रावक को जिनका एक रोम भी चलायमान नहीं हुआ। उनके शरीर के साढ़े तीन करोड़ रोम राशि में से एक रोम में भी भय का संचार नहीं हुआ। क्योंकि वे निश्चयपूर्वक जानते थे कि यह शरीर तो नाशवान है, क्षण भंगुर है और एक दिन नष्ट होने ही वाला है तो शरीर के मोह में फंसकर तीर्थङ्कर भगवान के धर्म को कैसे छोड़ दें। कामदेव श्रावक की इस निर्भयता की प्रशंसा स्वंय भगवान महावीर ने अपने मुखारविन्द से जन समूह के बीच में की है। उन्होंनें श्रमणों को संबोधित करते हुए कहा कि जब एक श्रमणोपासक भी देवों के द्वारा भयभीत करने पर अपने सत्य धर्म में अडिग रह सकता है तो मुनियों को कितना स्थिर और निर्भय रहना चाहिए।

किंतु भाई निर्भयता जीवन में तभी प्रकट होती है जबकि जीवन में सत्य और अहिंसा विद्यमान हो। यदि जीवन में पाप कालिमा लग रही है और दोषों से आत्मा मलीन बनी हुई है तो उसमें निर्भयता आ ही नहीं सकती। अतः निर्भयता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि जीवन को विशुद्ध बनाया जाय। जीवन में निर्भयता आते ही धर्म में दृढ़ता आ जायेगी और इस तरह यह आत्मा मुक्ति की मंजिल तक भी पहुंच सकेगी। तो पौषध व्रत में देव, मनुष्य और तिर्यञ्चादि के भय से भयभीत होना भी पौषध में दूषण है।

भाई! उक्त कविता की स्व० आचार्य श्री खूबचन्दजी म० ने रचना की है। इसमें पौषध व्रत धारण करने वालों को अठारह दोषों से बचने की सलाह दी गई है। और उसी कविता को मैंने गुरू-महाराज से ज्ञान प्राप्त कर आपके समक्ष रखी है। जो सज्जन पौषध व्रत में लगने वाले इन दोषों को जानकर उनसे बचने की कोशिश करेंगे और शुद्ध निर्मल रूप से पौषध व्रत अंगीकार करेंगे वे शीघ्र ही आत्म-कल्याण कर सकेंगे।

हां! तो सुबाहुकुमार भी पौषध शाला में तेले का तप करके पौषध व्रत लेकर और उसे निर्मलता से पालन करते हुए धर्म जागरणा कर रहे हैं। इस प्रकार पूर्व रात्रि व्यतीत हुई है। पिछली रात्रि में वे इस प्रकार उन्नत विचार करते हैं कि (१) धन्य है वे ग्राम, नगर, आगर, खेड, द्रोणमुख, पट्टन आदि बस्तियां जहां श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी का विचरण हो रहा है! भाई! जहां लोगों का रहन सहन सादगीमय हो, खान-पान मोटा और शुद्ध हो, परिश्रम करके आजीविका उपार्जन करते हों, और विशेष रूप से कृषि पर ही जीवन अवलंबित हो उस छोटी बस्ती को गाम कहते हैं। जहां पशुओं पर कर नहीं लगाया जाता हो और जीवन निर्वाह के उच्चस्तर पर साधन

उपलब्ध होते हों उस बड़ी बस्ती को शास्त्रकारों ने नगर कहा है। उसे आज की भाषा में हम शहर कहते हैं। जहां कई प्रकार की धातुएँ सोना, चांदी, लोहा, कोयला इत्यादि जमीन से निकाली जाती हो उसे आगर कहते हैं। जिस बस्ती के चारों तरफ मिट्टी की दीवार हो उसे खेड कहा जाता है। जैसे भरतपुर के चारों तरफ मिट्टी की दीवार बनी हुई है। जिस बस्ती में जाने आने का जलमार्ग भी हो और स्थल मार्ग भी हो उसे द्रोण मुख कहा जाता है। वर्तमान युग में तो जल, थल और आकाश यों त्रिमुख मार्ग बन गया है। क्योंकि आज कल आप जल मार्ग से जहाज के द्वारा, स्थल मार्ग से रेलगाड़ी, बस, मोटरकार द्वारा और आकाश मार्ग से हवाई जहाज द्वारा एक जगह से दूसरी जगह विचरण कर सकते हैं। जहां सब प्रकार की जीवनोपयोगी वस्तुएँ आसानी से प्राप्त हो सके ऐसी बड़ी बस्ती को पट्टण कहते हैं। प्राचीन समय में जब इस भू-मण्डल पर तीर्थङ्कर भगवान विचरण करते थे तब ऐसी बस्तियां भी थीं जहां सब प्रकार की जीवनोपयोगी वस्तुएँ मिल सकती थीं। शास्त्र में कुंतियावण का अधिकार आता है जिसका अर्थ है कि उस दुकान पर तीन लोक की सब प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त हो सकती थीं। जैसे किसी का पिता मर कर देवता बन गया तो वह अपने पुत्र की दुकान पर किसी भी चीज की कमी होने पर देव शक्ति द्वारा पूर्ति कर देता था। तो सुबाहुकुमार उन सब बस्तियों की तारीफ कर रहे हैं जहां तीर्थङ्कर भगवान के चरण कमल पड़ रहे हैं।

(२) और धन्य हैं वे राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार, सार्थवाह आदि जिन्होंने भगवान की वैराग्यमयी वाणी को सुनकर संसार को असार समझ, धन, वैभव, राज्य सत्ता का परित्याग करके भगवान के समीप दीक्षित हो जाते हैं। धन्य है कि जो राज्य सत्ता को और भोगोपभोग की साधन सामग्री को वमन के समान तुच्छ समझ कर छोड़

देते हैं। करोड़ों की सम्पत्ति का त्याग करते हुए भी उनके मन में रंच मात्र भी विचार नहीं होता। किंतु आज की परिस्थिति का दर्शन कराते हुए खेद होता है कि लोग फटे जूतो का भी मोह नहीं छोड़ सकते, फटे वस्त्र भी गरीबों को देने की इच्छा नहीं होती और कहां तक कहें—अरे! बासी रोटियां भी किसी भूखे भिखारी को देने की हिम्मत नहीं होती। उन्हें भी सुखा २ कर काम में लाई जाती है। जब आपसे इतना छोटा त्याग भी नहीं होता तो जिन्होंने करोड़ों की सम्पत्ति और राज्य वैभव का परित्याग किया है उनके त्याग की महिमा का तो वर्णन कहां तक किया जाय। वास्तव मे उनका महान् त्याग बार २ सराहनीय एवं अभिनन्दनीय है।

(३) फिर सुबाहुकुमार कहते हैं कि धन्य हैं वे श्रावक लोग जो भगवान महावीर की अमृतमयी वाणी सुनकर अपने कानों को सफल बनाते हैं। क्योंकि ऐसी पवित्र तीर्थङ्करों की वाणी श्रवण करने का सौभाग्य मिलना भी अखूट पुण्य का फल है। महान पुण्य के फल-स्वरूप ही भगवान की वाणी सुनने को मिलती है। भाई! वीतराग-वाणी की यह विशेषता है कि यह भव-भव के रोगो का शमन कर देती है। काठियावाड़ के आध्यात्मिक कवि श्रीमद् रामचन्द्रजी ने लिखा है कि जैसे कोई बीमार कुशल वैद्य या डाक्टर के पास जाता है तो वह योग्य निदान करके पहिले उसे विरेचन जुलाब देता है, ऐसा करने से उसके शरीर की शुद्धि हो जाती है। फिर वह बीमारी के अनुसार औषधि या रसायन देता है जिससे वह शीघ्र स्वस्थ हो जाता है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान की वाणी श्रोताजन के जन्म-जन्मांतर में भटकने की असाध्य बीमारी को दूर करने मे विरेचन का काम करती है। वाणी रूपी विरेचन लेते ही विष-कषाय रूपी गन्दगी साफ होकर आत्मा में निर्मलता आने लगती है। हृदय शुद्ध हो जाने पर संयम और त्याग रूपी रसायन से भव-भ्रमण की बीमारी जड़-मूल से नष्ट होकर आत्मा अक्षय सुख-अमरता को प्राप्त कर लेती है।

भाईयों ! आप बैंगलोर निवासियों को भी वीतराग वाणी श्रवण करने का परम सौभाग्य प्राप्त हो गया है। यह शुभ अवसर बार २ हाथ आने वाला नहीं है। अतः इस लाभ से वंचित नहीं रहना चाहिए। क्योंकि तीर्थङ्कर वाणी का कानों में पड़ना भी सौभाग्य की निशानी है किन्तु यह सौभाग्य भी पुण्यशाली आत्माओं को ही मिलता है। देखिए न ! आपका बैंगलोर शहर कितना बड़ा है और लाखों की आबादी है परन्तु थोड़े ही लोग इस पुनीत अवसर का लाभ उठा रहे हैं। दरअसल पुण्यशाली आत्माओं को ही वीतराग देव की वाणी सुनने की इच्छा होती है। जिनके पुण्य में कमी होती है वे ऐसी वाणी को सुनने का अवसर प्राप्त करके भी सुन नहीं सकते। कई लोग धर्म स्थान में आकर भी वीतराग-वाणी को सुनने से प्रमाद या विकथा के कारण वंचित रह जाते हैं। स्व० आचार्य श्री खूब· चन्दजी म० ने आज के युग के श्रोताओं के विषय में लिखा है :—

कोई ऊंघे, कोई पोथी पढ़े, कोई माला फेरे प्रभु नाम की।
कोई चित्त-चंचल दूरा बैठा, बात करे धन धाम की॥
'खूब' कहे ऐसे श्रोता को कथा कही क्या काम की॥

— —

सज्जनो ! श्रोताओं की मनोदशा के विषय में आचार्य श्री ने कहा है कि कोई २ श्रोता ऐसे होते हैं जो व्याख्यान के समय ऊंघते रहते है। दीवार के सहारे बैठ कर झोंके खाया करते है। कोई २ व्याख्यान में दूसरी ही पुस्तक पढ़ने में व्यस्त रहते हैं। कोई २ श्रोता माला ही फेरते रहते है और कोई २ इतने अस्थिर चित्त वाले चंचल परिणामी होते है कि वे व्याख्यान हॉल में दरवाजे के समीप ही बैठते हैं और यही सोचते रहते है कि वे कब व्याख्यान समाप्त हो और कब इस कैद से भागें। कोई २ अपने घर धन्धे की, धन-धाम की

चुपचाप बातें करते रहते हैं। इस प्रकार के लोग अपना अमूल्य समय वीतराग वाणी को नहीं सुनकर व्यर्थ की बातो में व्यतीत कर देते हैं। तो ऐसे श्रोताओं को तीर्थङ्कर वाणी सुनाने से भी क्या लाभ की सम्भावना है। यदि यहां आकर भी उन्हीं सांसारिक प्रपन्चों में फसे रहे तो कोई वास्तविक लाभ नहीं हो सकता। इसलिये श्रोताओं को चाहिए कि यहां आकर एकाग्रचित होकर वीतरागदेव की वाणी को श्रवण करें। क्योंकि यही भवनाशिनी वाणी है। तो सुबाहुकुमार भी ऐसे श्रोताओ को धन्यवाद दे रहे हैं जो सच्चे मायने में वीतराग-वाणी को सुनकर लाभ उठा रहे है।

इस प्रकार सुबाहुकुमार धन्यवाद देते हुए और भावनाओं के प्रवाह में आगे बढकर सकल्प करते है कि:—

जो खुद कृपा करी ने यहां समोसरे जिनराय ॥
तो संयम लेणो सरीरै, जन्म-मरण मिट जाय ॥
धन कुंवर सुबाहु, सफल कर लीनो नर भव अपनो ॥

वे संकल्प करते हैं कि यदि भगवान महावीर विचरण करते हुए यहां पधार जावें तो मै आरम्भ परिग्रह का त्याग करके अनगार बन जाऊं और भगवान के चरण कमलों में अपना जीवन समर्पित कर दूं।

भाईयो! मेरे यहां आने से पूर्व मोरसली और समीन्सरोड़ वालों के विचार भी यही थे कि महाराज श्री यहां पधार जावें तो धारा हुआ कार्य पूर्ण कर दें। किन्तु मेरा तो आप सबसे अब यही कहना है कि यदि हृदय की विशालता रखोगे और उदार दृष्टि से काम लोगे तो कार्य सफल होने में देर नहीं लगेगी। भाई! धर्म कार्य में खर्च किया हुआ पैसा व्यर्थ नहीं जाता। अपितु वट वृक्ष के समान प्रसारित

होकर एक दिन जन समूह को आश्रय देने में समर्थ होता है। अतः लक्ष्मी का सदुपयोग करने का समय आपके सामने है। किंतु लोभ का परित्याग करने से ही यह सुअवसर हाथ में आ सकता है। जो लोभी मनुष्य हैं वे इस संचित धन राशि के वास्तव में मालिक नहीं होते। वे इस धन से भरी तिजोरी के दास अथवा चौकीदार होते हैं। कहा भी है:—

अधर्म से धन नीपजे, सुकृत में नहिं जाय।
ऐसे पापी पुरुष का, माल मसखरा खाय॥

और भी कहा है :—

कीडी संचय तीतर खाय, पापी को धन परलै जाय।

भाई! धनोपार्जन में मनुष्य नाना प्रकार के पाप का आचरण करता है। दिन रात अथक परिश्रम करके धन का संचय किया जाता है। किंतु उस संचित धन को देख २ कर उसके प्रति इतना ममत्व हो जाता है कि न वह उसे खाने-पीने के उपयोग में लाता है और न उसका धर्म कार्य मे ही सदुपयोग करता है। ऐसे लोगों की संपति का उपयोग फिर दूसरे ही करते है। वे तो जोड २ कर मर जाते हैं और उनके बाद उसका मजा दूसरे ही लेते हैं। भाई! इस धन की भी तीन गति है:— उपभोग, दान और नाश। अब या तो इससे भोगोपभोग कर लो या शुभ कार्यों में दान में दे दो। अन्यथा तीसरी गति नाश तो होने ही वाली है। इसलिए कमाए हुए धन का सदुपयोग भी करना चाहिए।

भाई! जिस प्रकार भोजन करने के पश्चात् चूरन खालेने से भोजन हजम हो जाता है और अजीर्णादि रोगों का प्रादुर्भाव नहीं होने पाता है उसी तरह धनोपार्जन कर लेने के बाद यदि दान रूपी चूरन

का सेवन कर लिया जायं तो उस धन का भी सदुपयोग हो जाता है और धन का अजीर्ण नहीं होने पाता है। अन्यथा सरकार तो नाना प्रकार के टेक्स लगाकर उसमें से कुछ धन छीन ही लेगी। इसलिए परलोक में भी सुखी होने की भावना से धनराशि का उदारतापूर्वक सदुपयोग कर लेना चाहिए।

यह धन भी नाशवान है। इस लक्ष्मी को ज्ञानियों ने चंचला कहा है और वैश्या की उपमा दी है। इस धन को समय पाकर सरकार छीन लेती है, वकील डाक्टर ले लेते हैं;प्रकृति के विविध प्रकोपों से भी एक झटके में अपार धन राशि नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसे पाप करके इस धन को कमाया है तो इस पाप की गठरी को दान देकर हल्की करलो। अन्यथा यह आत्मा इस पाप रूपी बोझ से भारी होकर रसातल की ओर ही जायेगी। आशा है, आप इस पर मनन करेंगे और अपने धन का सही रूप में सदुपयोग करेंगे।

ऋषभ-चरित्र

═══

ऋषभ भवन्तरी :

भगवान ऋषभदेव भी अपने पूर्वभवों की विविध साधनाओं द्वारा तीर्थङ्कर पद के अधिकारी बने हैं। तीर्थङ्कर पद की प्राप्ति भी सहज में ही नहीं हो जाती। इसके लिए भी जन्म जन्मान्तर में की गई साधना आवश्यक होती है। भ० ऋषभदेव ने पूर्व जन्मों में तीर्थ-ङ्कर बनने वाले बोला की अराधना की और फिर कई भवोंमें साधना करते हुए तीर्थङ्कर पद को प्राप्त किया। भगवान के उन्ही पूर्वभवों का वृत्तान्त आपको सुनाया जा रहा है। आशा है ध्यान पूर्वक सुनते हुए अपनी आत्मा में उन उच्च गुणों को लाने की कोशिश करेंगे।

प्रथम भव :

हां! तो इसी जंबूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में सुपइट्ठ नाम का नगर साक्षात् देवपुरी के समान था। वहां प्रियंकर नाम का राजा राज्य करता था। उसी शहर में धन्ना नाम का सार्थवाह रहता था। वह बड़ा ऋद्धिशाली था। एक समय धन कमाने की लालसा में धन्ना सार्थवाह, बहुत से व्यापारियों के साथ जलयान द्वारा सुपइट्ठ नगर

से विदेश के लिये रवाना हुआ। रास्ते में कई जगह विश्रान्ति लेते हुए जब चातुर्मास काल सन्निकट आ गया तो वह एक नगर में ठहर गया। वहां धर्मसूर्य का प्रकाश फैला हुआ था। वीतराग वाणी सुनने का भी सुअवसर प्राप्त हो गया था। धर्म-मार्ग का निरुपण कराने वाले तपस्वी मुनिराज का शुभ संयोग भी वहां के निवासियों को प्राप्त था। धन्ना सार्थवाह ने इस संयोग से अपने आपको सौभाग्यशाली समझा। एक समय चातुर्मासी के पारणे की भिक्षा के निमित्त एक मुनिराज को सार्थवाह ने अपने घर की ओर आते हुए देखा। वे भक्ति-भाव से. उत्साह भरे हृदय को लेकर मुनिराज के सामने स्वागत के लिये सात-आठ कदम आगे गए। मुनि को उन्होंने वन्दन-नमन किया और आह्लादित मन से उन्हें अपनी भोजनशाला में लाए। उन्होंने चढ़ती हुई परिणामों की धारा से मुनिराज के पात्र में अपने हाथों से घृत को दान दिया। एक देवता ने सेठ की परीक्षा लेने के निमित्त मुनिराज की दृष्टि बांध दी। दृष्टि बंध जाने से मुनिराज को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पात्र में घी स्वल्प मात्रा में ही आया है। जबकि वह घी पात्र से बाहर निकलने लगा था। किन्तु दातार सेठ की चित-वृत्ति में इतनी विशुद्धता आ चुकी थी-घृत पात्र के बाहर नदी के रूप में बह जाने के उपरान्त भी वे यही समझ रहे थे कि मेरे द्वारा दिया जाने वाला दान सुपात्र में ही जा रहा है। इस चढ़ती हुई परिणाम धारा की निर्मलता के फल-स्वरुप धन्ना सार्थवाह तीर्थङ्कर गौत्र को प्राप्त करने का फल उपार्जन करने लगा। देवता ने यथा-तथ्य रूप में सेठ की दान भावना को देख कर मुनि की दृष्टि खोलदी। मुनि दान लेकर धर्म स्थान को लौट गए। चातुर्मास काल समाप्त होने के पश्चात सेठ ने वसंतपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। वहां क्रय-विक्रय द्वारा अपार धनराशि संपादन करके पुनः जहाज द्वारा सुपइट्ठ नगर को लौट आया। जीवन का शेष काल धर्माराधन करते हुए आनन्द पूर्वक व्यतीत किया।

द्वितीय-भव :

कालान्तर में धन्ना सार्थवाह आयुष्य पूर्ण करके उत्तर कुरु क्षेत्र में युगलिक रूप में उत्पन्न हुआ। कल्प वृक्षों की छत्र छाया में मनोकामनाएँ पूर्ण करते हुए जीवन काल को व्यतीत किया।

तृतीय भव :

युगलिक भव को पूर्ण करके यथा समय प्रथम देवलोक में देवता रूप में उत्पन्न हुए। वहां देवाङ्गनाओं के साथ सुखोपभोग करते हुए जीवन के लम्बे समय को व्यतीत किया।

चतुर्थ भव :

प्रथम देव लोक से च्यव कर धन्ना सार्थवाह का जीव पूर्व महाविदेह की पुष्कलावतीविजय में सत्यबल नाम के राजा के यहां महाबल कुमार के रूप में उत्पन्न हुआ। महाराज सत्यबल के परलोक सिधार जाने के पश्चात् महाबल कुमार का राज्याभिषेक हुआ और महाबल राजा घोषित होगए। राजा बन जाने के पश्चात् महाबल राज्य की सुन्दर व्यवस्था करते हुए विषय भोगों में आनन्द पूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

एक समय महामंत्री ने हाथ जोड़कर महाबल राजा से कहा कि स्वामिन्! इन विषय भोगों से विरक्ति लेकर आत्म साधना करने का समय आ चुका है। अब आपका आयुष्य केवल एक महिने का ही अवशिष्ट रह गया है। मंत्री की इस भविष्यवाणी को सुनकर महाबल राजा स्तंभित रह गया। उसने पूछा कि मंत्रीवर! यह भविष्य वाणी तुमने कब और किसके मुँह से सुनी? महामंत्री ने कहा महाराज! मैं अभी अभी विद्याचरण मुनिराज की सेवा में उपस्थित हुआ था, उन्हीं मुनिराज ने आपके भविष्य के सम्बन्ध में संकेत किया है।

राजा ने निश्चय पूर्वक इस भविष्य को सुनकर महामंत्री से कहा कि मैं इतने स्वल्प समय में कर ही क्या सकता हूँ! महामंत्री ने महाराज को उत्साहित करते हुए कहा, महाराज! जीवन सुधार के लिए एक महीना तो क्या एक दिन भी पर्याप्त होता है। एक दिन के शुद्ध चारित्र्य पालन से भी यह आत्मा स्वर्ग की अधिकारिणी बन सकती है। महाराज! आप हताश न हों, निराश न हों! आपको तो सद्गति प्राप्त करने के लिए काफी समय मिल गया है। ज्ञानी पुरुषों ने कहा है:—

संयम की एक घड़ी, क्रोड वर्ष गृह वास।
बारिश की एक घड़ी, रेंठज बारह मास॥

अर्थात्—करोड़ वर्ष पर्यन्त गृहस्थाश्रम में रहने पर भी जो आत्म सिद्धि प्राप्त नहीं होती वह एक घड़ी के शुद्ध चारित्र के पालन करने से हो जाती है। किसान की खेती जो बारह मास पर्यन्त कुए से पानी पिलाने पर लहलहाती है उसी फसल को उपजाऊ बनाने में बरसात की एक घड़ी ही पर्याप्त है।

महामंत्री के मुँह से निकले हुए उत्साह वर्धक शब्दों को सुनकर महाबल के जीवन में वैराग्य भावना का संचार हो गया। आठ दिन मे शासन व्यवस्था करके उन्होंने मुनि व्रत अंगीकार कर लिया। और उसी दिन से अनशन व्रत धारण कर शरीर से भी ममत्व हटा लिया। इस प्रकार आत्मा की आलोचना करते हुए बाईस दिन दीक्षा पर्याय पाल कर काल समय काल करके दूसरे देव लोक में ललितांग नाम के देव बने।

वहां स्वयंप्रभा देवी के साथ अत्यन्त प्रगाढ स्नेह हो गया। बहुत समय तक वे काम भोग में तल्लीन रहे। कालान्तर में स्वयंप्रभा

का च्यवन हो गया। स्वयंप्रभा देवी के वियोग से ललितांग को अत्यन्त दु.ख हुआ। वह सदैव उदासीन रहने लगा। ललितांग के पूर्वभव का महामन्त्री भी धर्म करनी करके दूसरे देवलोक में देवता बन चुका था। जब उसने ललितांग को चिंतित दशा में देखा तो उसे बहुत समझाया और आश्वासन दिलाया कि वह तुझे अवश्य मिला देगा। क्योंकि उद्यम करने से प्रत्येक असंभव कार्य भी सफल हो जाता है।

इधर स्वयंप्रभा देवी के सम्बन्ध में कहा जा रहा है। धातरी खंड के पूर्व महाविदेह में नागल नाम का ब्राह्मण रहता था। उसके नागश्री नाम की भार्या थी। नागश्री के अभी तक छह लड़कियां थी। जब वह पुनः गर्भवती हुई तो नागल ब्राह्मण शोक सागर में डूब गया। उसने दृढ़ विचार और संकल्प कर लिया कि यदि इस बार भी नागश्री ने पुत्री को जन्म दिया तो वह हमेशा के लिए परदेश चला जायगा। वह अपनी लड़की का मुँह भी नहीं देखेगा। उसकी इस दृढ प्रतिज्ञा का एक कारण गरीबी भी था। भाई ! गरीबी मनुष्य को कृत्या-कृत्य का भान भुला देती है उसकी विचार शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

ब्राह्मण का दुर्भाग्य था कि इस बार भी नागश्री के गर्भ से लड़की पैदा हुई। स्वयंप्रभा का जीव ही दूसरे देवलोक से च्यव कर नागश्री के गर्भ से लड़की के रूप में उत्पन्न हुआ। ज्योंही नागल ने पुत्री जन्म के समाचार सुने त्योंही वह खिन्न मन से प्रतिज्ञा के अनुसार परदेश के लिए रवाना हो गया। नागश्री को भी लड़की के जन्म लेने और पति के परदेश चले जाने से अत्यन्त दु:ख हुआ। उसका मन उदासीन रहने लगा। इसी चिन्ता के कारण उसने अपनी लड़की का नाम रखना भी अनुचित समझा। जब लड़की का नाम ही बेनाम था तब लोगों ने उसे निर्नामिका के नाम से बुलाना शुरु कर

दिया। कुछ काल पर्यन्त नागश्री अपनी बच्चियों का जैसे तैसे पेट-पालन करती रही। और एक दिन सबको छोड़कर हमेशा के लिए परलोक सिधार गई। नागश्री की छहों लड़कियां विवाहित होकर ससुराल चली गई। अब सूने घर में केवल निर्मानिका टिमटिमाती लौ के रुप में बाकी थी। माता के परलोक सिधार जाने से और गरीबी के कारण निर्मानिका का पेट भरना भी दूभर हो गया। फिर भी पेट की आग ने उसे जंगल से घास-लकड़ी वगैरह लाकर नगर में बेचने के लिए बाध्य कर दिया। कई दिनों तक इस प्रकार आजीविका के उपार्जन का कार्य क्रम चलता रहा। किन्तु दुःख के बादल भी कभी सुख में बदल जाते हैं।

किसी समय उसी जंगल में एक महामुनि को केवलज्ञान प्रकट हो गया। केवली भगवान के केवलज्ञान की महिमा करने के लिए देवताओं का शुभागमन हुआ। बड़ी धूम धाम से देवता लोग केवल-ज्ञान महोत्सव मनाने लगे। इस महोत्सव का आनन्द लूटने के लिए निर्मानिका भी सम्मिलित हो गई। भगवान केवली ने धर्मोपदेश दिया। सबने उल्लास भरे हृदय से मन को केन्द्रित करके धर्मोपदेश को सुना। उपदेश पूर्ण हो जाने के पश्चात् सब देवता भगवान को वन्दन-नमन करके अपने स्थान को लौट गए। केवली भगवान के उपदेश को सुनकर निर्मानिका मन वैराग्य से परिपूर्ण हो गया। उसने भगवान से बारहव्रत अंगीकार कर लिए। मुनिराज को वन्दन-नमन करके वह शहर में लौट आई और उसी दिन से वह साध्वियों की सेवा में रहकर ज्ञान-ध्यान में अपना समय व्यतीत करने लगी। भाई! मनुष्य के सच्चरित्र धर्म क्रियाओ का प्रभाव देखने वालों पर पड़े बिना नहीं रहता। उसकी धर्म क्रियाशीलता से प्रभावित होकर सेवा भावी उसकी सेवा सुश्रुषा करने लगे। निर्मानिका श्राविका का तप-त्याग दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। एक समय शरीर पुद्गलों

की शक्ति को क्षीण होता हुआ देख उसने पापों की आलोचना करके अनशन-व्रत अंगीकार कर लिया। वह आत्म चिंतन में लीन हो गई।

किसी समय महा-मन्त्री देवता ने अपने ज्ञान में देखा तो मालूम हुआ कि स्वयंप्रभा का जीव निर्मानिका के रूप में अनशन कर रहा है। अपने वायदे को पूरा करने की दृष्टि से उसने ललितांग को उसकी प्रिया के सम्बन्ध में सब कुछ कह दिया। साथ ही उसे कहा कि तुम जाकर मीठे शब्दों में समझाकर, ललचाकर नियाणा करने के लिए बाध्य करो। यह शुभ समाचार सुनकर ललितांग देव बड़ा प्रसन्न हुआ। वह सीधा निर्मानिका के पास आया, पूर्व वृत्तान्त सुनाया और ललचाकर उसे नियाणा करने के लिए प्रोत्साहित कर दिया। वह पुनः अपने स्थान को लौट आया। स्वयंप्रभा ने भी पुनर्मिलन के लिए नियाणा किया और फलस्वरूप आयुष्य पूर्ण करके वह भी पुनः दूसरे देवलोक में स्वयंप्रभादेवी के रूप में उत्पन्न हुई। इस प्रकार दो प्रेमियों का पुनः सुखद् मिलन हो गया। दोनों ही दिव्य भोग भोगते हुए समय व्यतीत करने लगे।

हां! तो भगवान ऋषभदेव का जीव किसी समय ललितांग नामक देवता के रूप में था। स्वयंप्रभा नामक देवी के अनुराग में विशेष अनुरक्त था। संयोग वश स्वयंप्रभा का पुनः च्यवन हो गया ललितांगदेव इस जुदाई से पुनः दुखी हो गए।

स्वयंप्रभा स्वर्ग से च्यवन कर चक्रवर्ती सम्राट के यहां पैदा हुई। उसका नाम श्रीमती रखा गया।

उधर ललितांगदेव भी स्वर्ग से च्यवन कर स्वर्णजंग राजा के यहां लक्ष्मी नाम की रानी की कूंख से उत्पन्न हुआ। उसका नाम वज्रजंग रखा गया।

एक समय श्रीमती ने आकाश मार्ग से जाते हुए विमान को देखा। उसे देखकर उसे स्मरण हुआ कि मैंने कहीं ऐसा विमान देखा है। इस प्रकार विचार करते २ उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया और अपने पूर्व भव को जान लिया। वह अपने पूर्व पति ललितांग की याद में विह्वल हो गई। उसने अपना चित्र एक लकड़ी के पाटिए पर बनवाकर महल की दीवार पर लगवा दिया। उसने यह उपाय अपने पति की तलाश में ही किया था। जो कोई इस चित्र को देखकर 'स्वयंप्रभा' स्वयंप्रभा' बोल उठेगा वही उसके पूर्व भव का पति समझा जावेगा।

किसी समय चक्रवर्ती सम्राट की वर्ष गांठ का महोत्सव मनाया जा रहा था। एक विशाल मैदान में शानदार मण्डप तैयार करवाया गया था। अनेक राजा,महाराजा और राजकुमारों को निमंत्रण दिया गया था। यथा समय सभी महमान उत्सव में सम्मिलित होकर यथा स्थान पर बैठ गए। राजकुमार वज्रजंग भी उत्सव में सम्मिलित हुआ था। चक्रवर्ती भी वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर सिर पर छत्र धारण करता हुआ अपने सिंहासन पर आकर बैठ गया। सभा मण्डप में विविध प्रकार के नाच, गानों का आयोजन हुआ। वर्ष गांठ की खुशी में सभी ने नजराने भेंट किए और बदले में चक्रवर्ती ने भी किसी २ को उपाधियों से मण्डित किया और किसी को हाथी, घोड़ा, पारितोषिक में दिया। वर्ष गांठ के आनन्द महोत्सव का कार्य-क्रम पूर्ण करके सभी राजा-महाराजा चक्रवर्ती सम्राट के साथ गाजे-बाजे के साथ महल की ओर आए। जुलूस की शोभा अवर्णनीय थी। भाई ! चक्रवर्ती सम्राट के जुलूस की शोभा का क्या कहना।

किसी समय हम भी विचरते हुए जोधपुर पहुंचे। उस समय वहांके राजकुमार हनुवन्तसहिंजी के विवाह का जलूस निकल रहा था। करीब बीस–पच्चीस हजार की संख्या में नर-नारी बाहर से

उस जुलूस को देखने के लिए आए होंगे। तो उस जुलूस को देखकर भी लोग आपस में चर्चा करते थे कि ऐसा जुलूस तो हमने पहिले कभी नहीं देखा।

जब आज कल के राजकुमार के जुलूस की शोभा भी मनुष्य को आश्चर्य में डाल देती है तब चक्रवर्ती सम्राट के भव्य जुलूस की शोभा का वर्णन तो कैसे किया जा सकता है ? वास्तव में वह शोभा अवर्णनीय थी।

वह जुलूस महल में जाकर समाप्त हुआ। चक्रवर्ती सम्राट समस्त राजाओं के साथ महल में गए। महल में प्रवेश करते हुए वज्र जंघ की दृष्टि उस चित्र पर पड़ी। ज्योंही उसने स्वयंप्रभा के चित्र को देखा तो उसे अपना पूर्वभव याद आ गया। वह सहसा बोल उठा 'स्वयंप्रभा' 'स्वयंप्रभा'। ये शब्द पर्दे के भीतर बैठी हुई राजकुमारी श्रीमती के कान में पड़े। उसने जान लिया कि ये ही मेरे पूर्वभव के पति हैं। उसने दासी के द्वारा वज्रजंघ के सम्बन्ध में आवश्यक सब जानकारी प्राप्त करली।

अब किस प्रकार राजकुमारी अपने विवाह के संबन्ध में अपने माता पिता से कहती है और कैसे विवाह होता है, यह आगे सुनने से मालुम होगा।

भाई ! पुण्य योग से सभी शुभ संयोग बिना प्रयास के ही मिल जाया करते है। जिसको जिसकी सच्चे हृदय से चाह होती है वह भी पुण्य बल से वहां पहुँच जाता है। पुण्य से सुख सामग्री प्राप्त होती है। इसलिए यदि आप भी सुखाभिलाषी हैं तो धर्म का आचरण करिए जो धर्म का आचरण करेंगे वे इस लोक तथा परलोक मे भी सुख को प्राप्त करेंगे।

बैंगलौर }
३०-७-५६ }

समय का सदुपयोग

> वक्त्रं क्व ते सुरनरोरग नेत्र
> निःशेष निर्जित जगत्त्रितयोपमानम् ।
> बिम्बं कलंक मलिनं क्व निशाकरस्य,
> यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम् ॥

卐

भक्तामर स्तोत्र की रचना भगवान ऋषभदेव के गुणानुवाद में आचार्य मानतुङ्ग ने की। इस काव्य रचना से राजा भोज को ही नहीं अपितु ससार में जन समूह को जैन धर्म के सिद्धांतों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गई। भाई! एक एक श्लोक पर एक एक ताले का टूटते जाना और अन्तिम श्लोक पर सर्व लोह बन्धनों से मुक्त हो जाना भी सामान्यतः दर्शकों को अत्यन्त आश्चर्य में डाल रहा था। वे इसे ही सर्वोपरि आश्चर्य जनक चमत्कार मान रहे थे। किंतु जैन-धर्म और भी गहराई में जाकर कहता है कि इससे भी अधिक विस्मय कारक चमत्कार तो यह है कि जिनेन्द्र देव की शुद्ध हृदय से भक्ति करने से भव-भव के संचित कर्मों के कठोर बंधन भी क्षण मात्र में छिन्न भिन्न हो जाते हैं। वह भक्त से भगवान और नर से नारायण बन जाता है। इससे आपको मालूम होना चाहिये कि तीर्थङ्कर भगवान के नाम स्मरण में कितनी आश्चर्य जनक शक्ति है?

उक्त भक्तामर स्तोत्र के तेरहवें श्लोक में आचार्य महाराज भ० ऋषभदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो ! यदि हम आपको चंद्रमा की उपमा दें तो वह भी घटित नहीं होती। क्यों कि कहां तो आपके मुखारविन्द की सुन्दरता और कहां कलंक से मलीन बना हुआ चन्द्रमा ! आपके मुख-मण्डल की कान्ति सदैव एक सरीखो रहती है। परन्तु चन्द्रमा तो दिन में ढाक के पत्ते की तरह कान्ति हीन दृष्टिगोचर होने लगता है। दूसरे चन्द्रमा में तो कलंक है किन्तु आपका मुख सर्वथा निष्कलंक और सदैव सौम्यभाव से प्रकाशमान रहता है। अतः आपके मुख-मण्डल को चन्द्रमा की उपमा देना भी असंगत है। अब यदि आपके मुखमण्डल को कमल की उपमा दें तो कमल की उपमा भी ठीक प्रतीत नहीं होती क्योंकि कमल तो सायं-काल होते ही मुरझा जाता है और रातभर मुरझाया सा रहता है परन्तु आपके मुख-मण्डल की आभा सदैव खिली रहती है। उसपर हमेशा एक सरीखी सौम्यता झलकती रहती है अतएव कमल की उपमा भी उचित नहीं है। यदि स्वच्छता की दृष्टि से आपके मुख-मण्डल को दर्पण की उपमादें तो वह भी संगत नहीं है। क्योंकि दर्पण भी मलिन हो जाता है, उसकी स्वच्छता रजकणों से आच्छादित हो जाती है परन्तु आपका मुख-मण्डल कदापि मलिन नहीं होता। वह सदैव स्वच्छ-निर्मल प्रतीत होता है। अतएव दर्पण की उपमा भी घटित नहीं होती। इस प्रकार संसार में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसकी उपमा आपके मुख-मण्डल से दी जा सके। अतः आपका मुख-मण्डल उपमा से रहित है।

भगवान ऋषभदेव के मुख-मण्डल की अनुपमेय सुन्दरता बड़े २ देवता, भवन्यति, वाण-व्यन्तर, वैमानिक, ज्योतिषी एवं नागकुमार आदिके तथा सुन्दर से सुन्दर मनुष्यों के नेत्रों को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। वे सभी देव-देवियां, राज-रानियां और

सकल जन समूह भगवान की अलौकिक सुन्दरता का रस-पान करते २ नहीं अघाते थे। वे अनिमेष दृष्टि से भगवान के सौन्दर्य को निरखा करते थे। सुहाने मुख-मण्डल की इस अलौकिक सुन्दरता का एक मात्र कारण उनके अन्तःकरण की निर्मलता एवं विशुद्धता थी। और इसी निर्मलता और शुद्धता के फल स्वरूप उनके मुख-मण्डल की आभा इतनी चमक गई थी कि बारह प्रकार की परिषदा टकटकी लगाकर भगवान के मुख-मण्डल को निरखते हुए एक असीम आनन्द का अनुभव करती थी। ऐसे असीम सौन्दर्य के देवता भगवान ऋषभ-देव थे। उन्हीं को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

मंगलमय तीर्थङ्कर देव और महान् उपकारी गणधरों ने हमारे लिए प्रशस्त मार्ग प्रदर्शित कर दिया है। उन देवाधिदेवों के द्वारा बताए हुए मार्ग का अनुसरण करके मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। हमारा यह परम सौभाग्य है कि हमें तीर्थङ्कर जैसे देव, कंचन कामिनी के त्यागी, पंच महा व्रतधारी गुरु और तीर्थङ्कर द्वारा प्ररुपित किया हुआ अहिंसामय धर्म प्राप्त हुआ है। इन सब दुर्लभ संयोगों का संयोग हमें प्रबल पुण्य से सहज भाव में प्राप्त हो गया है। इसलिए हम सबको इस स्वर्ण अवसर का सम्यक लाभ उठाते हुए समय का सदु-पयोग करना चाहिए।

भाई ! सुबाहुकुमार ने इस स्वर्ण अवसर के महत्व को समझा था इसीलिए वह धर्म की अराधना में लीन है। उसने पौषधशाला में जाकर पौषधव्रत लेकर धर्म जागरण करते हुए, शुभ संकल्प करते हुए रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल विधि सहित पौषधव्रत पूर्ण करके अपने घर लौट आया।

भगवान महावीर की सर्वज्ञता, सर्व दर्शिता में तीन लोक के सभी रहस्य स्फटिक मणि के समान स्पष्टतः प्रतिभासित होते हैं।

सुबाहुकुमार के शुभ संकल्प को भी भगवान महावीर ने जान लिया। वे ग्रामानुग्राम विचरते हुए हस्तिशिखर नगर के बाहर जहां पुष्पक-रंडग उद्यान था तथा कृतवनमोल यक्ष का यक्षायतन था वहां पधारे और विराजमान हुए।

भगवान के शुभागमन की सूचना प्राप्त होते ही नगरनिवासियों की खुशी का पार नहीं रहा। राजा और प्रजा सब भक्तिभाव से प्रेरित हुए भगवान के दर्शनों के लिए उमड़ पड़े। सुबाहु कुमार के आनन्द का तो कहना ही क्या था। उनकी मनोकामना ने तो साकार रूप धारण कर लिया था अतः वे अत्यधिक प्रसन्न हुए? वे भी रथ में बैठकर प्रभु के दर्शन के लिए गए। समवसरण में हजारों नर-नारियों का समूह बैठा हुआ दर्शनपान तथा उपदेशामृत का पान करता हुआ अपने भाग्य को सराह रहा था। भगवान ने धर्म देशना करते हुए मानव-जीवन के सुधार की कुञ्जी श्रोताजनों के सामने रखी। भाई! आपको मालूम है कि जिसकी दूकान में जैसा माल होता है वह वैसा ही माल ग्राहकों के सामने रखता है। कवि तेजमल जी ने भी एक पद्य में इसी विषय की पुष्टि में कहा है:—

बजाजी दुकान पर कपड़ा मिलत अरु,
पंसारी दुकान पर परचूनी पावे है।
सर्राफी दुकान पर गहनो लाधत अरु,
वैद्य की दुकान पर औषधि बतावे है॥
सोनी की दुकान पर घड़नो लाधन अरु,
कंदोई दुकान पर मीठो मन भावे है॥
तेजमल कहे ऐसी दुकान अनेक जग,
धर्म की दुकान पर शिव पंथ पावे है॥

जैसे किसी कपड़े वाले की दूकान पर जायें तो वह तरह २ की डिजाइनों के रंग-बिरंगे कपड़े दिखाएगा। सर्राफ की दूकान पर जाने पर आपको तरह २ की सोने चांदी की चीजें देखने को मिलेंगी। वैद्य की दूकान पर हर बीमारी की दवा मिलेगी। हलवाई की दूकान पर तरह २ की मिठाइयां सजी हुई देखने को मिलेगी। यदि सुनार की दूकान पर जायेंगे तो तरह २ के सोने चांदी के जेवर तैयार होते हुए दिखाई देंगे। जैसे आपको सांसारिक दूकानों पर संसार की आवश्यकता से ताल्लुक रखने वाली चीजें प्राप्त होती है ठीक इसी प्रकार धर्म की दूकान के विषय में भी समझना चाहिए। धर्म की दूकान पर आपको शिवपुरी अर्थात् मोक्ष में जाने के नानाविध साधन जानने को मिलेंगे। तो भगवान महावीर भी हस्तिशिखर नगर से बाहर उद्यान में धर्म की दूकान लगाकर विराजमान है। उनकी दूकान पर एक राजा, महाराजा से लेकर एक निर्धन भी जाकर बिना पैसे के माल खरीद सकता है। एक पापी से पापी चोर डाकू भी निर्भयता पूर्वक माल खरीदने का अधिकार रखता है। भगवान सबको अभेद भाव से अपना 'अनमोल माल दिखाते हैं। आज उनकी दूकान पर हस्तिशिखर के राजा, प्रजाजन तथा सुबाहुकुमार आदि ग्राहकों के रूप में माल खरीदने को आए हैं। भगवान उन सब श्रोताजनों को अनमोल माल के गुणों का परिचय कराते हुए बेंच रहे हैं।

भाई! हम भी आपके सामने भगवान महावीर की दूकान का ही माल खोल-खोल कर दिखा रहे हैं। यह माल हमारा अपना नहीं है। यह सब कुछ भगवान का ही माल है। किन्तु हम तो केवल उस को खपाने वाले आढतिए हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम उस माल को आपके सामने रखें। आप सब ग्राहकों को अपनी अपनी पसन्द का माल छांट कर ले लेना चाहिए। क्यों कि यह समय बड़ा अनमोल है। हमको और आपको दोनों को ही इसका सदुपयोग करना चाहिए

गया हुआ अनमोल समय पुनः लौटकर आने वाला नहीं है। अतः जो भी वस्तु आप खरीदना चाहें, शीघ्रता से खरीद लें। यदि आप विचार ही विचार में रह गये तो यह चार माह का अनमोल समय हाथों से निकल जाएगा और आप फिर हाथ मलते ही रह जाएँगे। अतः आप समझदार व्यापारियों को मैं अधिक क्या कहूँ। इतना ही कह देना पर्याप्त समझता हूँ कि यदि आप जीवन के क्षण आनन्द पूर्वक व्यतीत करना चाहते है तो इस अनमोल माल को खरीदने में विलंब न करें।

श्रमण भगवान महावीर ने उपस्थित जन समुदाय को धर्मोपदेश देते हुए कहा कि हे भव्यात्माओं ! तुम्हारा परम सौभाग्य है कि यह मानव-जीवन रूपी चिन्तामणी रत्न तुम्हारे हाथ लग गया है। यह मानव जीवन रूपी रत्न तुमको चार गति और चौरासी लाख जीव योनियों में परिभ्रमण करने के पश्चात् अनन्त पुण्योदय से प्राप्त हुआ है। अनन्त काल पर्यन्त इस आत्मा ने वनस्पती में, निगोद अवस्था में व्यतीत किया है,असंख्य काल तक यह पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, आदि एकेन्द्रिय जीव के रूप में रहा है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, और संज्ञी पंचेन्द्रिय, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के रूप में अनेक प्रकार की यातनाएँ सहन करने के पश्चात् इसे संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य का भव प्राप्त हुआ है। यह मनुष्य का शरीर मिलना परम दुर्लभ है। प्रबल पुण्य के उदय होने पर ही यह मनुष्य का चोला प्राप्त होता है। इस मनुष्य शरीर के लिए देवता असुर भी तरसते रहते हैं। जब कि तुम को यह नर तन सहज भाव में प्राप्त होगया है। इसलिए इससे धर्म का आचरण करके इसका सदुपयोग कर लो। क्यों कि संसार चक्र से पार होने का दरवाजा मानव भव ही है। अन्य किसी भी योनि से, किसी भी गति से मोक्ष की प्राप्ति होना संभव नहीं है। इस चक्रव्यूह से पार होने की मानव में ही शक्ति है।

वह पुरुषार्थ करके संसार सागर से पार हो सकता है। अतः इस मानव देह से धर्माचरण के लिए पुरुषार्थ करो। यदि यह अनमोल समय तुमने प्रमाद और संसार के भोगोपभोग में गवां दिया तो बाजी जीत कर भी हारे हुए समझे जाओगे। ससार सागर में भटकते हुए तुम्हें यह धर्म का जहाज हाथ आगया है। इसका आश्रय लेने से तुम सहज ही परले पार हो जाओगे। अन्यथा संसार सागर में डूबने के सिवाय और कोई चारा नहीं रहता है। अतएव धर्म का आचरण करके अपने अनमोल नर भव को सफल बना लो।

हे मोक्षाभिलाषियों! जिसे तुम सुख मान बैठे हो वह वास्तविक सुख नहीं है। वह तो सुखाभास है। इन्द्रियों का सुख क्षणिक है। ये जितने भी खाने पीने, महल, बाग बगीचे, राज्य, धन, वैभव, कुटुंब कबीलों के सुख हैं ये सब देखते देखते बिरला जाने वाले हैं। ये काल्पनिक सुख क्षण भर के लिए तो शहद भरी तलवार के मानिन्द आनन्द पहुंचा देते हैं परन्तु अन्त में ये ही भयंकर दुख का परिणाम बन जाते है। जैसे अभी २ आपने नाना प्रकार के मिष्ठान्न खाए और ऊपर से चरपरे भुजिए खा लिये तो थोड़ी देर के लिए तो जबान को स्वाद लगा किंतु बाद में परिणाम क्या होता है, यह आप जानते ही हैं। पेट में जलन होने लगती है, पेट में गड़बड़ मच जाती है और लोटा लेकर शौच के लिये जाना पड़ता है। फिर तरह २ की बीमारियां अजीर्ण, पेचिश, मन्दाग्नि आदि उत्पन्न हो जाती हैं। शरीर का स्वास्थ्य बिगाड़ कर रोग शैया पर सोने की नौबत आ जाती है। कहिये इस जबान के थोड़े से स्वाद के खातिर कितना नुकसान उठाना पड़ता है।

इसी तरह आप जरी, मखमल या रेशम के कीमती वस्त्र पहिनते हैं और बाजार में बड़े अभिमान से निकलते हैं। परन्तु सिगरेट,

बीडी या चिलम पीते हुए जरा सी चिनगारी कहीं अचानक गिर पड़ी और कपड़ा जल गया तो थोड़ी देर पहिले जो सुखानुभव कर रहे थे वह एक दम कपूर की भांति उड़ जाता है और चिन्ता हो जाती है। आपको विचार होने लगता है कि अरे! अभी तो सैकड़ों रुपए खर्च करके यह शेरवानी या कोट तैयार करवाया था और पहिन कर पूरा आनन्द भी नहीं उठा पाए कि जल गया।

भाई! पौद्गलिक सुखों का यही हाल है। शास्त्रकार कहते हैं कि

खणमित्त सुक्खा, बहुकाल दुक्खा,
पगाम दुक्खा, अनिगाम सुक्खा।
संसार मोक्खस्स, विपक्ख भूया,
खाणी अणत्थाण हु काम भोगा॥

उ. सू. १४. अ. १३. गाथा

संसार के सामान्य प्राणी यद्यपि काम-भोगों की उपलब्धि में सुख का अनुभव करते हैं किन्तु ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में ये काम-भोग अनर्थकी खान हैं। हां! क्षण-मात्र के लिए अवश्य सुखरूप मालुम होते हैं किन्तु अनन्तकाल के लिए दुखदायी हो जाते हैं। इसमें सुख तो थोड़ा है परन्तु दुःख का पारावार नहीं है। ये काम-भोग मोक्ष मार्ग के विपक्षी हैं। इसलिए सुखाभिलाषियों को चाहिए कि इन काम-भोगों से विरक्ति लेकर धर्म का आचरण करें।

हे मानवो! यदि तुम इस संसार-चक्र से बाहर निकलना चाहते हो तो यह सुनहरा मौका तुम्हें प्राप्त हो गया है और इस दरवाजे से तुम बाहर निकल सकते हो। इसलिए यदि तुम वास्तव में चारगती चौरासी लाख जीव योनि रूप संसार के दुःख से विकल हो गए हो तो विषय-भोगों को त्यागकर संयम का मार्ग अपना लो। यह तीर्थङ्कर-

देव का बताया हुआ निष्कंटक मार्ग है। इस पर चलने से निर्विघ्नता पूर्वक अक्षय सुख निधि रुप मोक्ष को प्राप्त कर सकोगे। यदि तुम सर्व रुप में चारित्र का पालन नहीं कर सकते हो तो देश रुप में चारित्र अंगीकार कर सकते हो। यानि पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत और चार शिक्षाव्रत रुपी बारह व्रतों को धारण करके श्रावक की गणना में आ सकते हो। इस प्रकार करने से भी तुम्हारे जीवन में मर्यादा का बांध बंध जायगा और तुम्हारी धन-दौलत, विषय-भोग, खान पान, गमनागमन की तीव्र आसक्ति पर ताला लग जायगा, यदि स्वेच्छा से इनका त्याग करते हो तब तो द्रव्य और भाव दोनों से लाभ है ही परन्तु यदि तुम इच्छा से त्याग नहीं करना चाहो तो भी यह शरीर, धन-दौलत, मकान, जेवर विषय-भोग आदि सब तुम्हें छोड़कर चले जायेंगे। ये तो एक न एक दिन जाने वाले हैं। ये मेघ की छाया की तरह देखते ही देखते नष्ट हो जाने वाले हैं। इसलिए बुद्धिमता तो इसी मे है कि तुम स्वयं ही सोच-समझ कर स्वेच्छा पूर्वक इनके प्रति आसक्ति कम करदो और धर्माचरण के प्रति जागरूक हो जाओ, ऐसा करने से तुमको इस लोक तथा परलोक में भी सुख की प्राप्ति होगी।

भाई! जो संसार में जन्म लेता है उसकी एक न एक दिन मृत्यु अवश्यंभावी है कोई भी निश्चय से नहीं कह सकता कि वह यहां सदा के लिए अमर बना रहेगा। यह अटल सिद्धान्त है कि संयोग के बाद वियोग और जन्म के बाद मृत्यु जरुरी होती है। बड़े बड़े सम्राट, चक्रवर्ती, राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार, पंडित, विद्वान, वैज्ञानिक, डाक्टर, वकील, योद्धा, सेनापति भी सबके सब यहां आकर हार जाते हैं। औरो की तो बात जाने दीजिए किन्तु करोड़ों देवों के अधि-पति इन्द्र की भी यह ताकत नहीं कि मृत्यु आने पर वह भी एक क्षण के लिए देर कर सके। उसको भी निश्चित समय महा यात्रा के लिए प्रस्थान करना ही पड़ता है।

भाई ! जब आपको विदित है कि मरना निश्चित है तो परलोक गमन से पहले उसके लिए तैयारी करना भी तो आवश्यक है। जैसे यात्रा को सही सलामत और सुविधापूर्ण बनाने के लिए आप लोग अपने साथ कितना सामान खाने-पीने का विस्तर वगैरह और तरह-तरह की सुख-सुविधा का साथ में ले जाते हैं, तो जब परलोक की यात्रा के लिए जाना है तो उसके लिए भी अभी से कितनी तैयारी करनी चाहिए। आपको यहां से पुण्य संचय की सामग्री साथ में लेनी चाहिए और धर्म की खर्ची साथ में लेलेनी चाहिए। यदि आप इस पूर्व-तैयारी के साथ निकलते हैं तब तो भविष्य में खतरे का सामना नहीं करना पड़ेगा अन्यथा मार्ग मे अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा। इसलिए पुण्य का संचय करलो। यही आगे रिजर्व बैंक के चैक के रूप में सहायता करेगा। यदि आपने यह अनमोल समय प्राप्त करके भी उसका सदुपयोग नहीं किया और प्रमाद एवं विषय भोगों में ही बिता दिया और पुण्य संचय नहीं किया तो यहां से खाली हाथ ही जाना पड़ेगा। और एक भिखारी से भी बदतर हालत का सामना करना पड़ेगा।

इसलिए भगवान उपदेश देते हैं कि हे भव्यों ! जागो, जागो और प्रमाद में पड़े रहकर इस सुवर्ण अवसर को हाथ से मत खोओ ! क्योंकि जो जागता है वह पाता है और जो सोता है वह खोता है। जो नींद में गाफिल पड़ा रहता है उसका माल लोग हड़प कर लेते हैं। भाई ! आए दिन ऐसे समाचार सुनने और देखने मे आते हैं कि अमुक व्यक्ति स्टेशन पर या रेल में सो रहा था और चोर माल उड़ाकर चलता बना।

कल मैंने बम्बई समाचार-पत्र में पढा था कि एक आदमी अपनी वर्षों की कमाई हुई पूंजी को लेकर रेल द्वारा स्वदेश को जा

रहा था। उसने कई वर्ष तक नौकरी करके दस हजार की रकम इकट्ठी की थी और उसे लेकर अपने गांव की ओर जा रहा था। किसी बदमाश को खुफिया तौर पर यह भेद मालूम हो गया। वह भी उसके पीछे २ हो लिया। भाई! मनुष्य तो समझता है कि यह धन मेरा है, यह दौलत मेरी है किन्तु दर हकीकत वह न जाने किसके उपभोग में आती है।

वह आदमी तो खुश होता हुआ और तरह २ के विचार करता हुआ चला जा रहा था। किन्तु वह बदमाश भी अपने अवसर की ताक में था। उसने ज्यों ही उस मुसाफिर को गफलत में देखा त्यों ही उसने अपना काम किया और रुपये चुराकर नौ दो ग्यारह हो गया। जब वह मुसाफिर अपने घर पहुंचा और जेब सभाली तो रुपये गायब थे। उसके होश-हवास उड़गए। उसके दुख का पारावार नहीं था। जिंदगी भर को कमाई जरा सी गफलत में चली गई। अरे! एक रुपया भी अगर नाली मे गिर जाता है तो उसका भी दुख होता है और एक आना भंगी को देकर भी ढुंढवाते हो तब उसकी तो एक बड़ी रकम चली गई थी अतः उसके दुःख का तो कहना ही क्या! किन्तु उसके लिए किया भी क्या जा सकता था। जैसे कमान में से निकला हुआ तीर लौटकर नहीं आता वैसे ही गई हुई संपत्ति भी लौटकर मुश्किल से आती है।

भाई! वैसे ही यह लक्ष्मी चंचल है। सावधानी रखने पर भी यह जाने में देर नहीं करती है तो असावधानी की हालत में तो यह आपकी हो ही कैसे सकती है। वह धन तो फिर भी कोशिश करने से शायद हाथ आ सकता है किन्तु यह गया हुआ समय तो लाख कोशिशें करने पर भी हाथ आने वाला नहीं है। इसलिए प्रमाद में समय नहीं खोते हुए समय का सदुपयोग करो। समय मात्र का प्रमाद भी

भयंकर परिणाम लाता है। इसलिए भगवान महावीर ने गौतम-स्वामी को लक्ष्य करके संसार के सब जीवों को उद्बोधन दिया है कि:—

' समयं गोयम ! मा पमायए''

अर्थात्—हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद नहीं रखना चाहिए। जबकि यह अमूल्य समय मानव का व्यर्थ के प्रपचों में ही व्यतीत होता जा रहा है। समय की कीमत पुण्यवान ही करता है। एक पापी, दुरात्मा अपने अनमोल समय का पाप कर्मों में दुरुप-योग करता है। इसलिए मेरा आप लोगों से यही कहना है कि प्रबल पुण्य से मानव शरीर और सब प्रकार की अनुकूलताएं प्राप्त हो गई है। अतः जितना भी पुण्य का संचय करना चाहें उतना ही आप कर सकते हैं। अन्यथा समय की गति को कौन जानता है। भूतकाल बीत चुका, भविष्य का कुछ पता नहीं अतः वर्तमान ही हमारे हाथ मे है। हमको उनसे अवश्य लाभ उठा लेना चाहिए। यदि यह सुन्दर सुअवसर भी हाथ से चला जाएगा तो फिर पछताना ही भाग्य से अवशिष्ट रह जाएगा। इसलिए हम बार २ जोर देकर आपके हित के लिए कहते है कि प्रमाद को छोड़कर धर्म का आचरण करो और समय का सदुपयोग करो।

भाई ! आज हम जिधर भी दृष्टिपात करते है तो हमें संसार में राग और द्वेष की आग जलती हुई दिखलाई देती है। संसार के सभी प्राणी इस आग में बुरी तरह झुलस रहे है। जिस प्रकार जंगल मे दावानल सिलगता है और उसमे जंगल के छोटे बड़े प्राणी जलते हैं और त्रास पाकर इधर से उधर बचने के लिए भागते हैं। उनको इस प्रकार परेशान देखकर पक्षी खुश होते है। वे सोचते हैं कि हम ऊँचे वृक्षों की चोटियों पर आनन्द से बैठे हुए हैं, हमें कोई नहीं जला

सकता। परन्तु उन नादान पक्षियों को यह पता नहीं कि उस भयंकर दावानल की एक लपट में तुम्हारा भी विनाश हो जाने वाला है। हां! जब तक वह आग की लपट तुम्हारे ऊपर नहीं आती है तबतक भले ही हस लो दूसरे की आपत्ति-कष्ट को देखकर। किन्तु याद रखना। थोड़ी देर बाद ही यह हंसो और यह अभिमान उस दावानल में जलकर भस्मीभूत हो जायेंगे। अतएव दूसरे के ऊपर आई हुई आपत्ति पर हसना बुद्धिमान का काम नहीं है बल्कि उस आपत्ति से छुडाना इन्सान का कर्त्तव्य है। आज जो दुनियां में अशान्ति और संघर्ष फैला हुआ है उसके मूल में भी हिंसा वृत्ति और राग-द्वेष की परिणति ही काम कर रही है। मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने और अपने स्त्री बच्चो के प्रति राग करता है और दूसरे प्राणियों के प्रति द्वेष करता है। इस दुष्वृत्ति के कारण वह हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है और दूसरों का भयंकर शोषण करके अपना और अपने परिवार का पोषण करता है। किन्तु उसे पोषण पर्यंत ही सन्तुष्टि नहीं हो जाती। वह तो अपनी तिजोरियां भरना चाहता है। यही वर्ग अशांति और संघर्ष का कारण बन जाता है। इसीसे देश और संसार में विप्लव मच जाता है। सब लोग इसी वृत्ति के कारण अशान्ति की आग में जल रहे है। आज संसार में चारो ओर हिंसा, रक्तपात, चोरी, डकैतियो का जो वातावरण है तो उसका मूल कारण राग और द्वेष है। जब तक इनको हृदय से नहीं निकाला जाएगा तब तक संसार में सुख-शान्ति, निर्मलता, सुरक्षितता का वातावरण नहीं फैल सकता।

यदि मनुष्य स्वयं सुरक्षित, निर्भय और सुरक्षित रहना चाहता है तो उसे दूसरे की रक्षा करना चाहिए, निर्भय बनाना चाहिए और दूसरे को सुरक्षित रखना चाहिए। यह अहिंसावृत्ति ही संसार को सुख-शान्ति मे रख सकती है।

भगवान महावीर ने सूत्रकृतांग-सूत्र में फरमाया है कि:--

एवं खुणाणिणो सारं, जे न हिंसई किंचणं ।
अहिंसा समयं चेव, एयावतं वियाणिया ॥

भाई ! ज्ञान का सार यही है कि किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए । अहिंसा ही सम्यग धर्म है । सब धर्मों का मूल अहिंसा है । जितने २ अंश में अहिंसा हमारे जीवन में आती जायगी उतने उतने अंशों में हमारा विकास और अभ्युदय होता जायगा । चूंकि आप लोगों को समझ मिली है और दूसरे तिर्यञ्चादि प्राणियों को तो यह अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ है । अतएव अपना जीवन अहिंसा-मय बनाओ । अहिंसा के पालन के लिए व्रत-प्रत्याख्यान श्रावक वृत्ति या साधु वृत्ति को धारण करना चाहिए । कहा भी है:—

देहस्यसारं व्रत धारणं च ।

मानव देह की प्राप्ति का सार यही है कि व्रत धारण किए जांय । त्याग करने से आपको सुख प्राप्ति होगा और विषय-भोगो की ओर आकृष्ट होने से दुःख और रोग की प्राप्ति होगी । अतएव मानव जीवन की सार्थकता के लिए पुरुषार्थ करो । धर्म में पुरुषार्थ करने से इस चौरासी के चक्कर में घूमने से बच जाओगे । और कर्म-बन्धन से छूट कर मोक्ष के अक्षय सुख को प्राप्त कर सकोगे । यही सुख का मार्ग है । संयमी जीवन ही परम कल्याणकारी है । इस मंगलमय-धर्म की अराधना करके सुख के अधिकारी बनो ।

भगवान महावीर की धर्म देशना को सुनकर उपस्थित परिषदा प्रभावित हुई और आनन्द विभोर होकर वैराग्य सागर में डूब गई । सबने यथा शक्ति त्याग- प्रत्याख्यान किए और भगवान को वन्दन नमन करके स्व स्थान को लौट गए ।

तब सुबाहुकुमार भगवान महावीर के समीप आए, वन्दन किया और हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे भगवान ! मैंने आपका उपदेश एकाग्र-चित्त होकर श्रवण किया। वह यथार्थ है, सत्य है, तथ्य है और पथ्य है। मै उस पर पूर्ण श्रद्धा करता हूँ। मुझे उस पर पूर्ण रूप से प्रतीति हुई है। मेरी इच्छा है कि मैं आपके चरणकमलों की सेवा में रहकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र का आराधना करूँ। अतः मैं आपके पास मुण्डित होकर प्रवर्ज्या लेना चाहता हूँ। किन्तु नियमानुसार मैं अपने माता-पिता को आज्ञा लेकर आपके पास दीक्षा धारण करूँगा।

भगवान ने कहा—'जहासुहं देवाणुप्पिया। मा पडिबंधं करेह।' हे देवताओ के वल्लभ ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो किन्तु शुभ कार्य में बिलम्ब मत करो।

सुबाहुकुमार भगवान को विनम्रभाव से नमस्कार करके, पुष्प-करंडक उद्यान से निकलकर, रथ में बैठकर घर पर आगए। वे माता पिता के समीप गए और विनय पूर्वक कहने लगे कि—हे माता-पिता ! मैंन आज भगवान महावीर के दर्शन किए।

माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! तुमने बहुत अच्छा किया। इससे तुम्हारी आंखे पवित्र हो गई।

सुबाहुकुमार ने फिर कहा—मैंने भगवान की वाणी श्रवण की है।

तब माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! तेरे कान पवित्र हो गए हैं।

सुबाहुकुमार ने कहा—हे माता-पिता ! मैंने भगवान के चरण-कमलों का स्पर्श किया है।

तब माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! इससे तेरा सम्पूर्ण शरीर पवित्र हो गया है।

फिर सुबाहु कुमार ने कहा—हे माता पिता ! मैंने भगवान् की वाणी सुनकर उस पर प्रतीति की है। भगवान के वचन सत्य, तथ्य और पथ्य हैं। मैं उन पर दृढ़ श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ और रुचि करता हूँ।

माता पिता ने कहा—हे पुत्र ! निःसन्देह भगवान के वचन प्रतीति के योग्य है। तूने उन वचनों पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि करके भव-भव के मिथ्यात्व रूपी पाप का नाश किया है।

अन्त में सुबाहुकुमार ने कहा—हे माता-पिता ! मैं भगवान के बताए हुए मार्ग का अनुसरण करना चाहता हूँ। क्योंकि बिना चारित्र धारण किए सच्चा सुख इस आत्मा को प्राप्त होने वाला नहीं है। दुनियादारी के ये सारे सुख-साधन मुझे असार मालूम होने लगे हैं। अतः आप मुझे कृपाकर भगवान के समीप दीक्षा धारण करने की अनुमति प्रदान करें।

सुबाहुकुमार के मुंह से वैराग्य भरे वचनों को सुनकर माता-पिता का स्नेह-भाव जागृत हो गया। उन्होंने त्याग मार्ग की उत्कृष्टता को समझते हुए भी मोह के वशीभूत होकर कहा कि हे पुत्र ! चारित्र अंगीकार करना उत्कृष्ट है किन्तु चारित्र का पालन करना अत्यन्त कठिन है। बेटा ! तलवार की धार पर चलना जितना मुश्किल नहीं है उतना संयम मार्ग में चलना कठिन है। बड़े २ साधक भी इस मार्ग पर चलते हुए डिगमिगाने लगते हैं। फिर तुम्हारी अवस्था भी अभी छोटी है, तुम्हारा शरीर भी सुकुमार है, अतएव तुमसे संयम मार्ग की आराधना होना कठिन है। देखो ! साधु जीवन में नाना-विध परीषहों को सहन करने पड़ते हैं। कभी भूख, कभी प्यास, कभ

शीत, कभी उष्ण, डांस, मच्छर आदि २ के कष्ट भी सहन करने पड़ते हैं। तुम्हारे कोमल शरीर से ये कष्ट सहन होने वाले नहीं हैं।

दूसरे प्रत्येक कार्य के लिए उचित अवस्था का होना अनिवार्य है। जबकि तुम्हारी अवस्था अभी छोटी है और इस उम्र में तुम्हें साधु बनना उचित नहीं है। हे पुत्र ! अभी २ तुम्हारा विवाह हुआ है। ये नव विवाहिता पत्निएं तुम्हारी जुदाई को कैसे सहन कर सकेंगी इसलिये जरा जवानी ढल जाने दो। सुख के साधनों का उपभोग करो और गृहस्थी के सुखों का उपभोग करते हुए जब पुत्र रत्न की प्राप्ति हो जाय तब तुम अपनी इच्छानुसार संयम मार्ग को अंगीकार कर लेना।

अपने माता पिता के मुँह से इस प्रकार के मोह में सने हुए शब्दों को सुनकर सुबाहु कुमार ने कहा कि हे माता-पिता। आप सब कुछ जानते समझते हैं, धर्म के मार्ग को भी समझते हैं किन्तु आपने केवल मोह के वशीभूत होकर ही इस प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं।

आपने संयम मार्ग मे उपस्थित होने वाले कष्टों का वर्णन किया किन्तु मैं अपनी अल्प बुद्धि से निवेदन करता हूँ कि चार गति चौरासी लाख जीव योनियों में भटकते हुए प्राणी को जिन महान कष्टों को सहन करना पड़ता है उनके मुकाबिले में तो साधु जीवन के मार्ग में आने वाले कष्ट तो किसी गिनती मे भी नहीं आ सकते। कहां तो सागर के समान दुख और कहां ये बिन्दु के समान दुख ! भगवान तीर्थङ्कर ने नरक के दुखों का जो वर्णन किया है उसे सुनकर तो रोंगटे खड़े हो जाते है। इस जीवन ने परवश होकर अनन्त बार उन नरक तिर्यञ्च अवस्थाओं मे उन दुखों को भोगा है। उनके दुखों

के सामने चारित्र मार्ग में आने वाले कष्ट तो नगण्य है। मैं तो चाहता हूँ कि बार २ के जन्म-मरण के महान दुखों को चारित्र-मार्ग में आने वाले थोड़े से कष्टों का सामना करके हमेशा के लिए जड़मूल से नष्ट कर दूं। मैं जन्म-मरण के दुखों से घबरा गया हूँ। मैं अब ऐसा पुरुषार्थ करना चाहता हूँ कि मैं फिर से इन कष्टों का भोक्ता कभी न बनूं। मै उस शाश्वत पथ का पथिक बनना चाहता हूँ जिस पर चलने से यह दुख की परंपरा जड़मूल से नष्ट हो जाती है। जैसे किसी महारोग को जड़मूल से नष्ट करने के लिए कड़वी औषधि को पीने का क्षणिक दुख लाभदायक होता है उसी प्रकार भव रोग को दूर करने के लिए संयम की साधना रुपी औषधि का सेवन करना भी कल्याणकारी है। जो कड़वी औषधि के क्षणिक दुख से घबरा जाता है उसका महा रोग नष्ट नहीं हो सकता। अतएव बुद्धिमत्ता इसी में है कि महारोग की पीड़ा से मुक्त होने के लिए कड़वी औषधि आंख मीचकर पी लेनी चाहिए। अतः हे माता-पिता! आप मुझे सहर्ष आज्ञा प्रदान कीजिए ताकि मैं इस संयम रूपी औषधि का सेवन करके भवरूपी रोग से मुक्त होकर अक्षय आरोग्य का आस्वादन कर सकूं।

दूसरी बात आपने धन वैभव और यौवन का आनंद उठा कर ढलती अवस्था में चारित्र अंगीकार करने संबन्धी कही है। किन्तु माता पिता! क्या कोई यह निश्चित रूप से कह सकता है कि यह जीवन तब तक कायम रह सकेगा? हर्गिज नहीं। कोई नहीं कह सकता कि यह जीवन पानी के बुद-बुद के समान क्षणिक है। कुश के अग्रभाग पर रहे हुए जल विन्दु के समान न जाने कब नष्ट हो जाय। इसका पल भर के लिए भी भरोसा नहीं किया जा सकता। यह आए दिन देखने में आता है कि बूढ़े बाप तो बैठे रहते हैं और छोटे २ मासूम बच्चे और ,जवान बराबरी के बेटे उठकर रवाना

हो जाता है। मृत्यु के यहां छोटे-बड़े का विवेक नहीं है। यह नहीं कि यह अभी बच्चा है, इसे जवानी का सुख देखने दो और यह जवान है, बूढे माता-पिता को सहारा है अतः इसे उनकी सेवा करने दो। वह तो छोटे-बड़े सबको निर्दयता पूर्वक उठाकर ले जाती है। इसलिये इस अनित्य, अशाश्वत और क्षणभंगुर जीवन का कल का भी क्या भरोसा है। किसने कल देखा है? कल का तो क्या परन्तु पल भर का भी भरोसा नहीं किया जा सकता।

अरे! जब यह जीवन ही देखते-देखते बिरला जाने वाला है तो इस धन और यौवन की स्थिरता का तो भरोसा किया भी कैसे जा सकता है। यह लक्ष्मी भी बड़ी चंचल है। यह भी बिजली की चमक की तरह क्षण भर के लिए चमक कर फिर अन्धकार में विलीन हो जाती है।

भाई! इस चंचल और चपला लक्ष्मी के नाटक को आप और हम रात दिन संसार के रंग मंच पर देख ही रहे हैं। कल हमने जिसको करोड़पति के रूप में आकाश से बात करने वाली ऊँची हवेली में देखा था उसीको आज हम दर दर के भिखारी के रूप में भी देख रहे हैं और कितने ही कल के कंगाल आज लखपति, करोड़पति के रूप में दिखाई दे रहे हैं। इस चंचला लक्ष्मी का कोई भरोसा नहीं। यह कभी एक जगह स्थिर रूप में नहीं रुकती। इसीलिए इसे नाते की उपमा दी गई है। कहा है:—

यह लक्ष्मी नाते की औरत, कभी किसी की बनी नहीं।
चाहे जितना करो जापता, इसके सिर कोई धनी नहीं॥

इस लक्ष्मी को आप चाहे जितनी होशियारी और जापते से रखिये, चाहे जितनी मजबूत तिजोरियों में इसे बंद कर दें परन्तु जब यह जाना चाहती है तभी रवाना हो जाती है। यह स्वतंत्र है और किसी एक को बनकर रहने वाली नहीं है।

भाई! आप में से कई एक लखपति. करोड़पति भी हैं किंतु क्या आप यह विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि क्या यह लक्ष्मी हमेशा के लिए आपके पास बनी रहेगी? तो आप यही दृढ़ता पूर्वक कहेंगे कि यह लक्ष्मी न जानें कब हमें धोखा देकर जा सकती है। वैसे भी रात दिन धनवानों को यह चिंता सताया करती है परन्तु आज के युग में तो यह चिन्ता और भी अधिक बढ़ गई है। धनवानों के धन पर आज कईयों की दृष्टि लगी हुई है। आज का धनिक वर्ग सरकारी कानून, स्टेट टेक्स, इन्कम टेक्स, सुपर टेक्स, सेल्स टेक्स, डेथ टेक्स, एक्सपेंडीचर टेक्स, और न जाने किन २ टेक्सों के बोझ से दबा जा रहा है! ऐसी अवस्था में किसी को भरोसा नहीं रह गया है कि वह ज्यों का त्यों ही बना रह सकेगा।

आज के व्यापारी की हालत भी बड़ी चिंता-ग्रस्त है। व्यापार में अचानक घटावढ़ी के कारण ऐसा देखने सुनने में आता है कि थोड़े ही दिनों मे बिना परिश्रम के एक व्यापारी लखपति बन जाता है और थोड़े ही दिनों बाद वही दीवालिया भी बन जाता है। इस पासे के पलटने में कोई देर नहीं लगती।

मैंने जब रतलाम में चौमासा किया था तो वहां के एक भाई ने एक ही साल में एक लाख रुपया कमा लिए और दूसरे वर्ष उसने सब कुछ खो दिया। आज के व्यापार नदी के पूर की तरह रह गए हैं। जैसे नदी के पूर में अनाप शनाप पानी आ जाता है किंतु देखते

देखते वह पानी कहीं का कहीं चला जाता है। इसी प्रकार आज के व्यापार में लखपति होते भी देर नहीं लगती और घर का नीलाम होते भी देर नहीं लगती! परन्तु जो व्यापार मर्यादित ढंग से किया जाता है उसी में थोड़ा बहुत स्थायित्व आ सकता है। अन्यथा, नदी के पूर का वेग कितनी देर कायम रह सकता है।

आज हम यह भी देखते हैं कि मानव की तृष्णा अत्यधिक बढ़ गई है। वह धन संग्रह के पीछे हाथ धोकर पड़ गया है। वह सोचता है कि यदि मैं अपनी सात पीढ़ी तक के लिए धन का संचय कर दूं तो मेरा संसार में जन्म लेना सार्थक होगया। परन्तु उसे यह पता नहीं कि अठारह ही पापों का सेवन करके भी जो अपार धन का संग्रह किया है वह कायम रहेगा या नहीं? क्योंकि अनुभवियों का कथन है कि:—

पूत सपूता—क्यों धन संचै ?
पूत कपूता—क्यों धन संचै ?

यदि पुत्र सपूत है तो उसके लिए भी धन का संचय करने की आवश्यकता नहीं है। क्यों कि वह अपने पुरुषार्थ और बुद्धि कौशल से अपनी आजीविका सुख पूर्वक चला लेगा। इसलिए भी तुमको धन के संचय करने की जरूरत नहीं है। दूसरे पुत्र यदि कपूत है तो उसके लिए भी धन संचय करने से क्या लाभ हासिल हो सकता है। वह लाखों की संचित पूंजी को भी जुए, शराब, रंडीबाजी, सौदे-सट्टे वगैरह में कुछ ही दिनों में देखते देखते सबको मिट्टी में मिला देगा। इसलिए अमर्यादित धन का संग्रह करने की लोभ वृत्तियों को त्याग कर पापोपार्जन से बचना चाहिये। इस अमर्यादित धन संग्रह की वृत्ति ने ही आजकम्यु निज्म (साम्यवाद) को जन्म दिया है।

ज्ञानी पुरुष तो यहां तक जोर देकर कहते हैं कि हे मानव ! तू चाहे जितने धन का संग्रह करले, चाहे जितने रक्षा के उपाय कर ले परन्तु वह तो जाने वाला है। इस धन के पीछे सात अपहरण करने वाले शत्रु लगे हुए हैं धरती, पानी, अग्नि, पुत्र, कुटुम्ब, सरकार और चोर। आखिर तू किस २ से इसकी रक्षा कर सकेगा। भाई ! जमीन मे गाड़ा हुआ धन जमीन में रह जाता है, मिट्टी में दबा हुआ धन मिट्टी में ही सड़ जाता है। अनेक बार ऐसी भयंकर बाढ़ आती है कि उसमे सर्वस्व बह जाता है। अभी २ कुछ वर्षों से यदि आपने समाचार-पत्रों में देखा होगा तो मालूम हुआ होगा कि बंगाल, बिहार, पंजाब, सौराष्ट्र, उत्तर-प्रदेश आदि २ प्रान्तों में इतनी भयंकर बाढ़ आई कि अनेकों गांव जलमग्न हो गए, लाखों करोड़ों की फसलें नष्ट हो गई, मवेशी बह गए और लाखों ही मनुष्य बे घर-बार हो गए। यह व्यक्तिगत नहीं किंतु सामूहिक रूप में होने वाले नुकसान का उदाहरण है। उनके वर्षों का संचित धन माल देखते २ आंखों के सामने पानी में बह गया। इसी प्रकार जगह-जगह आग लग जाने से भयंकर जान-माल का नुकसान हो जाता है। थोड़े वर्ष पहिले की बात है कि बम्बई बंदरगाह पर समुद्र के किनारे गोला बारुद से भरा हुआ जहाज खड़ा था। उसमें अचानक विस्फोट हो गया। करोड़ों का माल जल कर भस्म हो गया। बताया जाता है कि इससे दो अरब का नुकसान हुआ। इससे कई व्यापारियों को नुकसान उठाना पड़ा। इसी प्रकार अनेक कारणों से धन का नाश हो जाता है। इसलिए मानव को धन का विश्वास नहीं करना चाहिए। यह दौलत आते समय भी सीने में ऐसी लात मारती है कि वह मनुष्य आकाश की तरफ ही देखता रहता है। अभिमान में छका हुआ मनुष्य अपने सामने किसी को कुछ नहीं गिनता है। किंतु जाते समय यह दौलत पीठ में ऐसी लात मारती है कि मनुष्य आंख उठाकर भी

ऊपर की ओर नहीं देख सकता। इसीलिए इसका नाम दौलत रखा गया है। इस चंचल लक्ष्मी का विश्वास करने योग्य नहीं है। और जब तक यह तुम्हारे पास है तो इसके मालिक बन कर इसका शुभ कार्यों में मरजी के मुताबिक खुल कर उपयोग कर लो। यदि इसके दास बन रहे और सदुपयोग में खर्च नहीं किया तो फिर पश्चाताप करना ही शेष रह जायगा। क्योंकि यह अपने स्वभाव के अनुसार जाने वाली तो है ही। अतः परलोक सिधारने से पहले शुभ कार्यों में खर्च करके इसके साथ ऐसा गठ-बन्धन कर लो कि यह परभव में भी साथ नहीं छोड़े और तुम्हारे साथ २ फिरती रहे।

हां तो, सुबाहुकुमार सब प्रकार से तन, धन और यौवन की अनित्यता बताकर अपने माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त कर रहे हैं। उन्हें मानवजीवन का यह श्वास बड़ा अनमोल मालूम हो रहा था। वे अपने जीवन के एक क्षण को भी व्यर्थ नहीं खोना चाहते थे। क्योंकि शुभ कार्य में विलम्ब उन्हें असह्य लग रहा था। किसी कवि ने कहा है किः—

श्वास एक खाली मत खोय रे खलक बीच,
कीचड़ कनक अंग, धोयले तो धोय ले।
और अंधियार पुर पाप से भरयो है तर ये,
ज्ञान की चिराग चित्त जोय ले तो जोय ले॥
क्षणभंग देह या में जनम सुधारयो चाहे,
प्रेम प्रभुजी से प्यारो होय ले तो होय ले।
ऐसो मनुज जमारो बार बार नहीं मिले मूढ़,
बिजली के चमके मोती पोयले तो पोयले॥

भाई! कवि ने कितनी सुन्दर बात कह डाली है! यह मानव जीवन चौरासी लाख जीवयोनि रूप अंधेरी रात्रि में बिजली की

नमक के समान है। यह बड़ा ही अनमोल समय हमको मिल गया है। इस बिजली के प्रकाश में मुक्ति रूपी मोती पिरोने का काम कर लिया तो मानव जीवन सफल हुआ समझना चाहिए। इसलिए समझदार मानव को अपने अनमोल श्वासों में से एक श्वास भी बेकार नहीं खोना चाहिए। इस मिले हुए कीमती समय का यदि सदुपयोग कर लिया तो बेड़ा पार हो जाएगा।

सुबाहुकुमार भी इस बिजली के प्रकाश में अपने मानवजीवन को सफल बनाने के लिए तैयार हो गए। तीव्र मोह के कारण यद्यपि थोड़ी देर के लिए उनके माता-पिता को मूर्च्छा भी आ गई। परन्तु थोड़ी देर बाद मूर्च्छा दूर होने पर वे अपने माता-पिता को सान्त्वना देते हैं और मोह को दूर करने वाली बातें कहते हैं। चूंकि सुबाहु-कुमार संयम मार्ग को अंगीकार करने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे अतः वे माता-पिता की मोहभरी-बातों से या दूसरे प्रलोभनों से प्रभावित नहीं हुए। अपितु अपने दृढ निश्चय का प्रभाव अपने माता पिता पर डालने में समर्थ हो गए। जो मनुष्य अपने विचारों में मजबूत होता है वह प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है। हां! सोच विचार कर कदम बढ़ाते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना चाहिए। इससे निर्धारित लक्ष्य पर शीघ्र पहुँचा जा सकता है।

भाई! हमने भी त्याग मार्ग को अंगीकार कर रखा है। साधु को एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते हुए देश प्रदेश में घूमना पड़ता है। जब हम एक बार अमुक लक्ष्य तक पहुंचने का संकल्प कर लेते हैं तो फिर रास्ते के कष्टों का विचार नहीं करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अवरुद्ध गति से बढ़ते ही जाते हैं। फिर रास्ते में हमको भोजन संबन्धी, मकान सम्बन्धी कष्ट भी झेलने पड़ते हैं किंतु उनकी परवाह

नहीं करते हुए हम एक दिन अपने निश्चित ध्येय तक पहुँच जाते हैं। एक बार हमको विहार करते हुए ऐसे स्थान पर रात्रि व्यतीत करनी पड़ी जहां कि शायद पशु भी ठहरना पसंद नहीं करेंगे किन्तु उस दुःख को भी दुःख नहीं समझा। ध्येय निश्चित हो जाने पर मनुष्य को कोई चलायमान नहीं कर सकता। इसलिए पहिले मनुष्य को ध्येय निश्चित करना चाहिए।

सुबाहुकुमार अपने ध्येय पर अटल रहे तो आखिर माता-पिता के हृदय पर भी उनके दृढ़ निश्चय की छाप पड़ी और उन्होंने दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान कर दी। माता-पिता ने उनका दीक्षा महोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाने की यथा विधि तैयारी की।

जब सुबाहुकुमार दीक्षा ग्रहण करने के लिए एक विराट जुलूस के साथ भ० महावीर के समीप जा रहे थे तब उनकी माता ने उन्हें बार २ उद्बोधन किया कि हे पुत्र ! जब तुम हम सबको रोता छोड़ कर जा ही रहे हो तो संयम अंगीकार करने के पश्चात् ऐसा पुरुषार्थ करना कि अगले जन्म में फिर किसी माता को रोना ही नहीं पड़े। अर्थात् ऐसी उत्कृष्ट करनी करना जिससे तुम्हें फिर किसी माता की कूंख में जन्म ही धारण नहीं करना पड़े।

हे पुत्र ! संयम में सदा जागृत रहना। मन में कभी कायरता को स्थान नहीं देना और जिस उन्नत भावना से दीक्षा ग्रहण कर रहे हो उसी उत्कृष्ट भावना से जीवन के अन्तिम क्षणों तक उसका सम्यक् पालन करना। संयम में प्रमाद मत करना। मैं तुम जैसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती हूँ अतः मेरे उस गौरव को हमेशा सुरक्षित रखना। हे वत्स ! जिस उद्देश्य को लेकर तुम संयम ग्रहण कर रहे हो उसमें सफलता प्राप्त करो यही मेरी अंतःकरण की भावना और कामना है।

जब वह विराट जुलूस भ० महावीर के समीप पहुँचा तो सुबाहुकुमार के माता-पिता ने सविधि वन्दन नमन करके निवेदन किया कि हे भगवन्! कोई आपको अन्न, पानी, वस्त्र और मकान प्रदान करता है परन्तु हम आपको आज अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र को शिष्य के रूप में समर्पित करते हैं। इसे आपकी वाणी सुन कर परम वैराग्य उत्पन्न हो गया है। यह संसार के दुखों से घबरा कर आपके चरण कमलों में रह कर आत्म कल्याण करना चाहता है। अतः आप कृपा कर इसे भगवती दीक्षा प्रदान कर अपने चरणों में आश्रय दीजिये।

भगवान ने कहा—अहा सुहं देवाणुप्पिया!

भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर सुबाहुकुमार ने वस्त्राभूषण उतार दिए। उनकी माता ने उन्हें दुग्ध-धवलश्वेत वस्त्र में ग्रहण किया। माता की आंखों में से अविरल अश्रु धारा बह रही थी। सुबाहुकुमार ने साधु वेश धारण कर लिया। भगवान महावीर ने उन्हें सावद्ययोग सेवन का त्याग कराया और सामायिक चारित्र धारण कराया। तत्पश्चात् सुबाहुकुमार के माता-पिता तथा अन्य नर नारी भगवान को वन्दन करके अपने २ स्थान को लौट गए। अब सुबाहुकुमार आनन्द पूर्वक भगवान के समीप तप संयम में जीवन व्यतीत करते हुए आत्म कल्याण की साधना में लीन हो गए।

:: ऋषभ चरित्र ::

आत्म कल्याण की साधना का सर्व प्रथम महा मन्त्र बताने वाले भगवान आदिनाथ के पूर्व भवों का वृत्तान्त आपके सामने सुनाया जा रहा है।

राजकुमार वज्रजंघ ने ज्यों ही उस दीवार पर लटकाए हुए स्वयंप्रभा के चित्र को देखा त्योंही उसके मुंह से अकस्मात ये शब्द निकल पड़े कि स्वयंप्रभा यहाँ कहां से आ गई ? तो राजकुमारी ने ये शब्द सुनकर अनुभव कर लिया कि यही मेरे पूर्व भव के पति हैं।

उधर चक्रवर्ती सम्राट राजकुमारी को विवाह के योग्य हुई समझ कर उसके पास आए और विवाह के सम्बन्ध में उसका विचार जानना चाहा। प्राचीन समय में कन्या के लिए वर प्राप्त करने के दो तरीके काम में लाए जाते थे। प्रथम में लड़की स्वयं वर का चुनाव करती थी और दूसरी में लड़की के माता पिता उसके योग्य वर की तलाश करते थे। पिता द्वारा पूछे जाने पर लड़की ने स्वयं वर पद्धति के अनुसार अपना वर तलाश करने की इच्छा व्यक्त की।

उसी समय चक्रवर्ती सम्राट ने स्वयंवर सभा मण्डप की तैयारी करवाई। उस प्रसंग में सम्मिलित होने के लिए आये हुए तमाम राजा, महाराजा, राजकुमार आदि को सहर्ष आमंत्रण दे दिया गया। और भी अन्य जिनको बुलवाना था उन्हें आमन्त्रण देकर बुलवा लिया गया। सभी आमंत्रित राजागण सभा मण्डप में अपने अपने नियत स्थान पर बैठ गए। सबका यथाविधि आतिथ्य सत्कार किया गया। नाना प्रकार के वाद्यान्त्र इस खुशी के प्रसंग पर बजने लगे। उपस्थित राजा महाराजा राजकुमारी के आने की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

निश्चित समय पर राजकुमारी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर दासियों के परिवार से घिरी हुई स्वयंवर मण्डप में आगई। राजकुमारी को आई हुई देखकर सब राजाओं के मन हर्षित होगए। तब परिचय देने वाली दासी ने क्रमशः एक के बाद एक राजा, महाराजा राजकुमार का परिचय देना आरम्भ किया। दासी ने अपने हाथ में दो दर्पण ले रखे थे। दासी का मुँह राजकुमारी की तरफ तथा कांच का मुँह बैठे हुए राजाओं की तरफ था। दासी कांच में प्रत्येक राजा का मुँह राजकुमारी को दिखाती और उनका परिचय देती जाती थी। राजकुमारी जब एक राजा का परिचय प्राप्त करके दासी को आगे बढने को कहती तो पहिले वाला उम्मीदवार निराश हो जाता और आगे वाला खुश हो जाता। इस प्रकार आगे से आगे बढते हुए ज्यों ही दासी ने वज्रजंघ का पूर्ण परिचय दिया त्यों ही राजकुमारी ने अपने पूर्व निश्चयानुसार वज्रजंघ के गले में वर माला डाल दी। सब राजा गण ने इस चुनाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजकुमारी चक्रवर्ती सम्राट की कन्या है और वज्रजंघ एक सामान्य कुमार है किन्तु सुयोग्य वर है अतः सबने इस चुनाव को श्रेष्ठ समझा।

सम्राट चक्रवर्ती भी इस सुयोग्य वर के चुनाव से अति प्रसन्न हुआ। उसी समय लग्न तिथि निश्चित करवा ली और सभी आगन्तुक अतिथियों को लग्न में सम्मिलित होने के लिए बड़ी मनुहार के साथ रोक लिया गया। भाई! जहां विशेष प्रेमभाव होता है वहां आग्रह को मानकर रुकना ही पड़ता है। सम्राट ने निश्चित तिथि पर तत्कालीन प्रथा के अनुसार खूब धूमधाम के साथ राजकुमारी का विवाह राजकुमार वज्रजंघ के साथ कर दिया। पिता और अन्य कुटुम्बी जनों ने कन्यादान और दहेज में विपुल धनराशि दी। भगवती सूत्र में जहां महाबल कुमार का अधिकार है वहां दहेज के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है वहां १६८ चीजों का वर्णन आता है। इसके अलावा धार्मिक

भावना वाले लड़की को धार्मिक उपकरण भी देते हैं। यों तो सब कोई अपनी शक्ति के अनुसार लड़की को दहेज में देते ही हैं। परन्तु आजकल दहेज के नाम से जो सौदेबाजी चल रही है वह समाज के लिए घातक है। इसके परिणाम स्वरूप आज समाज में अनेक प्रकार की अनिष्ट घटनाएँ घटती हुई देखी और सुनी जाती हैं। इस दहेज की सौदेबाजी के कारण अनेक कन्याओं को ताने सुनने पड़ते हैं और आत्महत्या तक करनी पड़ती है जो समाज के लिए कलंक रूप होती है। अतएव इस भयंकर दहेज प्रथा के कारण समाज को रसातल में जाते हुए रोकने का प्रयत्न करना चाहिए।

हां तो, राजकुमारी को माता-पिता ने पर्याप्त दहेज देकर विदा किया। विदाई के समय वे अपनी पुत्री को अनमोल शिक्षा देते हैं कि हे पुत्री! अभी तक तुम इस घर में चम्पक लता की तरह फली फूली हो, अब तुम्हे पराए घर जाना है, इसलिए वहां जाकर अपने व्यवहार को इस प्रकार रखना जिससे दोनों कुलों को चार चांद लगे। नीतिकारों ने कहा है :—

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रिय सखि, वृत्ति समाने जने
भर्तुं विप्र कृतापि रोषणतया मास्म प्रतियंगमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने, भाग्येषु सुसेनिनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो, वामाः कुलस्याधयः।

अर्थात् हे पुत्री! तू सुसराल जाकर गुरुजनों की सास-सुसर की सेवा करना। घर में जो समान स्थिति वाली देरानी-जेठानी या नणंद हो तो उनके साथ सहेली की तरह व्यवहार करना। और किसी प्रकार की प्रतिकूलता होने पर भी क्रोध मत करना। पति के घर में तुझको प्रतिकूल वातावरण भी मिल सकता है किंतु उस समय भी

क्रोध या व्याकुलता नहीं लाते हुए सबके साथ मृदुल व्यवहार करके उस प्रतिकूल व्यवहार को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना। जो आश्रित रहने वाले नौकर चाकर हों तो उनके साथ उदारता का व्यवहार करना, कंजूसी मत करना।

स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० ने भी अपनी एक कविता में लिखा है कि :—

गरीब घर की ऊपनी, जैसी वाकी नीत।
क्या जाने वह बापड़ी, बड़े घरों की रीत॥

भाई! कभी किसी गरीब घर की लड़की जब बड़े घर में विवाहित होकर चली जाती है तो वह वहां के उदारता पूर्ण व्यवहार से अनभिज्ञ होती है और अपने गरीब घर जैसा कंजूसी का व्यवहार करती है तो उस घर की शोभा में फर्क आता है। अतः उसे भी वहां जाकर उस घर के रीति-रिवाज के अनुसार ही उदारता का व्यवहार करना चाहिए।

उस राजकुमारी के माता पिता ने शिक्षा देते हुए यह भी कहा कि हे पुत्री! तुम अपने कुल और वैभव पर अभिमान मत करना। और कभी स्वप्न में भी यह अपने मन में ख्याल मत आने देना कि मैं एक चक्रवर्ती सम्राट की राजकुमारी हूँ और मेरे ससुराल वाले एक सामान्य राजा के कुटुम्ब के हैं।

भाई कभी २ ऐसा भी होता है कि बड़े घर की लड़की को अपने माता-पिता के यहां अभिमान आ जाता है। और उस अभिमान में आकर अपने पति परमेश्वर को भी अनुचित बोलने में नहीं सकुचाती उदयपुर के महाराणा फतहसिंहजी के दो राजकुमारियां थीं। कहते

हैं कि एक बार किशनगढ़ वाले जमाई राजा मदनसिंहजी उदयपुर आए और, महल में ठहरे हुए थे। अचानक बारिश आ जाने से उन्होंने सहज भाव से अपनी पत्नि को कहा कि मेरे जूते बाहर पड़े हैं उन्हें जरा अन्दर ले आओ। इतनासा कहना था कि राजकुमारी ने अभिमान में कहा कि महाराज! यह काम मेरा नहीं है। किसी नौकर से कह कर मंगवा लीजिए।

किंतु इस प्रकार का व्यवहार कौटुम्बिक दृष्टि से शोभाप्रद नहीं है। इस प्रकार के व्यवहार से कुटुम्ब में कटुता बढ़जाती है। परिवार में सुख का संचार करना और दुख पैदा करना दोनों अपने हाथ में है। घर को स्वर्ग और नरक बनाना भी गृहलक्ष्मी के हाथ में है। काम में आलस्य करना और महनत से जी चुराना परिवार में क्लेष और लड़ाई-झगड़े पैदा करना है। इसलिए एक सद्गृहिणी को कभी भी काम-काज मे आलस्य नहीं करना चाहिए। अरे! काम करने से तो तन्दुरस्ती ठीक रहती है, पाचन शक्ति बढ़ती है और सब की प्रिय बन जाती है। जबकि काम नहीं करने से बैठे २ शरीर पर चर्बी बढ़ जाती है, शरीर बेडौल हो जाता है और वैद्य-डाक्टर की शरण में जाना पड़ता है। भाई! काम ही सबको प्रिय लगता है, चाम प्रिय नहीं लगता। काम करना कामन करना है अर्थात् वशीकरण मंत्र है। तो राजकुमारी को भी उसके माता-पिता यही शिक्षा दे रहे हैं कि बेटी! अभिमान मत करना और काम करने से कभी भी जी न चुराना। सब के साथ मृदुल व्यवहार करना। ऐसा करने से तुम उस घर की मालकिन बन जाओगी। इसलिए बेटी! तुम खुशी २ जाओ, सुख के साथ रहो और दोनों कुल के सुयश में चार चांद लगाओ।

इस प्रकार उत्तम शिक्षाऐं देकर राजकुमारी को उसके माता-पिता ने शुभ मुहूर्त में विदा किया। सारा परिवार प्रेमाश्रु में भींगा

सा जा रहा था। राजकुमार वज्रजंघ अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ अपने स्वदेश के लिए रवाना हो गए। अब किस प्रकार राजकुमारी का ससुराल में स्वागत किया है और किस प्रकार सुख पूर्वक रहते हैं यह आगे सुनने से मालूम होगा।

जो भव्य प्राणी मानव जीवन को सफल बनाने के लिए अनमोल शिक्षाओं को हृदयंगम करके समय का सदुपयोग करेंगे वे इस लोक तथा परलोक में सुखी बनेंगे।

बैंगलौर
३१-७-५६ }

ज्ञान की उपासना

सम्पूर्ण मण्डल शशांक कलाकलाप,
शुभ्रा गुणास्त्रि भुवनं तव लंघयंति।
ये संश्रितास्त्रि जगदीश्वर नाथ मेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥

卐

भगवान तीर्थङ्कर अनन्त ज्ञान-गुण संपन्न होते हैं। उनके ज्ञान गुण की महिमा यदि कोई पामर प्राणी करना चाहे तो वह नहीं कर सकता। एक पामर प्राणी तो क्या परन्तु सहस्रों इन्द्र भी सहस्रों जबानों मे एक साथ भगवान के गुणों का बखान करें तब भी उनके गुणों का बयान नहीं कर सकते। फिर भी एक भक्त शुद्ध अन्तःकरण से अपनी टूटी फूटी शब्दावली में भगवान के गुणानुवाद करता है तो उसमें भी भक्त से भगवान बनने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। पारस मणी तो अपने संसर्ग करने वाले लोह पदार्थ को स्वर्ण ही बना पाती है, पारस नहीं बना सकती। परन्तु तीर्थङ्कर के संसर्ग में आने वाला, स्तुति करने वाला एक भक्त स्वयमेव भगवान, तीर्थङ्कर पद का अधिकारी बन जाता है। कहिये! भगवान ऋषभदेव के नाम स्मरण में कैसी अलौकिक शक्ति विद्यमान है।

आचार्य मानतुङ्ग भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुए भक्तामर स्तोत्र के चौदहवें श्लोक में यह बता रहे हैं कि हे भगवन्! पूर्णिमा के सम्पूर्ण चन्द्र मण्डल की किरणें अत्यन्त निर्मल और उज्जवल होती है परन्तु आपके अन्दर रहे हुए गुण उनसे भी विशेष उज्जवल और प्रकाशमान हैं। आपके शुभ्रगुण तीनों लोक का उल्लंघन कर रहे हैं अर्थात् आपके निर्मल, स्वच्छ गुण तीनों लोक में व्याप्त हो रहे हैं। हे प्रभो! जो आपका आश्रय ले लेते हैं उन्हें स्वेच्छा पूर्वक विचरण करने से कौन रोक सकता है ? अर्थात् जैसे गुणों ने आपका आश्रय लेलिया तो वे सर्वव्यापी बन गए तो इसी प्रकार जो व्यक्ति आपका आश्रय ले लेता है वह भी सर्वव्यापी बन जाता है। सर्वव्यापी का अर्थ शरीर रूप से सब जगह व्याप्त हो जाना नहीं है परन्तु गुण रूप से सर्वत्र व्याप्त हो जाना है, समझना चाहिए। क्योंकि शरीर स्थूल है—रूपी है अतः शरीर का सब जगह व्याप्त हो जाना संभव नहीं है। जबकि आत्मा अमूर्त है और वह अपने गुणों से पूर्ण अवस्था में सर्व व्यापी हो सकती है। इस आत्मा में अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और अनन्त वीर्य आदि गुण सहज रूप में रहे हुए हैं किन्तु अष्ट कर्मों के आवरण के कारण ये प्रकट रूप में नहीं आ रहे हैं। किन्तु जो कोई भवि जीव भगवान की भक्ति और स्तुति करता है उसके कर्मों के आवरण हट जाते हैं और उसकी आत्मा के वे सहज गुण प्रकट हो जाते हैं।

भाई! जैसे नीबू या इमली का नाम लेने से मुंह में सहज भाव में पानी आ जाता है और मिश्री का नाम लेने से मुंह में मिठास का अनुभव होने लगता है इसी तरह भगवान का स्मरण और कीर्तन करने से आत्मा में पवित्र भावों का संचार हो जाता है और फलस्वरुप कर्मों के आवरण हटने लगते हैं और आत्मा में ज्ञान दर्शन आदि गुण प्रकट होने लगते हैं। इस तरह भगवान ऋषभदेव

के त्रिलोकव्यापी गुणों का कीर्तन करने से भव्य प्राणी भी गुण रूप से तीनों लोक में व्याप्त हो जाता है। ऐसे भगवान आदिनाथ को हमारा बार-बार नमस्कार है।

उन्हीं तीर्थङ्कर देव ने द्वादशांगी वाणी में जन कल्याणकारी उपदेश दिया उसमें से यहां ग्यारहवें अंग विपाक-सूत्र के सुख-विपाक का अधिकार आपके समक्ष सुनाया जा रहा है।

सुबाहुकुमार भगवान महावीर के चरण कमलों में दीक्षित होकर मोक्ष मार्ग की आराधना में लीन होगए। अब सुबाहुकुमार एक राजकुमार से 'अणगारे जाए' अर्थात् अनगार पद से विभूषित होगए थे। अनगार के रूप में उनका नया जन्म हुआ था। जैसे ब्राह्मण को द्विज या द्विजन्मा कहते हैं। उसका प्रथम जन्म तो वह कहलाता है जब वह माता की कूंख से उत्पन्न होता है और दूसरा जन्म तब माना जाता है जब कि वह यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत किया जाता है। यज्ञोपवीत संस्कार होने पर ब्राह्मण का नया जन्म माना जाता है। इसलिए वह द्विज या द्विजन्मा कहलाता है। इसी प्रकार सुबाहुकुमार पहिले राजकुमार थे, राजघराने में जन्म हुआ था। सब प्रकार के भोगोपभोग के साधन उन्हें सुलभ थे। वे उनको आनन्द पूर्वक भोग रहे थे। तो यह है उनकी एक राजकुमार अवस्था। इसके बाद उन्होंने भगवान का उपदेश सुना, श्रद्धा और प्रतीति हुई, संसार की सुख-सामग्री तुच्छ लगने लगी। उन्होंने धर्म के मर्म को जान कर सम्यक्त्व और श्रावकत्व को धारण करके अपने जीवन को संस्कृत किया। तत्पश्चात् आगे बढ़कर अब उन्होंने साधु जीवन को अंगीकार कर लिया है। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन का क्रमिक विकास किया। कहां तो एक राजकुमार सुबाहुकुमार और कहां अनगार सुबाहुकुमार ! जीवन मे कितना बड़ा परिवर्तन हुआ। कल

के राजकुमार आज अनगार बन कर संयम की आराधना में लीन हैं। इसलिए शास्त्रकार ने 'अणगारे जाए' ऐसा शब्द दिया है अर्थात् अनगार रूप मे सुबाहुकुमार का नया जन्म हो गया है।

सुबाहुकुमार ने सामायिक चारित्र अंगीकार किया है। सामायिक चारित्र के अनेक रूप हैं। सम्यग्दर्शन, देश विरति सर्व विरति और सूत्र पाठन इत्यादि सामायिक चारित्र के ही रूप-रूपान्तर हैं। मोक्षभिलाषी को समभाव की प्राप्ति होना आवश्यक है। क्योंकि अनन्तकाल से यह आत्मा विषम भाव में रमण कर रहा है। इसीलिए इसे अनन्त संसार में भटकना पड़ रहा है। यदि उसे चौरासी के चक्कर से छुटकारा पाना है तो उसे समभाव में आना ही होगा। सम्यक्त्व का पाठ पढे बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। समभाव का अर्थ है कि प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के समान समझना, हमें जैसे सुखप्रिय है और दुख अप्रिय है इसी तरह सभी आत्माओं को सुख प्रिय और दुख अप्रिय है। ऐसा समझ कर किसी को दुख नहीं देना चाहिए। अपनी आत्मा ही सुख और दुख का कर्त्ता और भोक्ता है। दूसरे सब निमित्त मात्र हैं इसलिए किसी भी प्राणी पर राग और द्वेष नहीं लाना चाहिए। इन बातों पर शुद्ध श्रद्धा रखना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन सामायिक चारित्र का पहिला स्वरूप है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाने के बाद देश विरति रूप सामायिक चारित्र का नम्बर आता है। दो घड़ी के लिए सावद्य योग का पापमय व्यापार का दो करण तीन योग से त्याग कर देना देश विरति सामायिक चारित्र कहलाता है। जीवनपर्यन्त के लिए तीन करण तीन योग से सभी सावद्य योगों का त्याग करना, समस्त पापप्रवृत्तियों का त्याग करना सर्व विरति-सामायिक-चारित्र कहलाता है और सूत्र-सिद्धान्तों का विधि पूर्वक पठन-पाठन करना सूत्र-सामायिक कहलाता है।

सुबाहुकुमार ने सम्यग्दर्शन सामायिक-चारित्र और देश विरति-

सामायिक-चारित्र की निर्मल आराधना और परिपालना करने के पश्चात् अब वे सर्व विरति रूप सामायिक चारित्र की आराधना में तल्लीन हो गए है। वे पांच समिति और तीन गुप्ति का यथावत् पालने करने लगे। नवबोड सहित ब्रह्मचर्य के आराधक बन गए है। इन्द्रिय निग्रह एव कषायों का शमन करने का प्रयत्न कर रहे है। पांच प्रकार के आचार का पालन करने लगे। इस प्रकार वे तथा रूप श्रमण बन गए हैं अथात् साधु के आचार और प्रवृत्ति के अनुसार ही वे आचार और प्रवृत्ति करने लगे। उनके अन्तःकरण और बाह्य व्यवहार में एक रूपता थी। अर्थात् वे अन्तरंग से भी शुद्ध थे और बाह्य संयम की क्रियाओ में भी उनके निर्मलता और शुद्धता थी। वे अन्दर और बाहर में भिन्नता रखने वाले नहीं थे। उनके पास बाह्याडम्बर का नामोनिशान भी नहीं था। इस प्रकार सुबाहुकुमार तथा रूप श्रमण बनकर भगवान महावीर के समीप ज्ञान-दर्शन चारित्र की निर्मल आराधना करने लगे। उन्होने तथा रूप स्थविर भगवन्तों की सेवा करते हुए ग्यारह अंगों का ज्ञान सीखा।

भाई ! स्थविर भी तीन प्रकार के बताए गए हैं-(१) वय स्थविर (२) पर्याय स्थविर (३) सूत्र स्थविर।

साठ साल की वय वाले साधु-साध्वी वय स्थविर कहलाते हैं। जिनकी दीक्षा पर्याय बीस साल की हो जाती है वे पर्याय स्थविर माने जाते हैं और जिन्होंने ठाणांग-समवायांग आदि शास्त्रों का अध्ययन किया हो वे सूत्र स्थविर कहलाते है।

तीर्थङ्करों की वाणी चार अनुयोगों में बटी हुई है। वे अनुयोग इस प्रकार हैं—(१) द्रव्यानु योग (२) गणितानुयोग (३) चरण-करणानुयोग और (४) धर्मकथानुयोग। भूतकाल में जितने भी तीर्थङ्कर हो चुके हैं, वर्तमान में जितने भी हैं और भविष्यकाल में जितने भी होंगे वे सब द्रव्यानुयोग और गणितानुयोग सभी तत्त्वों का

एक समान प्ररूपणा करते हैं। इन दोनों अनुयोगों की प्ररूपणा में भिन्नता नहीं आती है। परन्तु चरण-करणानुयोग और धर्मकथानुयोग में देश काल की परिस्थिति के अनुसार प्ररूपणा में भिन्नता हो जाती है। जैसे कि प्रथम और अंतिम तीर्थङ्कर के समान पाँच महाव्रत रूप चारित्र धर्म का निरूपण है जबकि बीच के २२ तीर्थङ्करों के समय में चार महाव्रत रूप चारित्र धर्म ही बताया गया था। प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के समय में श्वेत वस्त्रों का साधु-साध्वियों के लिए निर्देश किया गया है और बीच के २२ तीर्थंकरों के समय में साधु-साध्वी रंगीन वस्त्र भी धारण कर सकते थे। प्रथम और अंतिम तीर्थङ्कर के तीर्थ के साधु साध्वी के लिए किसी भी साधु-साध्वी के निमित्त बनाया गया आहार ग्रहण करने की मुमानियत थी जबकि बीच के २२ तीर्थङ्करों के समय में यह विधान था कि जिस साधु-साध्वी के निमित्त आहारादि बना हो तो वही उसे नहीं ले सकता था, दूसरे साधु साध्वी उस आहार को ले सकते थे। इस प्रकार देश-काल के अनुसार समाचारी में परिवर्तन हो जाता है। यद्यपि देखा जाय तो इनमें कोई खास भेद प्रतीत नहीं होता। उद्देश्य सब का एक सा ही है। परन्तु देश काल की परिस्थिति के मुताबिक उस समय की मनोवृत्ति में अन्तर आ जाता है। प्रथम तीर्थङ्कर के समय में जनता प्रायः ऋजु और जड़ हुआ करती है और अन्तिम तीर्थङ्कर के समय जनता प्रायः वक्र और जड़ होती है और बीच के २२ तीर्थङ्करों के समय की जनता प्राज्ञ और ऋजु होती है। इसलिए इस देश-काल की दृष्टि से भेद कर दिया जाता है समाचारी में।

धर्म कथानुयोग में भी परिवर्तन होता है। प्रत्येक तीर्थङ्कर अपने समय की घटनाओं और कथानकों को प्रधानता देते हैं। भ० महावीर के शासन काल में तत्कालीन घटनाओं चरित्रों और कथानकों के माध्यम से धर्म कथानुयोग की रचना की गई।

भाई ! सुबाहुकुमार ने भी अपनी कुशाग्र बुद्धि होने के कारण चारों अनुयोगों का ज्ञानोपार्जन कर लिया। जिसकी बुद्धि कुशाग्र होती है वह शीघ्र ज्ञान सीख लेता है और जिसकी बुद्धि कुन्ठित होती है वह बहुत महनत करने के बाद ज्ञान सीख पाता है। कुशाग्र बुद्धि और विनय के सम्बन्ध में एक सत्य घटना मुझे याद आ रही है जो आपके सापने रख रहा हूँ।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली आचार्य हो गए हैं। उन्होंने शासन की मर्यादा के लिए अपने आपको बलिदान दे दिया। धार नगर में उनके एक शिष्य को संथारा किया था किंतु उसके परिणाम विचलित होगए थे। जब यह खबर आचार्य श्री को लगी तो वे वहाँ आए और उस कायर शिष्य को पाट से हटा कर स्वयं उसके स्थान पर संथार लेकर सोगए। शासन की मर्यादा के लिए बिरले ही वीर बलिदान देने वाले होते हैं। उन्हीं पूज्य धर्मदासजी म० और उनके एक शिष्य की कुशाग्र बुद्धि और विनय संपन्नता के सम्बन्ध में भी एक घटना स्व० श्री बांडीलाल मोतीलाल शाह द्वारा लिखित ऐतिहासिक नोंध नामक पुस्तक में आप इस प्रकार पढ़ सकते हैं:—

पूज्य श्री धर्मदासजी म० अपने शिष्य श्री सुन्दरलालजी म० को उत्तराध्ययन-सूत्र का प्रथम अध्ययन पढ़ा रहे थे। इस अध्ययन में विनयी और अविनयी शिष्य के सम्बंध में बताया गया है। पढ़ाते समय ही एक पंडित उनके पास आया था। शिष्य अपना पाठ लेकर चले गए। उस पंडित ने महाराज श्री से प्रश्न किया कि आज के जमाने में भी क्या कोई ऐसा विनय सम्पन्न शिष्य हो सकता है ? इस प्रश्न के समाधान मे पूज्य श्री को अपने शिष्य की विनीतता पर पूरा विश्वास था। अतः शिष्य को आवाज दी "सुन्दरलाल ! जरा इधर आओ"।

शिष्य अभी पाठ लेकर अपने स्थान पर भी नहीं पहुंच पाए थे कि गुरुजी के शब्द सुन कर लौट पड़े और विनय पूर्वक हाथ जोड़कर बोले कि "जी, महाराज क्या आज्ञा है" ?

विनयवान शिष्य की परिभाषा करते हुए भ० महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन की दूसरी गाथा में बताया है कि

आणा निद्देश करे गुरूण मुववाय कारए।
इंगिया गार सम्पन्ने, से विणीए तिवुच्चइ॥

अर्थात्–जो गुरु की आज्ञा एवं आदेश के अनुसार व्यवहार करता है, जो गुरु के समीप रहता है, जो गुरु की चेष्टा और इशारों से उनके मनोभावों को समझ जाता है और उनके मुताबिक कार्य करता है वह विनयवान कहा जाता है।

भाई ! लोक व्यवहार में भी ऐसा कहते हैं कि जो सैन (इशारे) से समझता है वह मनुष्य है। जो सैन में नहीं समझे उसे बैन से समझना चाहिए। किंतु जो सैन और बैन दोनों से ही नहीं समझे तो उस पशु तुल्य व्यक्ति से कोई लेन देन (व्यवहार) नहीं रखना चाहिए।

स्व० पूज्य मन्नालालजी म० कहा करते थे कि पहले के लोग सैन (इशारे) में समझ जाया करते थे किंतु धीरे २ आज जमाना ऐसा आगया है कि लोग सैन और बैन में ही नहीं समझते है। जब कोई व्यक्ति सैन ओर बैन से ही नहीं समझाता है तो उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। दुनियादारी में भी कई प्रसंग ऐसे आते हैं जब किसी को सैन में समझाया जाता है और जब सैन में नहीं समझता

है तो बैन से समझाया जाता है। किंतु जब वह इन दोनों से नहीं समझता है तो फिर उससे कोई भी लेन देन नहीं रखता है। इसलिए जो इशारे में समझ जाता है वह देवता के मानिंद है, जो कहने से समझता है वह मनुष्य है और जो डंडों से भी नहीं समझता वह पशु से भी गया बीता है। इसलिए इशारे में समझ कर ही कार्य कर लेना चाहिए।

हां, तो पूज्य धर्मदासजी म० के आवाज लगाते ही वह विनयवान शिष्य पीछे पैरों लौट कर तत्काल गुरु के समीप उपस्थित हुए। तब गुरुजी ने कहा —'जाओ'। मुनि सुन्दरलालजी पुनः लौट गये। वे थोड़ी दूर ही गये होंगे कि गुरुजी ने फिर आवाज लगाई और शिष्य पुनः गुरु की सेवा में उपस्थित हो गए। गुरुजी ने फिर कह दिया कि जाओ! और वे उसी विनीत भाव से पुनः लौट गये। इस प्रकार गुरुजी ने शिष्य को २१ बार बुलाया और २१ बार ही शिष्य गुरु की सेवा में उसी सहज भाव में गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए आए और गुरु की आज्ञा मिलते ही पुनः शान्त भाव से लौट गए। कहिए! उनके जीवन में कितना धैर्य था, सरलता थी और कितनी सहनशीलता थी। जीवन का कितना ऊँचा आदर्श वे प्राप्त कर चुके थे।

परन्तु आज की स्थिति तो यह हो चुकी है कि गुरु यदि शिष्य को एक दफे से दूसरी बार आवाज़ लगा देता है तो गुरुजी को एक के बदले कई आवाजें सुनने को मिल जाती हैं। शिष्य के दिमाग का पारा चढ़ जाता है। शिष्य, गुरु को मूर्ख और बिगड़े दिमाग का समझने लगता है और उनकी आज्ञा को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। कहिये! उस स्थिति में और आज की स्थिति में कितना अंतर आगया है! शिष्य के हृदय से विनय भावना कहां गायब होगई!

हां, तो मुनि सुन्दरलालजी की उक्त विनयशीलता का उस पंडित के हृदय पर गहरा असर पड़ा और उसने अपनी निर्मूल शंका को साकार होते हुए देखकर आश्चर्य प्रकट किया और कहा कि महाराज ! आज भी ऐसे विनय सम्पन्न शिष्यों से यह पृथ्वी गौरवान्वित हो रही है। और वह भक्ति से गद्गद् होकर बोल उठा कि गजब का विनय और सहनशीलता है इन मुनिराज में !

भाई ! पहिले जमाने में शिष्यों में विनय की प्रधानता थी तो वे गुरु से ज्ञान भी शीघ्र प्राप्त कर लेते थे। जब कि आज अविनयी शिष्यों में ज्ञान की मात्रा भी घटती जा रही है। जो विनयी होता है उसमें बुद्धि की कुशाग्रता भी होती है और अविनयी कुण्ठित बुद्धि का हो जाता है।

अब आप कुशाग्र बुद्धि और स्मरण शक्ति का चमत्कार भी देख लीजिए। वह पण्डित अपने साथ एक हजार श्लोकों वाली पुस्तक भी लाया था। उस पुस्तक को महाराज श्री ने देखी और कहा कि पंडितजी ! आप यह ग्रंथ आज के लिए यहां छोड़ जाइये और कल वापिस लेजाइयेगा। पंडित ग्रंथ म० श्री के पास रख कर चला गया। तब गुरुजी ने उक्त पुस्तक में से ५०० श्लोक स्वयं ने कंठस्थ कर लिए और ५०० श्लोक अपने शिष्य को कंठस्थ करने के लिए वह पुस्तक दे दी। शिष्य ने भी अपनी कुशाग्र बुद्धि से कुछ ही घंटों में वे श्लोक कंठस्थ कर लिए। दिन व्यतीत हो गया। रात्रि में प्रतिक्रमणादि से निवृत्त होकर गुरुजी ने ५०० श्लोक शिष्य को सुना दिये जो शिष्य को कंठस्थ हो गए और शिष्य ने अपने कंठस्थ किए हुए ५०० श्लोक गुरुजी को सुना दिए और वे गुरुजी को कण्ठस्थ हो गए। इस प्रकार वह एक हजार श्लोक वाला ग्रंथ एक ही दिन में दोनों को कंठस्थ हो गया।

दूसरे दिन पंडितजी उक्त ग्रंथ को लेने आये। गुरुजी ने उस ग्रंथ को देते हुए कहा कि इसमें से आप जो भी श्लोक पूछना चाहें पूछ सकते हैं। पंडित ने जो भी श्लोक पूछे उन्हें गुरु-शिष्य ने ज्यों के त्यों सुना दिए। बुद्धि की अलौकिक प्रतिभा और स्मरण शक्ति का चमत्कार देख कर पंडित दंग रह गया। वास्तव में एक हजार श्लोक कुछ ही घण्टों में इस प्रकार कंठस्थ कर लेना कोई साधारण बात नहीं थी। इसके लिए कितनी कुशाग्र बुद्धि की आवश्यकता होनी चाहिए। परन्तु इस कुशाग्र बुद्धि को उत्पन्न करने वाला विनय है। विनय से ही बुद्धि का विकास होता है। ज्ञान का सम्पादन यथेष्ट रूप में हो जाता है। विनय के बिना ज्ञान का विकास नहीं होता। विनयवान शिष्य से गुरु सदैव प्रसन्न रहता है और विनय से प्रसन्न होकर गुरु अपने ज्ञान के खजाने की चाबी शिष्य के सामने खोल कर रख देता है। इसलिए ज्ञान प्राप्ति के मुख्य साधन विनय को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

आजकल के कॉलेज, यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाले छात्रों में विनय का अभाव सा पाया जाता है। यही कारण है कि उनमें जैसी योग्यता हासिल होनी चाहिए वह नहीं आ पाती है। केवल परीक्षाएं पास कर लेने मात्र से ज्ञान का विकास होना नहीं माना जा सकता। विद्याध्ययन के साथ छात्रों में अनुशासन और विनय का होना नितान्त आवश्यक है। अनुशासनहीनता और अविनीतता के कारण छात्र उच्छृंखल हो जाते हैं। उनके जीवन का समुचित विकास नहीं हो पाता। इसलिए छात्रों को जीवन के पूर्ण विकास के लिए गुरुजनों का विनय करना चाहिए। विनय करने से उनकी सीखी हुई विद्या में चारचांद लग जाते हैं।

भाई! सुबाहुकुमार भी बड़े विनयवान थे। उन्होंने अपने गुरुजनों का समुचित आदर और विनय करके ज्ञानाभ्यास किया।

उनके विशेषण में शास्त्रकारों ने उन्हें "जाइसंपन्ने, कुलसम्पन्ने" भी कहा है। अर्थात् सुबाहुकुमार विनय सम्पन्न होने के साथ २ जाति सम्पन्न और कुलसम्पन्न भी थे। शास्त्रकार ने जाति सपन्न और कुलसम्पन्न का अर्थ आजकल की मान्यता के अनुसार नहीं किया। आजकल तो जो जाति से ऊंचा या नीचा हो उसी को जाति कुलसंपन्न माना जाता है। परन्तु इस प्रकार का अर्थ सूत्रकार को अभीष्ट नही है। उन्होने जाति-कुल को महत्व नहीं दिया किन्तु गुणो को महत्व दिया है। हरिकेशी मुनि का उदाहरण इसके लिए ज्वलंत प्रमाण है। ऐसी हालत में सूत्रकारों ने जो जातिसम्पन्न कुल-सम्पन्न विशेषण दिया है उसका अर्थ टीकाकारों ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि उनका मातृपक्ष और पितृपक्ष उज्जवल और निष्कलंक था। यानि जिसका मातृपक्ष निर्मल और कलंक रहित हो उसे जाति सम्पन्न माना गया है। जिसका पिता अपने जीवन में निर्मल और निष्कलंक रहा हो उससे पैदा होने वाली संतान को कुलसम्पन्न समझा जाता है। किसी जाति विशेष में या कुलविशेष मे जन्म लेने मात्र से कोई जातिसम्पन्न या कुलीन नहीं माना जा सकता। परन्तु आचार-विचार की मर्यादाओं में पवित्र जीवन बिताने वाले ही जातिसम्पन्न और कुलसम्पन्न कहे जा सकते हैं।

सुबाहुकुमार के माता-पिता भी आचार-विचार की मर्यादाओं का निर्मलता से पालन करने वाले सदाचारी थे। इसलिए उनकी संतान में भी वे गुण सहज भाव में आचुके थे। जो जाति सम्पन्न व्यक्ति होगा उसकी आंखों में लज्जा और शर्म टपकेगी। कुल संपन्न होगा वह विनयी होगा। वह लोक व्यवहार में दूषित प्रवृत्तियों से सदैव संकोच करेगा। तो ऐसे सदाचारी कुल में उत्पन्न होने वाली सन्तान को सूत्रकार ने जाति सम्पन्न-कुलसंपन्न का विशेषण दिया है। ऐसे जाति-सम्पन्न और कुलसम्पन्न व्यक्तियों से ही देश, जाति, धर्म, समाज

और राष्ट्र का कल्याण और उत्थान संभवित है। अरे! वर्णशंकर संतान से भी कभी जाति, देश, धर्म, समाज या राष्ट्र का कल्याण और उत्थान हो सकता है? कदापि नहीं! क्योंकि जाति-कुल की मर्यादाओं से जो व्यक्ति हीन होते हैं तो उनकी संतान भी मर्यादाहीन होती है। वे कभी जाति, धर्म, समाज या राष्ट्र का कल्याण नहीं कर सकते। इसीलिए भगवान महावीर ने आचार-विचार की मर्यादाओं पर विशेष रूप से जोर दिया है। उन्होंने साधु-साध्वियों के लिए ही आचार-विचार के नियम-उपनियम नहीं बनाए अपितु श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी नियम-उपनियम बनाए हैं। यही कारण है भगवान के तीर्थ में विचरण करने वाले साधुसाध्वी, श्रावक श्राविकाओं में आचार-विचार की मर्यादाओं का पालन दूसरे धर्मावलम्बियों की अपेक्षा आज भी अधिक मात्रा में होता हुआ दिखाई देता है।

सुबाहुकुमार ने जाति-कुलसम्पन्न और विनय सम्पन्न होने के कारण थोड़े ही समय में ग्यारह अंगों का ज्ञानार्जन कर लिया। पुस्तकों से पढ़ा हुआ ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं कहलाता अपितु विनय पूर्वक गुरुजनों की सेवा करते हुए जो अनुभव जन्य ज्ञान प्राप्त किया जाता है वही ज्ञान सद्ज्ञान और वास्तविक ज्ञान कहा जाता है।

मोक्ष मार्ग की साधना के लिए चरित्र पालन की विधि का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। ज्ञान के बिना चारित्र का पालन अधूरा है। इसीलिए दशवैकालिक-सूत्र के चौथे अध्याय में बताया है कि— "पढमं नाणं तओ दया"। अर्थात् पहिले ज्ञान प्राप्त करो। जीव-अजीव आदि नव तत्वों की जानकारी होने के बाद ही उन जीवों की रक्षा-दया की जा सकती है। जिसे जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष आदि का ज्ञान ही नहीं है तो वह

जीवाजीव के भेद को समझे बिना जीवों की कैसे रक्षा करेगा? ज्ञान हुए बिना वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य, हिताहित, श्रेय, प्रेय, खाद्य-अखाद्य, भक्ष्याभक्ष्य आदि बातों का विवेक नहीं कर सकता है। जब नवतत्वादि का ज्ञान हो जाता है तो वह अशुभ कार्यों से निवृत्ति एवं शुभ कार्यों में प्रवृति करने लगता है। ज्ञान के प्रकाश के सहारे चारित्र के मार्ग पर यथाविधि गति की जा सकती है। ज्ञान के प्रकाश के अभाव में साधक कंटकाकीर्ण मार्ग में भटक जाता है और अपने निर्धारित लक्ष्य से इधर उधर भटक जाता है। इसीलिए ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि पहले ज्ञान का प्रकाश हासिल करो और फिर उस प्रकाश के सहारे अपने साधना के पथ पर चलो ताकि निर्विघ्नता पूर्वक अपने केन्द्र पर पहुंच सको।

भाई! ज्ञान की महिमा का कोई पार नहीं है। आप चाहे लौकिक दृष्टि से देखें चाहे आध्यात्मिक दृष्टि से देखें परन्तु दोनों दृष्टियों से ज्ञान का बड़ा भारी महत्व है। कहा है कि :—

गृहस्थ धर्म और मुनिधर्म ये दोनों ज्ञान आधार।
ज्ञान बिना संसार का सरे चले नहीं व्यवहार ॥१॥
ज्ञान बिन कभी नहीं तिरना, करो तुम अच्छी तरह निरणा ॥टेर॥

भाइयों! दुनियादारी के जितने भी व्यवहार चल रहे हैं वे भी सद् ज्ञान के आधार से ही चल रहे हैं। संसार व्यवहार भी तभी अच्छी तरह निभाया जा सकता है जब कि उसका भी अच्छी तरह ज्ञान हो। अन्यथा इधर-उधर धक्के ही खाने पड़ते हैं। जैसे आप दुकानदार हैं और आपकी दूकान में नाना प्रकार की वस्तुएँ बेचने के लिए रखी हुई हैं। यदि आपको उन वस्तुओं के खरीदी और बेचने के भावों का भलीभांति ज्ञान है तब तो आप कोई हालत में घाटे में

नहीं रह सकेंगे। परन्तु यदि आपको इस बात का ज्ञान नहीं है तो आप जरूर नुकसान उठायेंगे। और एक दिन वह भी आ सकता है जब कि दूकान पर ताला लगाने की नौबत आ जाय। भाई! यह व्यापार है और इस व्यवहार में 'अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' वाला न्याय लागू नहीं हो सकता। व्यापार चलाने में भी दिमाग की जरूरत है। यह कोई आसान काम नहीं है। जिस २ वस्तु का जो व्यापारी हो उसे उन वस्तुओं के दिसावरों की विविध मण्डियों के भाव भी मंगाने पड़ते हैं। समय २ पर देश के वातावरण से होनेवाली तेजी मन्दी को भी ध्यान में रखते हुए दीर्घदृष्टि से व्यापार किया जाता है। जो व्यापारी दीर्घदृष्टि और अनुभव से शून्य होता है वह व्यापार को कुशलतापूर्वक नहीं चला सकता और उसकी आंखों में धूल झोंककर दूसरे फायदा उठा लेते हैं। इस प्रकार दुनियादारी के कामों में भी ज्ञान की आवश्यकता है।

संसार में व्यवहारिक ज्ञान की तो उपयोगिता है ही परन्तु इससे भी अत्यधिक उपयोगी है आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति। जब तक आत्मज्ञान नहीं हो जाता वहां तक सांसारिक व्यवहार के ज्ञान की कोई विशेष कीमत नहीं है। जो आत्म कल्याण के इच्छुक हैं उन्हें तो आत्म ज्ञान करना नितान्त आवश्यक है। मोक्ष मार्ग का प्ररूपण करते हुए शास्त्रकार ने सबसे पहिले ज्ञान को ही स्थान दिया है। कहा गया है कि:—

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गु त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वर दंसिहिं॥ उ. २८ अ. २ गा.

अर्थात्—सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थङ्कर भगवान ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप मोक्ष मार्ग की प्ररूपणा की है। इन चारों ही प्रकार के मोक्ष मार्ग में सर्वप्रथम स्थान ज्ञान को दिया गया है। इससे ज्ञान की विशेष रूप से महत्ता स्वीकार की जाती है।

जिसे सम्यग्ज्ञान हो जाता है उसका बेड़ा पार हो जाता है। इसलिए सर्वप्रथम सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

आजकल के जमाने में शिक्षा का प्रचार और प्रसार विशेष रूप से बढ़ता जा रहा है। भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत यत्र-तत्र-सर्वत्र गांव २ में स्कूलें खुलवादी है। प्रौढ़शिक्षा एवं बालशिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाने लगी है। कोई भी भारतवासी निरक्षर न रह सके ऐसी उनकी योजना है। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी सही अर्थों में जिसे शिक्षा कहनी चाहिए वह तो आज कल नहीं दी जा रही है। अक्षरज्ञान और पुस्तकीयज्ञान करादेना ही शिक्षा का वास्तविक अर्थ नहीं है। परन्तु आत्मा के सम्बन्ध में ज्ञान कराना, धार्मिक-शिक्षण देना ही शिक्षण की उपयोगिता एवं हितकारिता है। जबकि इस तरफ शिक्षण शास्त्रियों का कोई लक्ष्य नहीं है। आज तो व्यावहारिक शिक्षण को प्रधानता दी जा रही है और धार्मिक-शिक्षण को हिकारत की दृष्टि से देखा जा रहा है। धार्मिक-शिक्षण के अभाव में आजके विद्यार्थी कलके होनेवाले सच्चरित्र ईमानदार, देशभक्त नागरिक कदापि नहीं बन सकते। यदि व्यवहारिक शिक्षण के साथ २ उन विद्यार्थियों को आत्म-ज्ञान का शिक्षण दिया जाएगा तो वे भविष्य में नीतिवान, सदाचारी राष्ट्र के नेता बन सकेंगे। आज माता-पिता आदि संरक्षक गण अपने पुत्र-पुत्रियों को व्यावहारिक शिक्षण तो बी० ए० एम० ए० तक करा देते हैं किंतु धार्मिक-शिक्षण की तरफ कोई लक्ष्य नहीं देते हैं। उन्हें जीवाजीवादि नवतत्त्वों का बोध, लोक अलोक, और आत्मा के विषय में कोई ज्ञान नहीं कराया जाता। परन्तु सब कुछ व्यावहारिक शिक्षण लेने के पश्चात् भी यदि आध्यात्मिक ज्ञान नहीं सीखा तो वह सब कुछ का ज्ञान प्राप्त करलेना भी व्यर्थ है। क्योंकि नीतिकार कहते हैं कि स्वार्थ के साथ २ परमार्थ भी आवश्यक है। आपने अपने जीवन निर्वाह के

लिए व्यावहारिक शिक्षण तो लेलिया किन्तु आत्मा के उद्धार के लिए, आत्मकल्याण के लिए यदि शिक्षण नहीं किया तो वह सबकुछ हासिल किया हुआ ज्ञान भी व्यर्थ है। इसलिए व्यावहारिक शिक्षण के साथ २ आत्म-ज्ञान का शिक्षण दिलाना भी नितान्त आवश्यक है।

आजकल शिक्षा प्राप्त करने का एक मात्र उद्देश्य अर्थोपार्जन रह गया है। माता-पिता और विद्यार्थी सब यही समझ बैठे हैं कि जितनी कॉलेज और विश्वविद्यालयों की ऊँची से ऊँची डिग्रियां, प्रमाण-पत्र प्राप्त करेंगे उतना ही अधिक कमाने का जरिया बन जाएगा। इसीलिए आज रिश्वतें देकर भी पुत्र-पुत्रियों को उनके अभिभावक कॉलेज और विश्वविद्यालय में भर्ती कराते हैं। वे सोचते हैं कि एक दिन हमारा बेटा डाक्टर, इन्जीनियर, बैरिस्टर, जज या मिनिस्टर आदि बनकर अधिक से अधिक पैसा कमा सकेगा। व्यवहारिक शिक्षण के लिए किसी को प्रेरणा देने की आवश्यकता नहीं रही। उसके लिए स्वयंमेव छात्र या उसके अभिभावक साधन जुटा देते हैं। परन्तु जब धार्मिक शिक्षण का प्रश्न आता है तो सबके सिर पर सल चढ़ जाते हैं। भाई! यह निश्चित रूप से आप ध्यान में रखिए कि धार्मिक शिक्षण की आवश्यकता व्यवहारिक शिक्षण की अपेक्षा कई गुनी अधिक है। व्यवहारिक शिक्षण से आप दुनियादारी का काम चला लेंगे परन्तु जो अपनी मूल भूत चीज है और उसके सम्बन्ध में अज्ञात रहे तो उससे आपका वास्तविक कल्याण कैसे हो सकता है? आत्मा का ज्ञान धार्मिक-शिक्षण के बगैर नहीं हो सकता और जब तक आत्मा का ज्ञान नहीं होगा तब तक आत्मा का कल्याण होना असम्भव है। इसलिये आत्मा का कल्याण करने के लिए आत्म-ज्ञान सीखना आवश्यक है। आपने यदि संसार व्यवहार की सभी कलाएं सीख ली किन्तु आत्मा की कला नहीं सीखी तो सब बेकार है।

काशी देश में वाणारसी नाम की नगरी थी जिसे आजकल बनारस कहते हैं। वहां बनास और असी नामक दो नदिएँ बहती हैं। इन दोनों नदियों के बीच में यह नगर बसा हुआ होने के कारण इसे बनारसी कहते हैं। प्राचीन काल से इस नगरी की बहुत अधिक प्रसिद्धि रही है। वैष्णव धर्म का यह बहुत बड़ा तीर्थ होने के साथ २ शिक्षण और विद्या का भी बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। काशी संस्कृत विद्या का एक मुख्य केन्द्र माना जाता है। प्राचीन काल में तो यह संस्कृत शिक्षण का धाम ही था। दूर दूर से विद्यार्थी गण संस्कृत का अध्ययन करने के लिए आते थे और वहां वर्षों तक अध्ययन करने के पश्चात् कई प्रकार की विद्याओं में पारंगत होकर स्वदेश को लौट जाते थे। उस समय एक विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए काशी के किसी विद्यालय में भर्ती हुआ। उसने कई वर्षों तक वहां रह कर न्याय, ज्योतिष, काव्य, व्याकरण आदि कई विषयों का खूब अध्ययन किया। अध्ययन काल समाप्त हो जाने पर वह अपने घर जाने के लिए रवाना हुआ। उक्त विषयों में पारंगत पंडित हो जाने से उसे अभिमान आगया था। वह अपने आपको बड़ा धुरंधर पंडित मानने लगा था। होना तो यह चाहिए था कि उसे जितना उच्च कोटि का विद्वान् हो गया था उतना ही विनम्र और सरल हृदयी बन जाना था। जैसे कि आम्र वृक्ष में ज्यों ज्यों फलों की बहुमता होती है त्यों त्यों वह नीचे झुकता जाता है। इसी तरह ज्यों २ ज्ञान का विकास हो त्यों २ व्यक्ति में विद्वता के साथ विनय और नम्रता भी आनी चाहिए। ज्ञान के विकास के साथ विनय, संपन्नता, नम्रता होना सोने में सुगंध के समान है। कहा भी है:—

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्र त्वाद् धनाप्नोति, धनादि धर्मः ततः सुखम्॥

अर्थात् सच्ची विद्या से विनय की प्राप्ति होती है। विनय आजाने के बाद पात्रता आती है। पात्र होने से धनोपार्जन होता है। धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है। ऐसी नीतिकारों की मान्यता है। किन्तु इसके विपरीत उस पण्डित को विद्या का अजीर्ण यानि अहँकार पैदा हो गया। अभिमान में छका हुआ वह पण्डित अपनी पुस्तकों के ढेर को लेकर वह चल पड़ा। चलते २ रास्ते में एक गांव आया। वहां उसने विश्राम किया। चूंकि वह अभिमान में समा नहीं रहा था अतः शास्त्रार्थ के लिए उसने गांव वालों को चैलेंज दिया। एक पण्डित शास्त्रार्थ के लिए तैयार होकर आया किंतु उसने अपनी वाक्पटुता से उसे हरा दिया और उसकी पुस्तकें छीन लीं। उसका अभिमान इस विजय से और भी बढ़ गया। इस प्रकार वह आगे से आगे अनेक गांवों के पंडितों को हराता हुआ और उनकी पुस्तकों को छीनता हुआ एक नदी के किनारे पहुंचा। पहिले जमाने में रेल मोटर आदि से मुसाफरी करने के साधन उपलब्ध नहीं थे। उस पण्डित के पास पुस्तकों का एक गट्ठड़ इकट्ठा हो गया था। उसे नदी पार करके आगे जाना था। नदी से पार होने का साधन नाव है। अतः उसने नाव वाले से कहा कि मुझे इन पुस्तकों सहित उस पार पहुंचा दो। नाविक ने सहर्ष नाव में बिठा लिया और नाव खेने लगा। नदी के बीच में पण्डित ने उससे पूछा— तुमने व्याकरण सीखी है? नाविक ने कहा—मैं व्याकरण नहीं जानता। यह सुनते ही पण्डित ने अभिमान की भाषा में कहा—तो तुम्हारा आधा जीवन वैसे ही चला गया। यह कह कर उसने पुनः पूछा—नाविक! तुमने ज्योतिष विद्या सीखी है? नाविक ने कहा—पण्डितजी! मुझे ज्योतिष विद्या सीख कर क्या मतलब सिद्ध करना है। तब पण्डित ने कहा—बस तुम्हारा पाव जीवन और बेकार चला गया।

इसी बीच में नदी में जोर का तूफान आने लगा। नाव भंवर में फंस कर डगमगाने लगी। यह देख नाविक ने कहा—पंडितजी

आपने न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, भूगोल, खगोल वगैरह तो सब विद्याएं सीख ली हैं किंतु तैरने की कला भी सीखी है या नहीं ?

नाव को भंवर में फंसी हुई देखकर पण्डितजी के होश-हवास उड़ गए। उनका सारा ज्ञान का अभिमान काफूर हो गया। वे घबराए हुए धीमी आवाज में बोले-भाई ! तैरना तो मुझे नहीं आता है। तब नाविक ने जोशीले शब्दों में कहा-पण्डितजी ! आपका सारा जीवन बेकार चला गया। पंडितजी ! न्याय व्याकरण और ज्योतिष शास्त्र नहीं पढ़ने से आपने मेरा पौन जीवन बेकार बता दिया परन्तु आपने एक तैरने की कला नहीं सीखी तो आपका पूरा ही जीवन बेकार जा रहा है। आखिर ! वह नाविक तो तैरने की कला में निपुण होने से उस पार सही सलामत पहुंच गया। परन्तु पंडितजी सभी शास्त्रों के जानकार होने पर भी तैरने की कला से अनभिज्ञ होने पर नदी में डूब गए।

तो कहने का तात्पर्य यह है कि संसार का सारा ज्ञान सीख लेने पर भी यदि धार्मिक ज्ञान नहीं सीखा अर्थात् संसार-सागर को तैरने की कला नहीं सीखी तो सब जीवन बेकार है। धार्मिक ज्ञान के बिना आत्मा अंधकार मे ही भटकती रहती है। इसलिए अपनी आत्मा को अंधकार से निकाल कर प्रकाश में लाओ और इसके लिए धार्मिक ज्ञान सीखना चाहिए। धार्मिक शिक्षण से ही आपकी सन्तान उच्च एवं आदर्श बन सकती है। आत्मा का ज्ञान होने पर ही स्व और पर का कल्याण कर सकते हो। अपने बच्चों में प्रारंभिक जीवन से ही धार्मिक संस्कार डालना चाहिए ताकि वे बुरी संगति से बचे रहें। बचपन मे पड़े हुए धार्मिक संस्कार ही बालक के भावी जीवन का निर्माण करते हैं। अतएव अपने बालकों को सुयोग्य एवं सदाचारी बनाने के लिए धार्मिक संस्कार डालने का प्रयत्न करें।

भाई! अपनी सन्तान को लाखों, करोड़ों की संपत्ति का मालिक बना देने की अपेक्षा उसे अच्छे संस्कार देकर योग्य बना देना अधिक हितकारी है। सुसंस्कार ही बालक के जीवन की अमूल्य निधि है। सद् विद्या ही सच्चा और वास्तविक धन है। कहा भी है कि:—

विद्या है धन, मित्र, सभा में, आदर देवे भूप।
बिन विद्या बिन पशु सरीखा, फक्त मनुष्य का रूप ॥
ज्ञान बिन कभी नहीं तिरना, करो तुम अच्छी तरह निरणा ॥टेर॥

—

अर्थात्—ज्ञान ही सच्चा खजाना है। द्रव्य धन को तो चोर-डाकू लूट लेते हैं, राजा आदि कर के रूप में ले लेते हैं और भाई-बन्धु भी हिस्सा बटा लेते हैं तथा अन्य कारणों से भी संचित धन नष्ट हो जाता है। परन्तु ज्ञान रूपी धन वह अक्षय निधि है जो कभी नष्ट नहीं होता, कोई लूट नहीं सकता, छीन नहीं सकता और बटा नहीं सकता। यह धन ऐसा विलक्षण है कि यह खर्च करने से और अधिक बढ़ता जाता है। इसलिए यह अखूट खजाना है। यह खर्च करने से बढ़ता ही जाता है।

जो ज्ञानवान होता है उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है। राजा तो अपने देश में ही सन्मान पाता है किंतु विद्वान जहां भी चला जाता है वहीं आदर पाता है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक विद्वान की प्रतिष्ठा एवं पूजा होती है। क्योंकि कहा है कि—"जबान शीरीं तो मुराक गीरीं" अर्थात् इस जबान की मिठास और वाक्यपटुता से वह सब जगह अपना शासन जमा लेता है। भाई! मनुष्य के शरीर का आदर नहीं होता परन्तु उसमें रहे हुए ज्ञानादि सद्गुणों का आदर किया जाता है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य पशु के समान है।

मनुष्य और पशु में इतना ही फर्क होता है कि मनुष्य में बुद्धि है जब कि पशु में बुद्धि नहीं होती। ज्ञान से ही इन्सान में इन्सानियत है। ज्ञानवान होने से ही मनुष्य बड़े २ डीलडौल वाले हाथी और शेर जैसे बलिष्ट पशुओं को भी वश में कर लेता है। यदि मनुष्य में ज्ञान नहीं है तो वह किसी भी हालत में पशु से ऊंचा कहलाने का अधिकारी नहीं है।

ज्ञान से ही मनुष्य चरित्र-धर्म का यथाविधि पालन कर सकता है। ज्ञान के अभाव में किए गए जप, तप, संयम यथेष्ट रूप में फल देने वाले नहीं होते। ज्ञान के अभाव में की जाने वाली तपस्या भी काय-क्लेश के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ज्ञान सहित क्रियाएँ ही मोक्ष प्राप्ति में साधक होती हैं। इसलिए आध्यात्मिक और व्यावहारिक विकास के लिए ज्ञान की उपासना करनी चाहिए।

सुबाहुकुमार भी भगवान महावीर के चरण कमलों में रह कर तथा रूप स्थविरों से ग्यारह अंगों का ज्ञान सीख कर अपने ज्ञान के खजाने को बढ़ा रहे है। ज्ञान उपार्जन करते हुए कषायों पर विजय प्राप्त कर रहे हैं। ज्ञान सहित तपाराधन कर रहे हैं। क्योंकि ज्ञान के अभाव में कषायों पर विजय प्राप्त करना कठिन हो जाता है सम्यग्ज्ञान होने से कषायों पर विजय प्राप्त आसानी से हो जाती है। इसीलिए सर्व प्रथम सुबाहुकुमार ने ज्ञान का उपार्जन किया और फिर तपस्या में लीन हो गए।

इस प्रकार ज्ञान, ध्यान, जप और तप के द्वारा सुबाहुकुमार अपने संयम को निर्मल रूप से पालन करने लगे। अनेक वर्षों तक उन्होंने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की निर्मल आराधना की। इस प्रकार जब शरीर क्षीण हो गया और जीवन का अन्त निकट जाना तो उन्होंने

भगवान महावीर से संलेषण-संथारा करने की आज्ञा मांगी । भगवान की आज्ञा मिलने पर उन्होंने एक महिने का संथारा ग्रहण किया।

संथारा पण्डित मरण की वह विधि और आत्मा की वह तैयारी है जिसमे मृत्यु का हंसते २ स्वागत किया जाता है। सामान्य मानव मृत्यु से भयभीत होता है और दुखित होता हुआ लाचारी से मरता है। जबकि एक जैन साधु शरीर के क्षीण हो जाने पर सोचता है कि यह शरीर तो एक दिन छोड़कर जाने वाला ही है अतः उस समय वह उसकी सेवा सुश्रूशा छोड़ देता है और यह शरीर उसे छोड़े इसके पहिले ही वह इस शरीर की ममता और सार-संभाल का परित्याग कर देता है। ऐसी स्थिति में वह चारों प्रकार के आहार का त्याग कर देता है। शरीर का ममत्व त्यागकर वह केवल आत्मचिन्तन में लीन हो जाता है। वह अठारह ही पापों का पुनः त्याग कर देता है। यों तो सयम स्वीकार करते समय अठारह ही पाप स्थानों का परित्याग किया जाता है और सब प्रकार के सावद्य कर्मों को छोड़ दिया जाता है परन्तु साधक अवस्था में भूल हो जाना स्वाभाविक है इसलिए इस अवस्था में आत्मनिरीक्षण करके दोषों की आलोचना करके पुनः अठारह पापस्थानों एवं सर्व सावद्ययोगों के सेवन का त्याग किया जाता है। इस प्रकार यह आत्मा को विशेष निर्मल बनाने की विशेष प्रक्रिया है। समाधिमरण करने वाले को न जीने की आशा होती है और न मरने का भय ही रहता है। वह समाधिभाव में रहते हुए मृत्यु का हर समय स्वागत करने को तैयार रहता है। उसे न तो जीवन का मोह होता है और न मृत्यु का भय ही। वह समझता है कि मेरे तो दोनों हाथों में लड्डू है। 'जीए जुगति और मुए मुगति।'

सुबाहुकुमार ने भी उक्त विधि के अनुसार अंतिम समय में संथारा स्वीकार कर लिया और समाधिपूर्वक आत्मचिन्तन करते हुए

इस क्षण भंगुर नश्वर शरीर को छोड़कर वे सौधर्म नामक देवलोक में जाकर उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन्होंने मानवजीवन मे संयम की साधना करते हुए अपनी आत्मा का भी कल्याण किया और दूसरों के लिए भी आदर्श उपस्थित कर गए।

भाई ! महापुरुषों के जीवन चरित्र सुनाने का एक मात्र उद्देश्य यही है कि उन्हें सुनकर आप भी अपने जीवन को वैसा ही निर्मल बनाने की कोशिश करें। जीवन में कभी निराश और हताश न हों। यदि जीवन में कभी भूलें हो गई हैं तो कोई बात नहीं, आगे के लिए सावधान हो जांय। कहा है कि:—"बीती ताहि बिसारिए, आगे की सुधलेय"। अर्थात् गई गुजरी का सोच नहीं करते हुए भविष्य को समुज्ज्वल बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यदि साधना के क्षेत्र में चलते चलते कहीं गिर भी पड़ो तो पुनः सम्भल कर उठ खड़े होओ और अपनी मंजिल की ओर सावधानी के साथ पुनः चल पड़ो। ऐसा करने से तुम अपनी मंजिल तक अवश्य पहुँच जाओगे।

:: ऋषभ-भक्तामर ::

भाइयो ! चक्रवर्ती सम्राट और महारानी ने अपनी राजकुमारी श्रीमती के विवाह के पश्चात विदाई देते हुए अनेक सद्शिक्षाएँ दीं। इस प्रकार माता-पिताने पुत्री को शुभ वेला में विदाई दी। माता-पिता व राजकुमारी के नेत्रों से आंसू टपक रहे थे। विदाई के समय स्वाभाविक रूप से स्नेह की उत्कंठता के कारण आंसुओं की धारा बहने ही लगती है। इसी प्रकार जब किसी स्नेही का संयोग होता है तब भी अत्यन्त

स्नेह के वशीभूत होकर भी आंसू निकल पड़ते हैं। खैर! विदाई के समय माता-पिता ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से राजकुमारी को विदाई दी।

राजकुमार वज्रसंघ नवविवाहिता बहूरानी को लेकर बिदा हुए। रास्ते में कई जगह पड़ाव डालते हुए वे अपने नगर में पहुंचे। वहां जनता ने अपने प्रिय राजकुमार के स्वागत के लिए जगह २ दरवाजे बनाए और उनका गाजे-बाजे के साथ स्वागत करते हुए उनकी सवारी शहर में निकाली गई। राजा का प्रजा के प्रति उदार व्यवहार था और उसीका यह ज्वलंत उदाहरण था कि प्रजा ने अपने राजकुमार का सोत्साहपूर्वक दिल खोलकर स्वागत किया। राजकुमार वज्रजंघ इस प्रकार भव्य जुलूस के साथ महल में प्रविष्ट हुए। राजकुमार वज्रजंघ ने आई हुई जनता को धन्यवाद देकर विदा किया। अब वे आनन्दपूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

कालान्तर में महाराज स्वर्णजंघ ने विचार किया कि अब राजकुमार वज्रजंघ राज-काज चलाने में निपुण होगया है अतः इसे राज्य का भार सौंपकर मुझे आत्मकल्याण करना चाहिए। यह सोचकर राजा ने मंत्रियों और सभासदों को बुलाया और शुभमुहूर्त में राजकुमार को सिंहासनारूढ़ कर दिया। इसके बाद राजा स्वर्ण-जंघ ने चारित्र ग्रहण करके आत्मकल्याण किया। वे समस्त कर्मों को काट कर मोक्ष में चले गए।

इधर नए राजा वज्रजंघ ने राज्य की बागडोर संभालते ही राज्य की व्यवस्था और भी अधिक सुचारु रूप से करना आरम्भ कर दिया। प्रजा के प्रति उनका व्यवहार न्याय नीति पूर्वक होता था। उन्होंने उदारता पूर्वक प्रजा की भलाई के लिए ठोस कदम उठाया। यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रजा के मुख से राजा वज्रजंघ की प्रशंसा

ही सुनाई देती थी। राजा वज्रजंघ के प्रजाहित कार्यों को देखकर प्रजा अपने पुराने राजा को भूलसी गई। राजा वज्रजंघ ने राज-सिंहासन पर बैठ कर बड़ी निपुणता से राज्य का सचालन किया।

राजा वज्रजंघ ने सज्जनों को अनुग्रह और दुष्टों को न्याय पूर्वक दंड देकर अपने कर्तव्य का सच्छी तरह पालन किया। उसने अपने खजाने को भरने के लिए कभी अनीति का आश्रय नहीं लिया। प्रजा पर अनुचित कर नहीं लादे। उसने न्याय पूर्वक संचित किए हुए द्रव्य से ही खजाने को भरा। वह प्रजा के सुख-दुख का सदैव ख्याल रखाता था और चौकन्ना रह कर इस बात का निरीक्षण भी करता कि राज्य में कहां कैसे क्या २ चल रहा है। कहा है कि:—

परहस्थवणज संदेशा खेती, बिन वर देख्या देवे बेटी।
बिना गवाही मेले थाती, ई तीनों मिल कूटे छाती ॥

भाई! अनुभवी पुरुषों का कहना है कि जो व्यापार दूसरों के ही भरोसे किया जाता है और जो खेती दूसरे के भरोसे की जाती है वे दोनों ही लाभप्रद नहीं होती हैं। कारण कि जैसे आप अपने व्यापार को दूसरे की देख रेख में छोड़ देते हैं, दुकान का काम केवल मुनीम गुमाश्तों के भरोसे पर छोड़ देते हैं और स्वयं कोई सार संभाल नहीं करते हैं तो उस व्यापार में घाटे की ही सूरत होगी और उस दूकान के भी जल्दी ताले बन्द करने पड़ेंगे। इसलिए यदि व्यापार में नफा देखना चाहते हो और दूकान का कारोबार अच्छी हालत में रखना चाहते हो तो भले ही मुनीम, गुमाश्ते काम करें किंतु समय २ पर देख रेख अवश्य कर लेनी चाहिए। इसी प्रकार यदि खेती का काम भी दूसरों के भरोसे छोड दिया तो खर्च तो तुम्हारा लग जायगा और पल्ले कुछ भी नहीं पड़ेगा। क्योंकि कहा है कि—

"खेती धणिया सेति" अर्थात् खेती में फायदा उठाना चाहते हो तो स्वयं देख भाल करो।

तीसरी बात यह है कि यदि कन्या विवाह के योग्य हो गई है तो उसके लिए वर की तलाश तुम स्वयं करो। अन्यथा दूसरे के भरोसे छोड देने से कन्या को उम्र भर का दुख हो सकता है। इसलिए वर की तलाश भी तुमको ही करनी चाहिए। चौथी बात लोक व्यवहार में यह कही जाती है कि किसी के यहां अमानत रूप कोई वस्तु रखो तो उसके लिए साक्षी अवश्य बना लेना चाहिए ताकि वक्त के उपर वह बदल न सके और पश्चाताप तथा झगड़ा करने की नौबत नहीं आने पावे।

तो राजा वज्रजंघ लोकनीति और राजनीति दोनों में ही कुशल था। वह दूसरे के भरोसे पर ही सब काम नहीं छोड़ देता था। वह स्वयं राज्य की देखभाल करते हुए चौकन्ना रहता था कि राज्य में कहां २ क्या २ हो रहा है और क्या होने की संभावना है। प्रजा पर न्याय नीति पूर्वक व्यवहार हो और प्रजा सुख-शांति में रहे यही उसका एक मात्र लक्ष्य रहता था।

भाई! आज केरल की ही स्थिति देख लो। वहां कितनी अशांति और अराजकता फैल गई है। वहां की सरकार उस स्थिति पर काबू नहीं पा रही है। जनता में असंतोष फैल गया है। हजारों प्रदर्शन-कारियों को जेल में ठूंस दिया और आंदोलन को दबाने के लिए गोलियां भी चलाई गईं हैं। यह सब स्थिति केन्द्रीय शासन की जानकारी से छिपी हुई नहीं है। जब मामला अधिक बढ़ गया और केरल सरकार समुचित शांति स्थापित नहीं कर सकी तो वहां राष्ट्र-पति का शासन लागू कर दिया गया। तो कहने का तात्पर्य है कि

शासक की चारों तरफ चौकन्नी नजर रहनी चाहिए। वज्रजंघ राजा ने राजनीति के जरिए राज्य में सुख, शांति और प्रजा की भलाई के कार्य किए। इस प्रकार वे कुशलता पूर्वक राज्य का कार्य कर रहे थे।

इस प्रकार कर्त्तव्य भावना से प्रेरित होकर राज्य का संचालन करने के बावजूद भी वे समझते थे कि यह राज्य वैभव अनित्य और क्षणभंगुर है। राज्य कुछ और है और मैं कुछ और हूँ। इस प्रकार वे राज्य भार को संभालते हुए भी उसमें आसक्त नहीं हुए। वे निश्चय पूर्वक समझते थे कि यह धन-वैभव, यह राजमहल, खजाना, चतुरंगिनी सेना, कुटुम्ब वगैरह सब नष्ट होने वाले हैं। ये सब देखते २ मिट्टी में मिल जाने वाले हैं और न जाने कब यह सब ठाठ-बाट छोड़कर अकेले ही मौत का आलिंगन करना पड़े। कहा भी है कि:—

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी २ बार ॥

नीतिकारों ने भी कहा है कि:—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म संग्रहः ॥

— अर्थात् यह शरीर भी अनित्य है। ये धन दौलत ऐशोअसरत सामान कोई भी हमेशा के लिए रहने वाले नहीं हैं। मौत हमेशा सिरहाने खड़ी है। इसलिए इन सब पदार्थों की आसक्ति छोड़ कर धर्म का आचरण करना चाहिये।

वैसे तो यह संसार प्रवाह की अपेक्षा से अनादि और नित्य है किंतु इसमें रहे हुए पदार्थों की स्थिति बदलती रहती है। क्षण क्षण में पदार्थों की स्थिति और पर्याय बदलती रहती है। इसलिए जैन दर्शन कहता है कि प्रत्येक छोटी या बड़ी वस्तु मूल रूप में तो द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है किंतु पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। यह शरीर धन, दौलत, मकान, बंगला, बगीचा, कुटुम्ब, परिवार आदि तमाम वस्तुएँ नश्वर हैं। जिस २ का संयोग हुआ है उसका वियोग भी अवश्यंभावी है। मनुष्य ने अपने रहने के लिए एक आलीशान इमारत बनवाई किंतु बनने से पहिले ही वह चल बसा। मनुष्य सोचता क्या है और कुदरत को मंजूर कुछ और ही है। कबीरदासजी ने कहा है:—

अपने खातिर महल बनाया, आप ही जाकर जंगल सोया।
इस तन-धन की कौन बड़ाई, देखत नयनों में मिट्टी मिलाई ॥

भाई! जीवन का कोई भरोसा नहीं है। न जाने कब आंखे बंद हो जांय और सब मिट्टी में मिल जाय, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह आयु तो क्षण २ घटती जा रही है। किसी श्रीमंत सज्जन के बालक की वर्षगांठ मनाई जाती है और कहा जाता है कि यह २० वर्ष का हो गया। परन्तु वास्तव में उसकी आयु में से २० वर्ष कम हो गए हैं। यह मृत्यु चौबीस ही घंटे घात में खड़ी रहती है। ऐसा समझ कर धर्म का संग्रह करना चाहिए। अन्यथा जब परलोक के लिए प्रयाण करना पड़ेगा तो खाली हाथ ही जाना पड़ेगा। उस समय धन-दौलत, कुटुम्ब-परिवार कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते। इसलिए मानव को इन दुनियां के पदार्थों में आसक्त नहीं होना चाहिए। क्योंकि यह सब साहबी या ऐश्वर्य स्वप्न के समान

निरर्थक है। इस संसार की अनित्यता को दिखलाते हुए एक कवितामय दृष्टान्त द्वारा पूज्य खूबचंदजी म० ने बड़ा मार्मिक विवेचन किया है। वह कविता इस प्रकार है:—

स्वप्न में राजा बना, सिर पर छत्र धराय।
लाखों फौजां लार है, बैठा गज पर जाय खुशी का पार न पाया है।
क्यों भूला संसार यार, सपने की माया है॥ टेक॥

(कवित्त)

रंक एक वन मांहि सूतो तब नींद आई,
सुपना में हुओ जैसे पृथ्वी को नाथ रे।
छतर धरावे सीस उमराव सोला बत्तीस,
खमा, खमा करे के जोड़ी दोनों हाथ रे॥
याचकां ने देवे दान घुरे हैं निशान,
वलि रतन सिंहासन बैठो हुकुम चलात रे।
'खूबचन्द' कहे अणी दृष्टान्त सुजान नर,
सुपनासी सम्पत्ति में क्यों राच्ये दिन रात रे॥

गर्मी का मौसम था। एक लकड़ी की भारी लाने वाला रंक भारी लेकर आरहा था। गर्मी से घबरा कर भारी को रख कर एक वृक्ष की छाया में सो गया। निद्रित अवस्था में उसने एक स्वप्न देखा कि इस देश का राजा मर गया है और राज्य सिंहासन के लिए राजा के भाई बेटों में लड़ाई हो रही है। लड़ाई निपटाने के लिए मंत्री ने प्रयत्न किया और कहा कि राज्य का जो पुराना हाथी है उसकी सूंड में एक फूल माला दे दी जाय और कलश चँवर रख दिए जांय। वह हाथी घूमता हुआ जिसके गले में माला डाल दे उसी को राजा बना

दिया जाय। सबने इस प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। हाथी को सजा कर उसकी सूंड में माला दे दी गई। वह हाथी घूमता हुआ ठीक उसी स्थान पर आया जहां कि वह लकड़हारा सोया हुआ था। सब लोग हाथी के पीछे २ चल रहे थे। ज्योंही उस सोए हुए पुरुष ने शोर गुल सुना तो वह एक दम चौंक कर उठ खड़ा हुआ। ज्योंही वह खड़ा हुआ कि हाथी ने उसके गले में माला डाल दी! सबने मिल कर उसे राज्यसिंहासन पर बैठा दिया और सारे मंत्री कर्मचारी उसकी सेवा में खड़े हो और 'अन्नदाता' की जय हो के नारे लगाने लगे। भाट विरदावलियां गाने लगे और राजा सबको इनाम में हाथी, घोड़े, पदवियां वितरण करने लगा। भाई! शास्त्रों मे कथन है कि चक्रवर्ती की सेवा में ३२ हजार मुकुटबंद राजा खड़े रहते थे। हाल में भी उदयपुर महाराणा की सेवा में १६ और ३२ उमराव हाजिर रहते थे। तो वह राजा रत्न सिंहासन पर बैठा हुआ फूला नहीं समा रहा है। उसके सिर पर छत्र है और दोनों तरफ चँवर ढोले जा रहे हैं।

परन्तु भाई! यह सब खुशी को ठाठबाट कब तक का है? जब तक कि उसकी आंख नहीं खुलती। आंख खुलते ही उसके सामने वही काठ की भारी नजर आती है। इसी प्रकार मनुष्य इस मिली हुई धन सम्पत्ति और साहबी को देख कर फूला नहीं समाता है और 'मेरी' 'मेरी' कह कर प्रसन्न होता है। किन्तु यह सब कुछ साहबी भी तब तक ही उसकी है जब तक कि आंखें खुली हैं। आंखे बन्द होते ही सारा खेल खत्म है। तो तात्पर्य है कि यह धन, दौलत राज्य, वैभव आदि सब अनित्य है। इनमें आसक्ति रखना, इन्हें अपनी समझना बुद्धिमत्ता नहीं है।

राजा वज्रजन्घ भी अनित्य भावना को अपने हृदय में अंकित किए हुए था। वे समझ रहे थे कि इस जीवन की सार्थकता तो संयम

ग्रहण करने में ही है। जिस रास्ते पर तेरे पिता गये हैं तो उसी राह पर मुझे चलना है। जीवन अनमोल है। एक २ पल को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए। इस प्रकार वज्रजंघ आत्म कल्याण करने का विचार कर रहे हैं। अब किस प्रकार संयम ग्रहण करते हैं यह आगे सुनने से मालूम होगा।

बैंगलोर
१-८-५६

अब्रह्मचर्य से हानि

卐

चित्रं किमत्र यदि तें त्रिदशांगनाभि-,
नींतं मनागपि मनो न विकार मार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिता चलेन,
मंदराद्रि शिखरं कदाचित् ॥

भगवान तीर्थङ्कर निर्विकारता की साकार मूर्ति होते हैं। केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रकट हो जाने पर उनकी आत्मा से विकार भाव नष्ट हो जाते हैं। उनकी आत्मा में उच्चस्तरीय विशुद्ध-पवित्र भावनाओं का सागर ठांठें मारता रहता है। उस पवित्र विशाल सागर में, समस्त विकार जल से प्लावित नदियें द्रुत गति से आकर भी विलीन हो जाती हैं। वे सब मिल कर भी महा समुद्र में विकार-मयी तूफान खड़ा नहीं कर सकतीं। अपितु उसमें मिल कर अपने विकार को निर्विकारता में परिवर्तित कर देती हैं। भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन एवं नामस्मरण में वह विराट शक्ति है कि विकारी से विकारी और पापी से पापी आत्मा के अन्तःकरण से भी विकार भाव और पापमय विचार नष्ट हो जाते हैं। भगवान को शुद्ध हृदय से स्मरण

करने वाले भक्त का मलीन हृदय शुद्ध एवं स्वच्छ बनकर भगवान के सदृश निर्विकारी तथा निष्कलंक बन जाता है। ऐसी अद्भुत एवं विलक्षण शक्ति है भगवान के नामस्मरण में!

आचार्य श्री मनतुंग भी भक्तामर स्तोत्र में भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुए स्तोत्र के १५ वें श्लोक में वर्णन कर रहे हैं कि हे तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव! आप बाह्य शरीराकृति से तो अत्यन्त सुन्दर हैं ही। परन्तु शरीर सौन्दर्य के साथ-साथ आपका अन्तःकरण भी इतना विशुद्ध है कि उसके किसी कोने से कामविकार की दुर्गन्ध नहीं आती। आपकी आत्मा सर्वांश में निर्विकारी है। आपका निर्विकारी हृदय सुमेरु पर्वत की तरह अडिग एवं निश्चल है। जिस प्रकार प्रलयकाल की हवा छोटे-मोटे पर्वतों को चलायमान कर देने पर भी सुमेरु पर्वत के शिखर को चलायमान करने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार हे नाथ! यदि देवाङ्गनाओं के द्वारा आपका चित्त-कञ्चित् मात्र भी विकार ग्रस्त नहीं हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! अर्थात् जिन देवांगनाओं ने ब्रह्मादिक देवों के चित्त को भी चलायमान कर दिया परन्तु वे आपके चित्त को रंचमात्र भी चलायमान करने में समर्थ नहीं हो सकीं। आपका हृदय सुमेरु पर्वत के समान निश्चल है। प्रलयंकारी हवा अन्य पर्वतों को चलायमान करने में तो समर्थ है परन्तु सुमेरु पर्वत के शिखर को चलायमान करने में वह भी असमर्थ है।

भाई! जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्र में प्रलयकाल के सम्बन्ध में ऐसा वर्णन आता है कि जिस समय षष्ठम आरे (काल) का प्रादुर्भाव होगा उस समय प्रलयंकारी वायु चलेगी। वह हवा इतने जोर की चलेगी कि छोटे-बड़े पहाड़, नदी, नाले, वृक्ष, मकान, पशु, पक्षी, मनुष्य इत्यादि सब नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँगे। न तो कोई रक्षक रहेगा और न

कोई भक्षक ही रहेगा। ऐसे भयंकर समय को ज्ञानी पुरुषों ने प्रलय-काल माना है। हां इतना सब कुछ भस्मसात हो जाने पर भी सिर्फ गंगा और सिंधु नाम की दो नदिएँ अवशिष्ट रह जायेगी। उन नदियों में बैलों के जूड़े जितना गहरा पानी बहता रहेगा। उन नदियों के किनारे यत्र-तत्र बहोत्तर बिल होगे। उन बिलों में महान पापी आत्माएँ अपने पाप कर्म का प्रतिफल भोगने के लिए आकर उत्पन्न होंगी। वे पशु पक्षी और मनुष्य बीज रूप में बहुत ही छोटे कद के होंगे। उनकी जिन्दगियां केवल पाप की वृद्धि करने के लिए होगी। एक माता छोटी वय में ही कई संतानों की दादी या नानी बन जावेगी। प्रचंड सूर्य की गर्मी के कारण वे पापी जीव दिनभर अपने बिलों में रहेंगे। रात्रि में बाहर निकलकर नदी में से मछलिएँ पकड़-कर उदर पोषण करेंगे। इस प्रकार उस प्रलयकाल के पापी जीवों को नरक के समान दुखमय जीवन व्यतीत करना पड़ेगा।

जैन सिद्धान्त में तो तीर्थङ्कर भगवान ने षष्ठम आरे के विषय में स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन कराया ही है परन्तु वैष्णव धर्म-ग्रन्थों में भी प्रलयकाल के सम्बन्ध में बताया गया है। वे भी प्रलयकाल को मान्यता प्रदान करते हैं। वैष्णव आचार्यों ने भी कहा है कि उस प्रलयकाल से बचाने वाला धर्म के अतिरिक्त कोई नहीं है। इसलिए हमारा भी आपसे अनुरोध है कि उस प्रलयकाल की हवा के झोंके से बचने के लिए इस मानव जीवन में ऐसी उत्कृष्ट धर्म करनी करलो जिससे आपको ऐसी विषम परिस्थिति को देखने का अवसर ही प्राप्त न होने पाए।

तो इस श्लोक में आचार्य महाराज के कहने का यही आशय है कि जैसे प्रलयकाल की हवा सुमेरु पर्वत के शिखर को चलायमान करने में असमर्थ है उसी प्रकार भगवान ऋषभदेव के निर्विकारी हृदय

को कोई कितनी ही कुचेष्टाएं करने पर भी विकार मार्ग की ओर प्रवृत्त कराने मे असमर्थ नहीं हो सकता। इसका कारण स्पष्ट ही है कि भगवान ने सर्व प्रथम इस कामदेव पर ही पूर्ण विजय प्राप्त करली थी। इसलिए उनका मानस विकार रहित हो चुका था। संसार में सबसे जबर्दस्त आत्मा का शत्रु कामदेव है। इसको जीतना महान् दुर्लभ है। आज विभिन्न धर्मों में जितनी भी धर्म साधनाएँ की जा रही हैं वे सब उस कामदेव को जीतने के लिए हो रही हैं। प्रत्येक साधक अपनी कड़ी साधना के द्वारा इस काम विकार से रहित होने के लिए प्रयत्नशील है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही मोक्ष के द्वार को खोलने की जबर्दस्त कुन्जी है। आत्मा से परमात्मा बनने का यही सोपान है। इस सीढ़ी का आश्रय लेते हुए मोक्ष मन्दिर में प्रवेश किया जा सकता है। कभी-कभी इस पर चढ़ते हुए साधारण आत्माएँ तो विचलित होती ही हैं परन्तु बड़े २ साधक ब्रह्मादिक भी विचलित हो जाते हैं। उनको सारी साधनाएं विकार मार्ग की ओर चले जाने से नष्ट हो जाती हैं। परन्तु महा पुरुष ही कामदेव पर विजय प्राप्त कर सच्चिदानन्द पद के अधिकारी बनते हैं। यह कामदेव संसार के समस्त प्राणियों पर अपना चंगुल जमाए बैठा है। इसके चंगुल से निकल भागना कोई आसान काम नहीं है।

भाई! पंजाब प्रान्त में कसूर नाम का कस्बा है। वहां लाला हरजशरायजी नाम के एक श्रावक हो गए हैं। इन्होंने साधु गुणमाला देव-रचना और देवाधिदेव-रचना नामक तीन कविताओं की रचना की है उनमें जहाँ देवाधिदेव के गुणों का वर्णन किया है वहाँ कामदेव पर विजय प्राप्त करने के विषय मे एक कविता में बताया है कि:—

वसुदेव दानव, नर फणिन्द सेव्यो जिने संसार।
सो मार श्री जिनराज जीते चित्त प्रमोद अपार॥

वैकुण्ठ कारण तप तप्यो प्रभु दमी गो सत सेव ।
सांच्यो सुवाक्य त्रिलोक स्वामी नमो श्री जिनदेव ॥

कवि महोदय विकार मार्ग की ओर प्रवृत्त होने वाले विकारी प्राणियों को ओर संकेत करते हुए कह रहे हैं कि देखो ! कृष्ण वासुदेव के पिता वसुदेवजी काम विकार की राह से गुजरे तो उन्हें भी कितना कष्ट उठाना पड़ा । भाई ! वसुदेवजी को पूर्वजन्म में अशुभ कर्म के उदय से शरीर बदरूप मिला था । उनकी कुरूपता को देखकर कोई भी लड़की उनसे विवाह करना पसंद नहीं करती थी । बहुत कोशिश करने पर भी जब कोई लड़की उनसे विवाह करने को रजामन्द नहीं हुई तब उनके मामा ने उन्हें अपनी लड़की देने का निश्चय किया । परन्तु जब उनके मामा की लड़की ने सुना कि वह एक बदशक्ल व्यक्ति के साथ विवाह के बन्धन में बांधी जा रही है तो उसने भी स्पष्ट रूप से अपने हृदय की भावना पिता के समक्ष व्यक्त कर दी कि वह कभी भी एक कुरुप व्यक्ति के साथ लग्न करने को तैयार नहीं है । जब यह विचार इन्होंने सुने तो इन्हें अपने जीवन के प्रति अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न हो गई । इन्होंने भी निश्चय कर लिया कि जब कोई भी लड़की मेरी शक्ल देखना पसंद नहीं करती तो मुझे भी इस जीवन में विवाह नहीं करना है । इस प्रकार जीवन से छटपटा कर साधु-संयोग प्राप्त कर संयमवृत्ति धारण करली । साधु-अवस्था में इन्होंने उग्रतपस्या करते हुए शरीर को जर्जरित कर दिया । परन्तु उग्रतपस्या करते हुए भी जिस कुरुपता के कारण इन्हें यह मार्ग अपनाना पड़ा उसे अगले जन्म में सुरुपता में बदलने की चाह को अपना मुख्य लक्ष्य बनाए रखा । वे अपनी इस उग्रतपस्या के फलस्वरूप भविष्य मे स्त्री वल्लभ बनना चाहते थे । अपनी इस उच्चकोटि की साधना को उन्होंने सुन्दर मनमोहक शक्ल के लिए बेंच दिया । इस प्रकार नियाणा करने से वे वहां से यथासमय काल करके

शौरीपुर नगर में अंधकविष्णु राजा के यहां धारिणी रानी की कूंख से उत्पन्न हुए। पिता ने पुत्र-जन्म की खुशी में एक महोत्सव मनाया इनका नाम वसुदेव रखा गया। वसुदेवजी के बड़े भाई का नाम समुद्रविजयी था। ये यादव वंशी थे। तपस्या के प्रभाव से इस जन्म में इनके शरीर का निर्माण बड़े ही सुन्दर परमाणुओं से हुआ। इनके शरीर को आकृति इतनी सुन्दर थी मानो पृथ्वी पर दूसरा चांद उतर आया हो। कण्ठ की मधुरता कोयल के पंचम स्वर को भी मात करतो थी। युवावस्था मे प्रवेश करने पर इनके अंग-प्रत्यंग से सौन्दर्य टपकने लगा। ये नगर में जिस ओर से निकल जाते उसी ओर स्त्री-बच्चों की अपार भीड़ इनके सौम्यदीदार को देखने के लिए इकट्ठी हो जाती। एक सुरीली तान सुनते ही स्त्रियां अपने घर का कारोबार छोड़कर पागल सी बनी हुई खिंची हुई चली आतीं। वे कई घंटों तक सुध-बुध खोकर इनके रूप को निहारती रहती। इस प्रकार यह दैनिक कार्यक्रम बन चुका था। स्त्रियां इनकी मनमोहकता एवं कंठ माधुर्य से इतनी आकर्षित हो चुकी थी कि उनके बाप, बेटे और पति के कठोर वचनों की ताड़ना मिलने पर भी परवाह किए बिना अपने इष्टदेव की एक आवाज पर दौड़ी चली आती। जब लोगों ने देखा कि वसुदेवजी की सुन्दरता ने सभी स्त्रियों को विमोहित कर लिया है। हमारे घर का सारा काम-काज चौपट होता चला जा रहा है और ये सब निरंकुश होती जा रही हैं तो उन सबने एक स्थान पर एकत्रित होकर मंत्रणा की और निश्चय किया कि हमको अपनी शिकायत महाराज समुद्रविजयजी से जाकर करनी चाहिए। यह प्रस्ताव पास होजाने पर कुछ प्रतिनिधि समुद्रविजयजी की सेवामें उपस्थित हुए। महाराज को नमस्कार करके वे लोग कहने लगे कि महाराज! हम लोग आपकी प्राणप्रिय प्रजा हैं। हम आपके पास अत्यन्त दुःखी होकर कुछ अर्ज करने आए हैं। आपकी इजाजत हो तो कुछ अर्ज करें।

महाराज समुद्र विजयजी ने अपने नगर के गणमान्य प्रतिनिधियों को कुछ निवेदन करने के लिए आए हुए जानकर कहा कि नगर के प्रमुख नागरिको ! तुम अपनी शिकायत को निस्संकोच भाव से सुना सकते हो। महाराज की आज्ञा प्राप्त होते ही उन लोगों ने कहा कि अन्नदाता ! आपके भाई वसुदेवजी जब २ बाजार से होकर गुजरते हैं तब तब उनकी एक हृदयस्पर्शी मीठी बात को सुनकर हमारी बहू-बेटिएँ हमारे कितना ही रोकने पर भी घर का सारा काम छोड़ कर और नन्हें २ बच्चों की परवाह किए बिना सारी सुध-बुध खोकर पागलों की तरह घर से बाहर निकल पड़ती हैं। वे सब उनके मोह में फंसी हुई टकटकी लगाकर उनके रूप को निहारती रहती है। महाराज हमारे घर के सब कार्य चौपट होते जा रहे हैं। इस अनुचित व्यवहार से हम लोग अत्यन्त दुखी हो गए हैं। इसी कारण हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। अतएव हमें पूर्ण रूप से आशा ही नहीं परन्तु विश्वास है कि आप हमें इस दुख से मुक्त करने का अवश्य प्रयत्न करेंगे। साथ ही साथ हम यह भी दुखी हृदय से अर्ज कर देना चाहते हैं कि या तो आप छोटे महाराज को रोक लीजिए या हमें शोरीपुर नगर से जाने की आज्ञा दे दीजिए। महाराज ने जब ये निश्चय कारक शब्द सुने कि मेरे भाई के द्वारा प्रजाजन अत्यन्त दुखी हो चुके हैं तो उन्होंने उन लोगों को आश्वासन दिलाते हुए कहा कि नगर निवासियो! मैं आपके कष्ट मिटाने का उचित प्रबन्ध करूंगा। महाराज ने उन्हें सब कुछ ठीक होगा, कह कर रवाना कर दिया। समुद्रविजयजी ने अपनी विलक्षण बुद्धि से इसका उपाय ढूंढ निकाला। वे न तो प्रजा को और न अपने भाई वसुदेवजी को ही नाराज करना चाहते थे। अतः दोनों को प्रसन्न रखना ही उनका मुख्य कर्त्तव्य हो गया।

सन्ध्या काल वसुदेवजी नगर में घूमते हुए वापिस महल में आए जब वे समुद्रविजयजी के पास गए तो उन्होंने बड़े ही प्यार भरे

शब्दों में कहा कि वसुदेवजी ! आजकल गर्मी तेज पड़ने लगी है। तुम्हारा सुकुमार शरीर है अतः ऐसी तेज धूप मे महल से बाहर जाना ठीक नहीं है। तुम्हें यदि घूमने का ही शौक है तो महल के बगीचे में घूम लिया करो। इस प्रकार अपने प्रिय वचनों से उनके अन्तःकरण को अपने कब्जे में कर लिया। वसुदेवजी ने अपने बड़े भाई की आज्ञा को मान्यता देकर महल में रहना पसंद कर लिया। अब वे आनन्द से महल की चहार दीवारी के अन्दर रह कर जीवन व्यतीत करने लगे।

परन्तु कुदरत को उनका महल में नजर बन्द रहना पसंद नहीं था। वह उनको इस जेल से मुक्त करा कर उनकी श्री वल्लभता की चाह को देश-देशान्तर में पूर्ण कराना चाहती थी। जिस कार्य का प्रारंभ होने वाला होता है तो कारण भी बन जाता है। एक दिन ऐसा ही कारण बना कि एक दासी चन्दन घिस कर कटोरे में ले जा रही थी। उसे जाते हुए देख वसुदेवजी ने झपट कर उसके हाथ से कटोरा ले लिया। यह माजरा देख उस दासी से न रहा गया। उसने भी अपनी ओछी जात का परिचय देते हुए कह दिया कि लालजी ! इन्हीं हरकतों से तो महाराज ने आपको महल से बाहर जाने की मनाही कर दी है। इसी कारण आप पर यह प्रतिबंध लगाया गया है। दासी के उक्त कड़े हृदय स्पर्शी शब्दों को सुनकर इनके हृदय पर गहरा असर पड़ा। उन्होंने इस जेल से मुक्त होने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वे इस परतन्त्रता से छूटने के लिए बेजार हो गए। भाई ! वचन भी हृदय पर गहरा असर कर देते हैं। मीठे वचन एक पत्थर सदृश हृदय को भी मोम बना देते हैं और कठोर वचन एक बच्चे के हृदय को भी जिद्दी और कठोर बना देते हैं। वसुदेवजी के हृदय में ये वचन तीर की तरह चुभने लगे। एक दिन मौका पाकर वे घर से बाहर निकल गये। पुण्यवान आत्मा चाहे अकेला ही क्यों न हो

परन्तु उसकी पुण्यवानी उसे अकेले में नहीं रख कर जग जाहिर कर देती है। ये भी पुण्यवान थे अतः जिधर भी चले गये उधर ही दुनियां इनके रूप को देखकर इनकी बन गई। इनके रूप की चर्चा सर्वत्र व्याप्त हो गई। इस प्रकार जगह जगह घूमते हुए इनका बहत्तर हजार कन्याओं के साथ लग्न होगया। इतने बड़े परिवार को लेकर आखिर ये शोरीपुर लौटे और आनन्द पूर्वक भोग भोगते हुए जीवन व्यतीत करने लगे। यदि आप इस सम्बन्ध में पूरा वृतान्त जानना चाहें तो 'हरिवंश पुराण' एवं 'ढालसागर' में देख सकते हैं। कहिये! वसुदेव-जी को ७२ हजार कन्याओं से विवाह क्यों करना पड़ा? इस प्रश्न का सीधा सा उत्तर दिया जाता है कि वे कामदेव पर विजय प्राप्त नहीं कर सके। काम भोग की तीव्र लालसा ने उन्हें इतने विवाह करने पर मजबूर कर दिया। यदि उन्होंने काम विकार को जीत लिया होता तो उन्हे दूर-दूर भटक कर इतनी कन्याओं को मोहिनी मंत्र नहीं सुनाना पड़ता। तो कहने का आशय है कि वसुदेवजी जैसे राजा भी इस कामदेव से पराजित हो गए।

फिर कवि कह रहे हैं कि देवता भी इस कामदेव के चंगुल से बच नहीं सके हैं। उनमें भी काम विकार की भावना प्रज्जवलित रहती है। देवताओं में भवनपति, बाण व्यंतर, ज्योतिषि, वैमानिक जाति के देव तो विषयान्ध होते हैं। वे विकार को जीतने में असमर्थ होते हैं। रात-दिन देवियों के मोह मे फँसे हुए रहते हैं। यद्यपि देविएँ तो पहिले और दूसरे देवलोक तक ही होती है किंतु ऊपर के देवलोकों के देवों के भी उपभोग मे आती है। पहिले देवलोक में छः हजार विमान और दूसरे देवलोक में चार हजार विमान अपरिग्रही देवियों के हैं। भोग प्रिय देवों को भी इस विकार भावना के कारण उन देवियो का गुलाम बन कर रहना पड़ता है। इसका भी मूल कारण यही है कि उन्होंने अपनी विकार भावना पर विजय प्राप्त नहीं की।

तो गर्ज यह है कि इस कामदेव की पकड़ से मनुष्य, देवता, पशु पक्षी वगैरह कोई भी नहीं बच सका इस विकार भावना ने सभी पर अपना जाल फैला रखा है। घास-फूस पत्ते खाने वाले पशु पक्षी भी इतने विषयासक्त हो जाते हैं कि उसमें फंस कर अपने प्राण ही खो बैठते हैं। मनुष्य एक बुद्धिशाली प्राणी होने के बावजूद भी कभी २ इतना विषयान्ध हो जाता है कि उसे अपने हिताहित-कर्त्तव्या कर्त्तव्य का भी भान नहीं रहता। संसार में इस विकार भावना के कारण अपमानित होते हुए परलोक में भी महान दुखों का सामना करना पड़ता है यह अब्रह्मचर्य मनुष्य को दुर्गति में ले जाने वाला है। अब्रह्मचारी मनुष्य काम विकार के वशीभूत होकर कभी २ अपने प्राणों को भी विसर्जन कर बैठता है।

एक समय त्रावणकोर महाराज कलकत्ते में किसी दूकान से कोई चीज खरीद रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि एक सुन्दर युवती पर पड़ी वह भी कोई चीज खरीदने को आई हुई थी। उसकी सुन्दरता देखकर वे काम विकार से विह्वल हो गए। उन्हें सैकड़ों स्त्री-पुरुषों में सिर्फ वह सुन्दरी दृष्टि गोचर हो रही थी। वह युवती माल खरीद कर रवाना हो गई। महाराज भी उसके पीछे २ चलने लगे। जब वह युवती घर पर पहुँची तो उसने देखा कि एक अजनबी मालदार उसका पीछा करते २ यहां तक आ पहुँचा है। वह महाराज की विकार भावना को पहिचान गई। उसने मन में विचार किया कि ऐसे विषयान्ध पुरुष को अवश्य ही सचोट शिक्षा देनी चाहिए। ताकि वह पुनः अपने जीवन में विकार मार्ग की ओर कदम ही न उठा सके। अतएव वह सन्मान पूर्वक उन्हें अपने मकान की छत पर ले गई। उस युवती ने इनकी अच्छी तरह खातिर की। जब कुछ अन्धकार हो गया तब युवती ने अचानक कहा कि देखना जरा! सड़क पर कैसा शोरगुल मच रहा है? मोह में अंध बने हुए महाराज ने ज्योंही खोली से नीचे

की ओर झांका त्योंही उस युवती ने अपने सतीत्व की रक्षा हेतु, उन्हें जोर से धक्का दे दिया। वे नीचे सड़क पर गिरे और गिरते ही उनके प्राण विसर्जन हो गए। मोटर ड्राइवर घटनास्थल पर मौजूद था अतः वह उनकी लाश को मोटर में रख कर घर पर ले गया। मुझे यह किस्सा मैसूर जाने पर एक भाई से मालूम हुआ। तो कहने का अभिप्राय यह है कि एक महाराज की यह दुर्दशा इसलिए हुई कि वे अपनी मिली हुई सुन्दर रानियों पर सन्तोष नहीं करते हुए काम विकार में अंधे बन गए। यदि उन्हें अपनी स्त्रियों पर संतोष होता तो यह दुर्गति होने नहीं पाती। इस विकार भावना ने एक गरीब से लेकर कई देशों के बादशाह को भी अछूता नहीं छोड़ा।

भाई! कुछ वर्ष पहिले की घटना है कि इंगलैंड की राज्य गद्दी पर जब प्रिंस ओफ वेल्स को आसीन करने का प्रश्न आया तो उन्होंने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। बात दरअसल यह थी कि राजकुमार वेल्स, सिंपलस नामक युवती से प्रेम करते थे। वे उसके प्रेम में इतने व्यामोहित हो चुके थे कि उन्होंने उसके साथ विवाह करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। लार्ड फेमिली के बड़े २ प्रतिष्ठित लोगों ने उन्हें बहुतेरा समझाया कि सिंपलस से विवाह करना अपने उज्ज्वल भविष्य को खतरे में डालना है। आप सिंपलस के साथ विवाह करने का विचार छोड़ दीजिए। आप उसे एक प्रेमिका के रूप में ही रहने दीजिए। परन्तु भाई! इश्क ऐसी खुमारी है कि यह जिसके दिलो-दिमाग पर छा जाती है तो उसे वह बेभान कर देती है। उसे दिन रात, खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते केवल प्रेमिका ही प्रेमिका नजर आती है। इसके अतिरिक्त उसे कोई चीज नजर नहीं आती। मोह के वशीभूत हो वह सबको हिकारत की दृष्टि से देखने लगता है। प्रिंस आफ वेल्स की भी यही स्थिति हुई। बारह मास पर्यन्त लोगों के समझाते रहने के बावजूद भी सिंपलस युवराज के हृदय से नहीं

निकल सकी। आखिर केबिनेट ने सलाह करके उन्हें निश्चय पूर्वक कहा कि राजकुमार अब तो आपके सामने दो ही विकल्प हैं। यदि आप इन्गलैंड के शहन्शाह बनने के इच्छुक हैं तब तो सिपलंस को हृदय से निकाल दीजिए और सिपलंस से विवाह करने के इच्छुक हैं तो इस राज्य सिंहासन को त्यागना होगा। जब उनके सामने दो विकल्प रखे गए तो उन्होंने दूसरे विकल्प को यानि सिपलंस के साथ विवाह करने को महर्ष स्वीकार कर लिया। राज्य सिंहासन को भी सिपलंश की प्राप्ति के लिए ठुकरा दिया। उन्होंने सिपलंस से शादी करके एक गांव में रहना मन्जूर कर लिया। मै पूछूं आपसे कि किस कारण उन्होंने एक बड़े साम्राज्य को ठुकरा दिया? इसका एक मात्र यही उत्तर दिया जा सकता है कि वे अपने काम विकार पर विजय प्राप्त नहीं कर सके। यदि वे काम विकार को जीत लेते तो उन्हें इन्गलैंड की बादशाहत से हाथ धोना नहीं पड़ता।

आज आए दिन आप कोर्टों में इस प्रकार के केसेज अपनी आंखों से देखते और सुनते हैं। समाचार-पत्रों में भी इसी सम्बन्ध के समाचार पढ़ते रहते है। आप देखते और सुनते हैं कि अमुक बालिका के साथ अमुक व्यक्ति ने बलात्कार किया। अमुक व्यक्ति अमुक व्यक्ति की स्त्री का अपहरण कर गया। अमुक व्यक्ति ने अपनी स्त्री को बद-चलनी के कारण मौत के घाट उतार दिया। अमुक कॉलेज का विद्यार्थी अपनी प्रेमिका के साथ तालाब या नदी में डूब कर मर गया और अब्रह्मचर्य के कारण आज सैंकड़ों व्यक्ति नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होकर अस्पतालों में नारकीय दुखों का सामना कर रहे है। तो कहने का मतलब यह है कि यदि वे लोग इस काम विकार के वशीभूत न होते तो उन्हें अनमोल मानव जीवन को हाथ से नहीं गंवाना पड़ता।

यदि आप अपने प्राचीन इतिहास को उठाकर देखें तो आपको मालूम होगा कि रावण ने यदि कामविकार पर विजय प्राप्त करली होती तो न सीता सती का हरण होता और न रावण को राम-

लक्ष्मण के क्रोध का शिकार ही बनना पड़ता। रावण के अब्रह्मचर्य के कारण ही रामायण जैसे इतिहास का निर्माण हुआ। उसके अब्रह्मचर्य के फलस्वरूप आज हजारों, लाखों वर्ष गुजर जाने के बाद भी दशहरे के रूप में रावण का पुतला बनाकर हर बड़े शहर में जलाया जाता है और उसके दुष्कृत्य पर सौ-सौ निंदाएँ की जाती है।

महाभारत का युद्ध भी काम विकार को नहीं जीतने के कारण ही लड़ा गया। इसी काम विकार ने महाभारत के युद्ध में अठारह अक्षौहिनी सेना का सर्वनाश करा दिया। यदि दुर्योधन ने कामविकार से पीड़ित होकर कौरव पाण्डवों से भरी सभा के अंदर सती द्रौपदी का चीर दुश्शासन से नहीं खिंचवाया होता तो महाभारत के इतिहास के निर्माण की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती। परन्तु इस काम विकार पर विजय प्राप्त करना बड़े बड़े शूरवीरों के लिए भी दूभर होगया।

पद्मोत्तर राजा की बदनामी आज तक काम विकार को नहीं जीतने के कारण हो रही है। एक नहीं अनेकों बड़े २ पुरुषों के नाम अब्रह्मचर्य के कारण घृणा की दृष्टि से लिये जाते है। इस कामदेव के सम्बन्ध में एक वैष्णव कवि ने कहा है कि.—

अंग अनंग उमंग-चढे तब,
संग, कुसंग कछू न विचारै।
गौरी के आगे नाचियो ईश,
कृष्ण फिरचो गोपियों के लारै॥
इन्द्र अहिल्या से भोग कियो,
ऋषि गौतम श्राप दियो तिणवारै॥

मान कहे सब काम किये पण

सो ही सिद्ध इण काम को मारे ॥

भाई ! इस कामदेव के वशीभूत होकर मानव क्या नहीं कर बैठता है ! जिस समय यह कामदेव शरीर में प्रविष्ट हो जाता है उस समय वह कामी पुरुष संग और कुसंग के भान को भी खो बैठता है। यहां तक सुना गया है कि विषयान्ध पुरुष अपनी बहिन, पुत्री, पुत्र-वधु, या अन्य कुटुम्ब की स्त्री के साथ भी अनुचित सम्बन्ध करते हुए नहीं हिचकिचाता। वह लोक लाज को भी बालाए ताक रख कर अपने विकार की पूर्ति कर लेता है। कामातुर पुरुष या स्त्री इह-लोक के भय और शर्म को भी तिलाञ्जली दे देते हैं कहा है:—'कामा-तुराणां न भयं न लज्जा'। कामी पुरुष को किसी का भय और किसी की शर्म नहीं रहती। नीतिकारों ने भी कहा है:—

ऊंघै न पूछे साथरो, इश्क न पूछे जात।

भूख न पूछे सालणो, तीनों जात कुजात ॥

भाई ! जिस समय मनुष्य को गहरी नींद आने लगती है तो वह बिस्तार और पलंग को भी याद नहीं करता। वह जहां और जैसी हालत में होता है वहीं सो जाता है। जब मनुष्य इश्क में बेजार हो जाता है तब वह जात और कुजात पूछना भी भूल जाता है और जब कोई क्षुधा से व्याकुल हो जाता है तब लूखी और सूखी रोटी को भी बिना साग के ही बड़े प्रेम से खा जाता है। तो इस कामदेव के वशीभूत होकर देवता, मनुष्य, पशु और पक्षी अपने हिताहित को भूल जाते हैं। विषय भोग में पागल बना इन्सान अपनी दिमागी शक्ति खो बैठता है और नशा उतर जाने के पश्चात् अपने किए हुए बद फैलों पर पश्चाताप करता है।

देखिए ! वैष्णव ग्रन्थकारों ने तो यहां तक कह दिया है कि इस कामदेव के वशीभूत होकर स्वयं महादेवजी ने गौरी (पार्वती) की इच्छानुसार उसके सामने नृत्य किया। भागवत पुराण के अठारहवें स्कंन्ध में लिखा है कि द्वारकाधीश कृष्ण भी काम विकार के वश में होकर गोपियों के साथ रासलीला करते थे। वे गोकुल में रहते हुए ग्वाल साथियो के साथ यमुना नदी के किनारे पहुँच जाते और जमुना में स्नान करने वाली गोपिकाओं के चीर हरण करके अपनी विषय पूर्ति करते थे। परन्तु दीर्घ दृष्टि से यदि देखा जाय तो श्रीकृष्ण के लिए यह लांछन लगाना विषयासक्त बने हुए कामी पुरुषों का ही काम हो सकता है। वे कामी पुरुष श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष की ओट लेकर अपनी काम वासना की पूर्ति करना चाहते हैं। अपने अब्रह्मचर्य के कारण वे महापुरुष को भी बदनाम करने में नहीं चूकते। भाई ! कृष्ण वासुदेव यमुना नदी में नहाती हुई स्त्रियों के वस्त्र लेकर इसलिए वृक्ष पर चढ़ जाते थे कि वे इस कर्तव्य को निन्दनीय और अशोभनीय समझते थे। वे इस बहाने उन स्त्रियों को शिक्षा देना चाहते थे कि तुम जैसी भारत सन्नारियों के लिए नग्न स्नान करना स्त्री समाज को कलंकित करना है। वे उन गोपिकाओं से भविष्य में प्रतिज्ञा करवाते कि भविष्य में हम कभी भी नग्न होकर स्नान नहीं करेंगी। तो श्रीकृष्ण का यह कार्य काम वासना की पूर्ति के लिए नहीं अपितु समाज में फैली हुई कुप्रथा को निवारण करने के लिए था। आखिर उन्होंने इस समाज घातक प्रथा का अन्त ही करवा दिया।

मैं रावल पिंडी जा रहा था। रास्ते में एक स्थान पर मेरा व्याख्यान हुआ। व्याख्यान सभा में एक प्रतिष्ठित वैष्णव सज्जन भी आए हुए थे। व्याख्यान समाप्ति पर समाज के प्रमुख व्यक्तियों ने उन सज्जन से भी एक विषय पर अपने विचार व्यक्त करने को कहा। उन्होंने अपने भाषण के दौरान में स्पष्ट शब्दों में कहा कि

आज कृष्ण जैसे अवतारी पुरुषों का सहारा लेकर काम विकार में फंसे हुए लोग अपने महापुरुषों को भी विकारी होने का फतवा दिए बिना नहीं रहते। वे उस महापुरुष को एक विकारी के रूप में देखकर अपनी वासना की पूर्ति करना चाहते हैं वे लोग मनगढ़न्त बातें बना बना कर महापुरुषों को भी बदनाम करते हैं। भाई! अब्रह्मचर्य का सेवन करना उतना ही आसान है जितना कि ब्रह्मचर्य में स्थित रहना कठिन है। श्रीमद् दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन की सोलहवीं गाथा में भगवान ने फर्माया है कि:—

अबंभ चरियं घोरं, पमाय दुर हिट्ठियं।
नायरंति मुणीलोये, भेमायण विवज्जिणो॥

अर्थात्—कामदेव को जीतना आसान नहीं है। जो साधु पुरुष हैं, वे चाह कैसी भी क्यों न रखते हों किन्तु वे विनाश की ओर जा रहे हैं। अहिंसा, सत्य अस्तेयादि जितने भी आत्मिक गुण हैं उन सबका मूल ब्रह्मचर्य है। यदि उन गुणों के मूल में ब्रह्मचर्य नहीं है तो वे गुण नष्ट हो जाते हैं। जैसे सरोवर में पानी तब तक ही स्थिर रूप में रह सकता है जब तक कि उसकी पाल मजबूत रहती है। पाल के टूट जाने पर सरोवर का पानी निकल जाता है और वह बहता हुआ पानी कई गांवों को भी ले डूबता है। इसी प्रकार मानव के जीवन रूपी सरोवर में जब तक ब्रह्मचर्य रूपी पाल सुदृढ़ रहती है तब तक जीवन गुणों से परिपूर्ण रहता है। उसके जीवन में गुणों का प्रकाश चारों तरफ फैलता रहता है। हरेक प्यासा पथिक उस जीवन से प्यास बुझा सकता है। परन्तु जब ब्रह्मचर्य रूपी पाल टूट जाती है तो उसके टूटने के साथ ही साथ उसका सारा जीवन नष्ट हो जाता है। इसलिए शास्त्रकार दशवैकालिक-सूत्र के छठे अध्ययन की सत्रहवीं गाथा में फर्माते हैं कि:—

मूल मेय महम्मस्स, महादोस समुस्सयं ।
तम्हा मेहुण संसग्गं, निग्गंथा वज्जयंतिणं ॥

अर्थात्–सब अधर्मों का मूल अब्रह्मचर्य है। यह तमाम दोषों का उत्पन्न करने वाला है। इसलिए उन दोषों को समाप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य को धारण करना चाहिये।

अब्रह्मचर्य के कारण मनुष्य हिंसा करता है, असत्य भाषण करता है, पराई वस्तु का हरण करने में भी नहीं सकुचाता, दगाबाजी करता है, दूसरे की निन्दा करता है, चुगली खाता है, दूसरे पर झूठी तोहमत भी लगा देता है और मद्य मांस का सेवन भी कर लेता है। गर्ज यह है कि वह अठारह ही पापों का सेवन इस अब्रह्मचर्य के कारण कर लेता है। यह अठारह ही पापों का मूल एवं अधर्म का मूल है। इसलिए अब्रह्मचर्य से उत्पन्न होने वाली हानियों से बचने के लिए ब्रह्मचर्य को धारण करना चाहिए। काम विकार को वश में कर लेने पर ये अठारह ही पाप नहीं होने पाते। अरिहंत भगवान ने सबसे पहिले इस काम विकार पर विजय प्राप्त की। विकार रहित होकर ही वे मोक्ष प्राप्त कर सके।

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश करते हुए स्पष्टतया कह दिया है कि हे अर्जुन ! जिनके जीवन में काम, क्रोध और लोभ होंगे वो मनुष्य-स्त्री मर कर सीधे पाताल में पहुंच जायेंगे। अतएव जो नरक के महान् दुखों से बचना चाहता है उसे इन तीनों पापों के सेवन से बचना चाहिये। स्वर्ग के अभिलाषी मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

तो तीर्थङ्कर भगवान ने काम, क्रोध और लोभ को भी जीत लिया। अनन्त काल से आत्मा को अधोगति में ले जाने वाले जो

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योगों का विकार भरा हुआ था। उसे तीर्थङ्कर भगवान ने निकाल दिया। इस प्रकार वे निर्विकारी बनकर मोक्ष के अधिकारी बने। इसीलिए हम भगवान को निर्विकारी कहते हैं। उनकी आत्मा में स्वप्न में भी कभी विकार भावना नहीं आ सकती। उन्हें कोई कितना ही विकार मार्ग की ओर प्रवृत कराने का प्रयत्न क्यों न करे परन्तु वे चलायमान नहीं हो सकते जैसे कि भाड़ में भुंजा हुआ चना तीन काल में भी अंकुर उत्पादन करने की शक्ति नहीं रखता वैसे ही तीर्थङ्कर भगवान ने विकार को जड़ मूल से नष्ट कर दिया। ऐसे निर्विकारी, निष्कलंक तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

भाई! हम लोग निर्विकारी देव के उपासक हैं। जो निर्विकारी देव की उपासना करता है उसकी आत्मा से विकारभाव नष्ट हो जाते हैं। विकारी पुरुषों के संसर्ग से विकार भावना आए बिना नहीं रहती। इसलिए निर्विकारी बनने के लिए निर्विकारी देव को ही अपना इष्ट बनाना आवश्यक है। यों तो संसार में नाना प्रकार के देव हैं और उनकी उपासना करने वाले हजारों-लाखों उपासक हैं परन्तु निर्विकारी पद की प्राप्ति उनके द्वारा अशक्य है। क्योंकि दूसरे जितने भी देव हैं उनके साथ विकार भावना रही हुई है। जैसा साध्य होता है वैसी ही साधना की गति बन जाती है। विकारी पदार्थ को निरंतर चर्मचक्षुओं से देखते रहने पर कामोत्तेजना प्रकट हो ही जाती है। पूज्य माधव मुनिजी ने तीर्थङ्कर भगवान की निर्विकारता सिद्ध करते हुए तथा अन्य देवों की विकारता बतलाते हुए एक कविता में लिखा है कि:—

कृष्ण के संग राधा है, स्वयंभू संग सावित्री।
ईशके शीश सुरसरिता, भवानी बगल में खासी॥
अनोखी आंख ये मेरी, तुम्हारे दर्श की प्यासी॥टेक॥

हे नाथ ! आपके अतिरिक्त जिस तरफ भी दृष्टिपात करता हूँ उसी तरफ मुझे विकार सहित ,देव दृष्टिगोचर होते हैं। यदि मैं श्रीकृष्ण को निहारता हूँ तो उनके साथ राधा, स्वयंभू के साथ सावित्री, महादेवजी के शीश पर गंगा और उनकी बगल में पार्वती नजर आ रही हैं। मुझे तुम्हारे सिवाय कोई निर्विकारी देव नजर नहीं आया। हे नाथ ! आप एक रूप में दिखाई देते हैं। आप सदैव समभाव में रमण करने वाले हैं। परन्तु दूसरी तरफ देखता हूँ तो कुछ और ही दृश्य दिखाई देता है।

पूज्य श्री इसी बात को स्पष्ट करते हुए बतला रहे हैं कि:—

छोड़ के रूप को अपना, धरे नाना कुरूपों को।
भक्ति के होय वश भव में, अवतरे जेम जगवासी॥
अनोखी आंख ये मेरी, तुम्हारे दर्श की प्यासी॥ टेक॥

मुझे आश्चर्य तो इस बात का है कि वे इष्ट देव कहलाकर भी समय २ पर अपने निजस्वरूप को त्यागकर संसारी जीवों के व्यामोह में फंसकर कृत्रिम रूप को धारण कर लेते हैं। इस कृत्रिम रूप में वे राग-द्वेष में फंसकर भक्त को आशीर्वाद और शत्रु को श्राप भी दे देते हैं। क्या समभावी देव के लिए इस प्रकार स्वांग बनाकर कभी आशीश और कभी दुराशीश देना उचित है ? निर्विकारी देव इन सब संसारी झंझटों से मुक्त होता है। विकारी देवों से कभी भी संसार रूपी समुद्र से पार होने की आशा नहीं की जा सकती। परन्तु भोगी लोग उनको ही अपना परम इष्ट माने बैठे हैं। उनके दिलों में अटूट श्रद्धा है कि वे देव उन्हें इस भव सागर से पार लगा देंगे। यदि ऐसा वे मानते हैं तो यह उनकी नासमझी है।

परन्तु एक जैनी जिन भगवान (राग-द्वेष का सर्वथा उन्मूलन करने वाले) को ही सच्चा देव मानता है। उसे निर्विकारी देव पर

प्रगाढ़ श्रद्धा होती है। वह उन्हें ही "तिण्णाणं, तारयाणं" मानता है। जो स्वयं संसार-समुद्र को पार कर लेता है वही दूसरे को भी पार करा सकता है। इसलिए हम अपने विकारों को जीतने के लिए निर्विकारी महापुरुष का आश्रय लेते हैं। जब हमारे जीवन से अब्रह्मचर्य नष्ट हो जायेगा तो हम भी निर्विकारी बन कर मोक्ष पद के अधिकारी बन जायेंगे।

सुबाहुकुमार ने भी काम विकार पर पूर्णतया विजय प्राप्त करने के लिए भगवान महावीर के समीप प्रवज्या अंगीकार की। मुनि धर्म का सविधि पालन करते हुए स्थविर मुनिराजों की सेवा में ग्यारह अंगों का ज्ञान उपार्जन किया। ज्ञान उपार्जन करने के पश्चात् तप साधना में लीन हुए। तपस्या करते हुए जब शरीर शिथिल हो गया तब नश्वर शरीर की अनित्यता पर विचार करते हुए इससे एक साथ सार निकालने का निश्चय कर लिया। वे दृढ़ निश्चय के साथ भगवान महावीर के समीप गए। भगवान के सामने विनीत भाव से अनशन व्रत करके जीवन को परिमार्जन करने के भाव प्रकट किए। अन्तर्यामी भगवान ने जैसा सुख हो वैसा करने की आज्ञा प्रदान करदी। तब मुनि सुबाहुकुमार ने आत्मा की आलोचना की। एक माह के अनशन के पश्चात् समाधिमरण करके, नश्वर शरीर को त्यागकर प्रथम देवलोक के बत्तीस लाख विमानों मे से किसी एक विमान में देवता बने।

भगवान महावीर ने सुबाहुकुमार के अगले भवों का दिग्दर्शन कराते हुए गौतम स्वामी से कहा—हे गौतम ! सुबाहुकुमार का जीव प्रथम देवलोक से च्यव कर पुनः मनुष्य भव को धारण करेगा। ऊपर से नीचे की ओर आने को च्यवना और नीचे से ऊपर की ओर जाने को उवट्टना कहते हैं। जैसे स्वर्ग से जो जीव आयुष्य पूर्ण

करके रवाना होता है उसे च्यवना कहते हैं और नरक से जो जीव आता है उसे उवट्टना कहते है। तो सुबाहुकुमार भी देवलोक से च्यव कर मनुष्य शरीर को धारण करेंगे। वे भोगोपभोग के साधन संपन्न घर में उत्पन्न होंगे। संसार के नानाविधि भोग भोगते हुए समय आने पर उन्हें केवली भगवान का सयोग प्राप्त होगा। धर्मोपदेश श्रवण कर वैराग्य रस में डूब जायेंगे। मात-पिता से आज्ञा प्राप्त कर स्थविर मुनिराजों के पास मुनिव्रत धारण करेंगे। पांच समिति-तीन गुप्ति का यथाविधि पालन करते हुए सयम की आराधना करेंगे।

इस प्रकार बहुत वर्षों तक तप-संयम की आराधना करते हुए यथा समय पण्डित मरण करके तीसरे देव लोक में जाकर उत्पन्न होंगे। फिर तीसरे देव लोक से चव्य कर पुनः मनुष्य भव को धारण करेंगे। यहां भी यथा समय चारित्र ग्रहण कर, उत्कृष्ट करनी करके समाधि मरण करेंगे। यहां से इनकी आत्मा सीधी पांचवें देवलोक में जाकर उत्पन्न होगी। वे लम्बे समय तक देव भोगों को भोगते हुए आयुष्य क्षीण होने पर वहां से च्यव कर पुनः भरे घर में जाकर मनुष्य शरीर को धारण करेंगे। भाई! इस प्रकार सुबाहुकुमार क्रमिक विकास करेंगे। जैसे एक विद्यार्थी प्रथम कक्षा से द्वितीय श्रेणी में आता है और एक दिन उत्तरोत्तर बढ़ते हुए बी० ए० एम० ए० की श्रेणी तक पहुंच जाता है। इसी प्रकार सुबाहु कुमार मनुष्य जन्म को धारण करके प्रवर्जित होकर और फिर कर्मों को हलका करते हुए वहां से आयुष्य पूर्ण करके सातवें देव लोक में देव रूप में उत्पन्न होंगे। वहां से चल कर पुनः मनुष्य जिन्दगी प्राप्त करेंगे। यहां भी पूर्ववत करनी करके, आयुष्य पूर्ण करके आणत नामक देव लोक में जाकर देव बनेंगे। वहां के सुख भोग कर फिर मनुष्य बनेंगे। यहां मनुष्य जन्म को सार्थक करके वे ग्यारहवें देव लोक में देवता बनेंगे। वहां से

पुनः च्यव कर मनुष्य का धारण करेंगे। यहां भी चारित्र धर्म को अंगीकार करके पुनः सर्वार्थ सिद्ध विमान में उच्च कोटि के देवता बनेंगे। सर्वार्थ सिद्ध विमान में जघन्य और मध्यम स्थिति नहीं होती। केवल उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर की होती है। उस देव लोक में उत्पन्न होने वाले देव का एक हाथ का शरीर होता है। उन्हें तैंतीस हजार वर्ष के पश्चात् खाने की इच्छा होती है। एक सागर की स्थिति वाले देवता को एक वर्ष में ही खाने की इच्छा हो जाती है। क्योंकि पुद्गलों की सरसता है। देवताओं का आहार रोमाहार होता है। और मनुष्यों का आहार कवलाहार कहलाता है। देवता वासना के भूखे होते हैं। इसी प्रकार उनका मोह भी उपशान्त रहता है।

ऐसे सर्वार्थ सिद्ध विमान में सुबाहु कुमार की आत्मा जाकर जन्म लेगी। वहां से च्यव कर वे महाविदेह क्षेत्र में जहां भोग के चारों अंगों की पूर्णता होगी, ऐसे घर में जन्म लेंगे। इस क्षेत्र में मनुष्य के शरीर की ऊंचाई पांच सौ धनुष की होती है। ऐसे तो अपने हाथ से प्रत्येक मनुष्य का शरीर साढ़े तीन हाथ का ही होता है। परन्तु महाविदेह क्षेत्र के मनुष्य का शरीर जो पांच सौ धनुष का बताया है तो उसके विषय में शास्त्रकारों ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि पंचम आरे का जब आधा समय व्यतीत हो जाएगा, उस समय के मनुष्यों के जितने लम्बे हाथ होंगे, उस हाथ के परिमाण से समझना चाहिए। इतनी अवगाहना वाले वहां जो मनुष्य होंगे उनके हाथ से पांच सौ धनुष की काया समझनी चाहिए।

चार अंगों के सम्बन्ध में सिद्धान्त में इस प्रकार वर्णन किया गया है कि:—

खित्तं, वत्थुं हिरण्णंच, पसवो दास पोरुसं।
चत्तारि काम खंधाणि, तत्थ से उववज्जइ ॥ १७ ॥

मित्तवं नाइवं होइ, उच्चा गोए य वण्णवे ।
अप्पायं के महापन्ने, अभिजाए जसो बले ॥ १८ ॥

यह उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन की सत्रहवीं, और अठारहवीं गाथा है। इसमें बताया गया है कि जो जीव पूर्व जन्म में धर्म करनी करके पुण्यशाली बन चुका है वह देवलोक से च्यव कर या नरक से उवट्टित होकर जब महा विदेह क्षेत्र में जन्म लेता है तो उसका जन्म ऐसे घर में होता है जहां कि जमीन खुली होती है, महल बाग-बगीचे होते हैं, सोना चांदी बहुतायत से होता है, दास दासी नौकर चाकर तथा पशुओं का समूह होता है, और जीवन के सभी भोगोपभोग के साधन उपलब्ध होते हैं। ऐसे भरे घर में वे पुण्यशाली आत्माएं जन्म लेती हैं। वहां उनके जन्मोत्सव, नाम संस्कार महोत्सव, केश समारोह महोत्सव और विद्याध्ययन प्रारंभ कराने आदि के उत्सव शानदार तरीके से मनाए जाते हैं। वे सबको बहुत प्रिय एवं वल्लभ लगते हैं। उनके मित्र भी बहुत होते हैं और कुटुम्बी तथा गोत्रवाले भी बहु संख्या में होते हैं। शरीराकृति भी पुण्योदय से आकर्षक प्राप्त होती है। शरीर निरोग रहता है। उनकी पाचन शक्ति इतनी तीव्र होती है कि वे जो भी खाद्य पदार्थ खा लेते हैं वे सब हजम हो जाते हैं। उनके बीमारी नजदीक नहीं आती है। पूर्व जन्म कृत शुभ कर्मों से शरीर की नीरोगता प्राप्त होती है। एक मुस्लिम कवि ने तो भगवान से वरदान मे यही मांगा है कि:—

अल्लाह आबरू से रखे, और तन्दुरुस्ती दे।

हे अल्लाहताला! यदि तेरी मुझ पर असीम कृपा है तो मैं तुझसे यही चाहता हूँ कि मुझे इज्जत से रखना और तन्दुरुस्ती बख्शना। उर्दू जबान मे भी कहावत प्रचलित है कि तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है। इसी बात को इंग्लिश में भी कह दिया है कि

Health is Wealth. अर्थात् शरीर की निरोगता ही अमूल्य धन है। इस प्रकार के सुखों में भी सर्व प्रथम सुख निरोगी काया को ही बतलाया है। यदि शरीर स्वस्थ है तो दुनियां की सभी चीजें अच्छी लगती हैं। शरीर की अस्वस्थता में कोई भी पदार्थ अच्छा नहीं लगता। स्वस्थ शरीर से ही धर्म और कर्म में पुरुषार्थ किया जा सकता है। इसलिए शरीर की निरोगता आत्म कल्याण के लिए भी नितान्त आवश्यक है।

परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि आज के मानव को जितना शरीर प्यारा नहीं लगता उतना धन प्यारा लगता है। यदि घर में करोड़ों की संपत्ति भी एकत्रित कर ली जाय परन्तु शरीर तन्दुरुस्त नहीं है तो वह धन, महल, बंगला, बाग बगीचे स्त्री या पुत्र सिर्फ आंखों से देखने के ही काम के रह जायेंगे। परन्तु कोई भी उपभोग में नहीं आ सकता। सब कुछ जानते हुए भी इस धन के मोह में फँस कर लोग शरीर की किंचित भी परवाह नहीं करते। उन्होंने अपने जीवन का एक मात्र यही उद्देश्य बना रखा है कि चमड़ी जाय परन्तु दमड़ी न जाने पाए। धन की सुरक्षा वे शरीर को गवां कर भी करना चाहते हैं। परन्तु आज समाज के सामने यह बड़ा विचारनीय और गंभीर प्रश्न खड़ा हुआ है। आज ऐसे विचार वालों की दुनियां में कमी नहीं है। हम प्रायः करके जिस प्रान्त में घूमते हैं वहाँ ऐसे विचार वाले पुरुष अधिक संख्या में हैं। इसके विपरीत जब हम पंजाब प्रान्त में गए तो उन लोगों का कहना कुछ और ही है। वे प्रथम शरीर की स्वस्थता को महत्व देते हैं शरीर की निरोगता है तो जहान है। यदि हम स्वस्थ रहेंगे तो ज्यादा दिन जिंदा रहकर धर्म की आराधना कर सकेंगे, धनोपार्जन कर सकेंगे और मिले हुए भोगोपभोग पदार्थों का अच्छी तरह उपभोग भी कर सकेंगे। वे लोग दूध मलाई खाते हैं। शरीर की तंदुरुस्ती का पूरा ख्याल रखते

हैं। जब कि इधर के लोग दूध तो जाने दीजिए परन्तु छाछ भी अच्छी तरह नहीं पीते। इधर तमाम चीजें ऐसी ही काम में ली जाती है जो तन्दुरुस्ती को खराब करने वाली है।

मैं जब रावलपिंडी जा रहा था तो रास्ते में एक लाला कह रहा था कि महाराज! मेरे यहां सिर्फ दूध का ही खर्च अधिक है। अन्य जीवन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति में विशेष खर्च नहीं होता और दूध का खर्च इसलिए अधिक है कि इसके सेवन से तमाम खाया पिया भोजन फौरन हजम हो जाता है। शौच की शुद्धता हो जाती है। शौच साफ आने से शरीर हमेशा स्वस्थ रहता है। यदि हम इस खर्च में कमी कर देंगे तो हमें डाक्टरों की शरण में जाना पड़ेगा। तब भी तो सैंकड़ों रुपये खर्च करने पड़ेंगे। इससे पहिले ही हम ऐसे काम में खर्च कर दें ताकि डाक्टरों की जेबें भरनी ही नहीं पड़ें। महाराज! जो तंदुरुस्त होगा वही सब कुछ कर सकेगा। अस्वस्थ मनुष्य न तो धन और न धर्म ही कमा सकता है।

तो मैं कह रहा था कि पुण्यशाली आत्मा को शरीर भी निरोग मिलता है। वे हमेशा तंदुरुस्त रहते हैं। वे पुण्यवान जीव बुद्धिमान होते हैं। माता पिता की आज्ञा का वे उल्लंघन नहीं करते। विनीत भाव उनके अंग-अंग से टपकता है। इन सब गुणों के सम्पन्न होने के कारण उनका यश चारों दिशाओं में फैल जाता है। दूर दूर तक लोग उनके गुणों की तारीफ करते हैं। लोग भी आपस में चर्चा करते हुए कहते हैं कि हमने आदमी तो बहुत देखे हैं परन्तु उनके जैसो खाने पीने, उठने-बैठने, चलने-फिरने, बोलने-चालने और जीवन संबंधी प्रत्येक क्रिया की चतुराई नहीं देखी। वे पुण्यात्मा तन, धन, जन और मन में भी बलवान होते हैं। उनके शारीरिक बल का तो हम किसी दूसरे से मुकाबला नहीं कर सकते।

महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेने वाले महापुरुष मे तो बल अपरिमित होता ही है परन्तु भरत क्षेत्र में भी पंचमकाल में किसी २ पुण्यशील आत्मा में भी अत्यधिक शारीरिक बल के विषय में सुना और देखा गया है। भाई! मेवाड़ देश में चित्तौड़ से आगे एक गंगराल नाम का गांव है। मैंने सुना है कि उस गांव के ठाकुर सा० का शरीर बड़ा बलवान था जैसे इधर के प्रांत में नारियल के पेड़ बहुतायत से पाए जाते हैं वैसे ही उस तरफ खजूर के वृक्ष बहुत होते हैं। वे ठाकुर सा० खजूर के वृक्ष को अपने शरीर बल से जड से उखाड़कर फैंक देते थे। इतना ही नहीं परन्तु एक ऊँट जिसकी पीठ पर तीन मन बोझ लदा हुआ हो,उसके पैरों को बांधकर उसे बोझ सहित उठा लेते थे।

हमारे पूज्य खूबचन्दजी म० कभी २ सुनाया करते थे कि टौंक के नवाब सा० भी शारीरिक बल में किसी से कम न थे। वे कभी २ निम्बाहैड़ा के दौरे पर आया करते थे। एक समय की बात है कि जब वे टौंक से निम्बाहैड़ा आ रहे थे तो रास्ते में उन्हें एक भील मिला उसने अपने अन्नदाता को एक रुपया भेंट में दिया। नवाब सा० ने उस रुपए का बतडा बना दिया अर्थात् अंगूठे और उंगली के दबाव से ही मरोड़ दिया। यह देख वह भील आश्चर्य चकित हो गया।

भाई! इन आंखों के सामने कई राजा-महाराजा ऐसे गुजरे हैं जिन्हें धोती भी दूसरे पहिनाते थे। परन्तु जब दुश्मन के मुकाबले में जाते थे तो वजनदार जिरह बख्तर शरीर पर धारण करके हाथ में वजनी भाला लेकर शत्रु पर विजय प्राप्त करके आते थे। जब कि लोग उस समय आपस में उनके सम्बन्ध में बातें करते थे कि जिन्हें धोती पहिनना भी नहीं आता है वे लड़ाई में कैसे जीतेंगे! परन्तु जब वे युद्ध में जाकर दुश्मन के छक्के छुड़ा देते तो लोग दांतों तले उंगली

दबाने लगते थे। तो शरीर बल भी पुण्यवानी से किसी किसी को ऐसा प्राप्त होता है कि लोग उनके बल की तारीफ करते हैं।

तो सुबाहुकुमार की आत्मा भी सर्वार्थ सिद्ध विमान से च्यव कर पुण्योदय से महाविदेह क्षेत्र मे भरे घर में जन्म लेगी। उन्हें भी उपर्युक्त सभी बातों की पूर्णता प्राप्त होगी। सुख के झूले में झूलते हुए बड़े होंगे। उनके माता-पिता भी उनके जन्म लेते ही धर्म करनी मे मजबूत हो जायेंगे। धर्म कार्य करने में दृढ़ता आ जाने से माता-पिता उनका नाम 'दृढ़ पइण्णा' रखेंगे। युवावस्था में प्रवेश करते ही उन्हें मुनियों का संयोग प्राप्त होगा। संत-वाणी श्रवण कर वैराग्य भावना में ओत-प्रोत हो जायेंगे। माता-पिता की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर मुनि धर्म स्वीकार कर लेंगे। संयम अवस्था में वे उत्कृष्ट करनी करके केवल ज्ञान—केवल दर्शन प्राप्त करके सिद्ध-बुद्ध और मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेंगे।

भाई! इस प्रकार सुबाहुकुमार धर्म रूपी जहाज का आश्रय लेकर मुक्ति रूपी लक्ष्मी के गले में वर माला डालेंगे। आपको सुबाहुकुमार के जीवन वृत्तान्त को सुन कर मालूम हुआ होगा कि पुरुषार्थ किए बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। वे क्रमशः धर्म करनी करते हुए आठ भव मनुष्य के और सात भव देवलोक के करके एक दिन समस्त कर्मों को नष्ट करके निरंजन-निराकार पद को प्राप्त कर लेंगे। यदि आप लोग भी इसी प्रकार धर्म कार्य में पुरुषार्थ करेंगे तो एक दिन अवश्य मोक्ष के अधिकारी बन सकेंगे। इस प्रकार सुख-विपाक सूत्र का प्रथम अध्ययन समाप्त होता है।

ऋषभ-भवान्तर

भगवान् ऋषभदेव के पूर्वभवों के सम्बन्ध में यहाँ बताया जा रहा है। भगवान ऋषभदेव की आत्मा राजा वज्रजंघ के भव में महारानी श्रीमती के साथ आनन्द पूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक-दिन रात्रि के समय महाराज वज्र-जंघ महल में श्रीमती के साथ इस नश्वर जीवन के सम्बन्ध में विचार विमर्श करने लगे। उन्होंने महारानी से वार्तालाप करते हुए कहा कि प्रिये ! मुझे राजसी वैभव का उपभोग करते हुए बहुत समय होचुका है अब इस जीवन का कोई पता नहीं कि यह कब समाप्त हो जाय। इसकी स्वप्न जैसी स्थिति है। मेरे बाप-दादा भी इस जीवन लीला को समाप्त कर चले गये और अब मुझे भी जाना निश्चित है। तो जाने से पहिले आगे के लिए कुछ कमाई करलूं जिससे भविष्य में दुःख उठाना न पड़े। इसलिए मैंने तो अब दृढ निश्चय कर लिया है कि राजकुमार को राज्यसिंहासनरूढ करके आत्म कल्याण करने के लिए साधु वृत्ति धारण कर लूंगा। महारानी ! मेरे तो ऐसे विचार हैं परन्तु तुम्हारा क्या मत है ? मैं तुम्हारा अभिप्राय जानता हूँ। जब महाराज ने महारानी का अभिप्राय जानना चाहा तो श्रीमती ने भी अपने पति के विचारों के ही अनुकूल जवाब दिया। श्रीमती ने कहा कि हे नाथ ! एक पतिव्रता स्त्री के उत्तम विचारों के प्रतिकूल विचार हो ही कैसे सकते है। उसने महाराज के विचारों की पुष्टि करते हुए कहा कि नाथ ! जो आपका विचार है वही मेरा भी विचार है। परन्तु शुभ कार्य में बिलम्ब नहीं करना चाहिए। जो श्वासोच्छ्वास कम होते जा रहे हैं वे लाख प्रयत्न करने पर भी वापिस मिलने वाले नहीं हैं। इसलिए यदि आप साधु बनते हैं तो मैं भी साध्वी बनने को तैयार हूँ। इस प्रकार दोनों के सम विचार हो गये।

भाई ! मनुष्य और स्त्री के कभी तो सम विचार होते हैं और कभी विषम भी हो जाते हैं। सम विचार होने पर आपस मे प्रेम बढ़ जाता है विषम विचार होने पर घर में कलह मच जाता है।

देखो ! जैन दिवाकर चौथमलजी म० जब दीक्षा लेने को तैयार हुए तो उनकी मां साहब भी कहने लगी कि मैं भी साध्वी बनूंगी। इस प्रकार मां और बेटे के तो सम विचार हो गये। परन्तु इनको लग्न किये हुये अभी केवल दो ही वर्ष हुये थे। उनकी धर्म पत्नी और उनके श्वसुर इस विचार से सहमत नहीं थे। उनका श्वसुर नफरत लाकर कहने लगा कि दीक्षा लेने वाले और देने वाले दोनों को इस दुनाली बन्दूक की गोली से उड़ा दूंगा। परन्तु इतना सब कुछ भय दिखाने के बाद भी उनकी मां मजबूत रही। इनकी मां सा० और व्याईजी में बड़ी बहस हुई। व्याइजी कहने लगे कि देखो ! मेरो नाम पूनमचन्द है और मैं अमावस्या ला दूंगा। इसलिए मेरे जमाई को दीक्षा दिलाने के भाव छोड़ दो। परन्तु एक सच्ची माता इन धमकियों से कब डरने वाली थी। उन्होंने अपने पुत्र को जंगल में ही दीक्षा दिलवादी। इनकी दीक्षा बिना आडम्बर के ही हुई। परन्तु पुण्यशाली होने के कारण भविष्य में हजारों के गले के हार बन गये।

दीक्षा हो जाने के दस वर्ष पश्चात् इनके गुरु हीरालालजी म० ने इन्हें कहा कि चौथमल ! अब तुम प्रतापगढ़ को जाकर पावन करो। गुरु के मुख से उक्त शब्द सुनकर इन्होंने कहा महाराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है परन्तु एक छोटी सी श्री चरणों में अर्ज है कि वहां तो मेरा संसारी श्वसुर मेरे लिये बन्दूक लेकर बैठा है न ! परन्तु गुरुजी ने इन्हें हिम्मत बन्धाकर प्रतापगढ़ के लिए रवाना कर दिया। प्रतापगढ़ पहुंचने पर इनका बाजार में जाहिर व्याख्यान हुआ। इनके व्याख्यान मे जादू का सा असर था। इनका उपदेश

श्रोता के हृदय को जाकर स्पर्श करता था। ये वहां शीघ्र ही प्रसिद्धि में आगये। एक दिन इनकी धर्म पत्नी को सहेलियों ने कहा कि तुम स्थानक में जाकर म० श्री का पल्ला पकड़ लेना। ऐसा करने से वे तुम्हारे प्रेम के वशीभूत होकर खिंचे हुए चले आयेंगे। दूसरे दिन जब वे इस इरादे से स्थानक में पहुंची तो महाराज श्री ने इन्हें बड़े प्रेम से दोपहर में आने को कहा। इन्होंने अपने मन में विचार किया कि आज तक तो ये मुझ से बात भी नहीं करते थे किंतु आज दोपहर में आने को कह रहे हैं तो अवश्यमेव मेरा काम बन जाएगा। अतएव वे बड़े उल्लास के साथ दोपहर को गईं और वन्दन करके बैठ गईं। तब महाराज श्री ने इन्हें उपदेश देते हुए कहा कि भाग्यवान! यदि तुम्हें पल्ला ही पकड़ना है तो जैसे राजुलजी ने म० नेमीनाथ का पल्ला पकड़ा था वैसे ही तुम पकड़ो अर्थात् जैसे मैंने मुनि धर्म को स्वीकार कर लिया है वैसे ही तुम भी साध्वी व्रत स्वीकार कर लो। म० श्री के उपदेश का इन पर इतना गहरा असर हुआ कि वैराग्य भाव लाकर इन्होंने भी जावरे में जाकर दीक्षा अङ्गीकार कर ली। तो कहने का तात्पर्य है कि एक समय दोनों के विषम विचार थे परन्तु कालान्तर में समविचार हो गए और फिर सारा झगड़ा ही मिट गया।

इसी प्रकार जब पूज्य खूबचन्दजी म० के विचार भी संयम अंगीकार करने के हुए तो उन्होंने अपने विचार अपनी पत्नी के सामने प्रकट किए। उनकी धर्म पत्नी ने उनके विचारों का समर्थन किया और दोनों ने भगवती दीक्षा धारण कर ली। तो कभी २ दोनों के सम विचार हो जाते हैं और कभी विषम भी हो जाते हैं।

तो मैं कह रहा था कि श्रीमती महारानी ने भी अपने पति के विचारों का समर्थन करते हुए कहा कि मैं भी आपके साथ दीक्षित होने का निर्णय करती हूँ। इस प्रकार सम विचार हो जाने पर

राजा और रानी दोनों ने निश्चय कर लिया कि सूर्योदय होने पर राजकुमार को राज्यतिलक करा कर प्रवर्ज्या अंगीकार कर लेंगे। इन उन्नत विचारों को हृदय में धारण करके दोनों सो गए।

परन्तु कुदरत को कुछ और ही मंजूर था। भवितव्यता को कोई भी मिटाने में समर्थ नहीं है। इधर ये दोनों तो विचार करके सो गए परन्तु उधर राजकुमार के विचारों में मलीनता आ गई। उसके हृदय में आर्तध्यान और रौद्र ध्यान की भावना जागृत हो रही थी। उसके हृदय में राज्य लिप्सा जाग उठी। परन्तु बाप के जिन्दा रहते मुझे किसी हालत में भी राज्य सिंहासन नहीं मिल सकता। हां! यदि असमय में ही महाराज मौत के घाट उतार दिए जाते हैं तो अवश्य ही राज्य का उत्तराधिकारी बन सकता हूँ। कहिए! पिता और पुत्र के विचारों में कितनी असमानता है। राजा अपने पुत्र को राज्याधिकारी बनाना चाहता है परन्तु इसके विपरीत पुत्र अपने पिता को मौत के घाट उतारने का स्वप्न देख रहा है। जब मनुष्य के हृदय में मलीन भाव आ जाते हैं तब वह षड़यन्त्र रचने का प्रयत्न करता है। दुनिया में मनुष्य इस तमन्ना-चाह के पीछे हित और अहित का भान भूल कर एक जन्मदाता माता-पिता को भी मारने को तैयार हो जाता है। इसी चाह के पीछे एक पुत्र अपने पिता पर कोर्ट में दावा करते भी नहीं शर्माता। इसी चाह में एक पुत्र अपने माता-पिता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भूल जाता है।

सौराष्ट्र प्रान्त की बात है कि एक लड़के का पिता मर गया। उसकी मां ने उसकी परवरिश की और घर की चीजें बैंच-बैंचकर भी उसे पढ़ा-लिखाकर होशियार किया। जैसे-तैसे उसने उसकी शादी भी करदी। अब वह लड़का डाक्टर बन चुका था। बुढ़िया सोचती थी कि अब उसकी वृद्धावस्था बड़े आराम से गुजरेगी। परन्तु जिसके

जीवन में दुख लिखा हो तो उसे सुख कैसे मिल सकता है। लड़के की स्त्री ने घर में पैर रखते ही अपने पतिदेव पर जादू की लकड़ी घुमाना शुरु कर दिया। उसने अपने विचार शहर में रहने के प्रकट किए। लड़के ने स्त्री के मोह में फंस कर अपनी बुड्ढी मां को ठुकरा दिया। वे किसी शहर में जाकर रहने लगे। वहीं उसने एक हौस्पिटल खोल दिया व्यापार अच्छा चलने लगा।

एक समय वह बुढ़िया बीमार हुई तो उसने विचार किया कि इस गांव में मुझे कौन दवा लाकर देगा ? अतएव वह अपने पुत्र को तलाश करती हुई उसके पास पहुँच गई। वह अपने पुत्र से कहने लगी कि बेटा ! मैं बहुत दिनों से बीमार हूँ। मेरी नब्ज देख कर मुझे दवा दे दे। यह सुनते ही लड़के ने कहा कि यहां देखने की फीस लगती है। तब बुढ़िया ने कहा कि बेटा ! मेरे पास पैसे कहां से आए। अरे ! तू मेरा बेटा होकर मुझ से ही फीस मांगता है। क्या तुझे मां के प्रति कोई प्रेम भावना नहीं रही ? तब डाक्टर ने कहा कि मेरे पास फालतू बात करने के लिए वक्त नहीं है। मैं बात करने के भी पंद्रह रुपए लेता हूँ। इन अपमान भरे वचनों को सुनकर बुढ़िया से न रहा गया। उसने भी जोश भरे शब्दों में कहा कि अरे ! नालायक ! यदि तू भी एक मां से बात करने की फीस चाहता है तो मेरा भी तुझ पर, पन्द्रह हजार का दावा है। तुझे इस योग्य बनाने में मेरे आज तक पंद्रह हजार रुपये खर्च हो गए हैं। अतएव तू भी मेरे रुपए चुका दे और फिर पन्द्रह रुपए देकर बात कर सकता है। यह सुनते ही उस डाक्टर की आंखें खुल गई। आखिर वह भी खानदानी युवक था अतः अपनी माता के मुँह से मार्मिक वचन सुन कर पानी २ हो गया। वह माता के चरणों में गिर पड़ा। उसने अपनी गल्ती के लिए पश्चात्ताप किया। अरे ! जिस मां ने मुझे त्रिविध कष्ट उठा कर भी पाल-पोस कर बड़ा किया और इस स्टेज पर पहुंचा दिया। जब कि

मैं माता के ऋण से अपने शरीर के चमड़े की जूतिएँ पहिना कर भी ऊऋण नहीं हो सकता। इस प्रकार लोभ के वशीभूत होकर और अपनी चाह को पूरा करने के लिए इन्सान अपने फर्ज को भी भूल जाता है। वह अकरणीय कार्य भी करने को तैयार हो जाता है।

तो वह राजकुमार भी अपने माता पिता को मरवाने का प्रपंच रचने लगा। राज्य प्राप्ति की चाह ने उसे बेभाव बना दिया। कुमति ने उसके हृदय पर अपना साम्राज्य जमा लिया। भाई! कई पिता निस्संतान होते है। वे दत्तक पुत्र को पढ़ा लिखाकर होशियार करते हैं और विवाह भी कर देते है। वे सोचते हैं कि जिसे हम अपनी स्टेट का मालिक बना रहे हैं वह हमारी बुढ़ापे में सेवा करेगा। परंतु बिरले ही दत्तक पुत्रों के ऐसे उन्नत विचार होते हैं।

एक सेठ ने दत्तक पुत्र लिया। उसे पढ़ा लिखा कर दो-पैर से चार पैर वाला भी बना दिया। उस लड़के की सोहबत ठीक नहीं थी। खर्च करने को जब पैसे हाथ नहीं आए तो उसने किसी से पांच रुपये लिए। उसने उसे एक चिट्ठी मे लिख दिया कि बाप के मरने के बाद तुम्हे दो हजार रुपये दे दूंगा। परन्तु दुर्भाग्य से वह चिट्ठी उसके पिता के हाथ आ गई। परिणाम यह हुआ कि उस चिट्ठी को पढ़ते ही उसने पुत्र को घर से निकल दिया। कहिए! लोभ के वशीभूत होकर उसे घर से ही निकलना पड़ा।

इस लोभ के वशीभूत होकर उस राजकुमार ने भी अपने माता पिता को अकाल में ही मरवा देने का दृढ़ निश्चय कर लिया उसने अपने गुप्तचरों को रात्रि में माता-पिता के महल में आग लगवाने की आज्ञा दे दी। उन लोगों ने पेट के खातिर महल के चारों तरफ घास फूस लड़कियां जमा कर दी और निस्तब्ध रात्रि में आग लगा दी। महल धांय धांय कर जलने लगा। महाराज वज्रजंघ और महा-

रानी श्रीमती उस आग में जल कर समाप्त हो गए। चूंकि वे धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान की आराधना कर चुके थे अतएव शुभ भावना के कारण वे वहां से मर कर उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिया रूप में उत्पन्न हुए।

भाई ! कहने का आशय यह है कि इस लोभ के वशीभूत होकर मानव में मानवता ही नहीं रहने पाती। वह अमानवीय व्यवहार करने पर उतारु हो जाता है। उसमें पशुता ही नहीं वरन् राक्षस वृत्ति भी आजाती है। उसे कृत्य और अकृत्य का भी भान नहीं रहता। इसलिए मेरा आपसे बार-बार यही कहना है कि इन बातों को सुनकर धर्म कार्य में दत्त-चित्त होकर योगदान दो। यह स्वर्ण अवसर पुनः मिलने वाला नहीं है। अपने हृदय से लोभ वृत्ति को तिलाञ्जलि देते हुए उदार बनने का प्रयत्न करो। इस प्रकार जो भव्य प्राणी लोभ को त्याग कर धर्म कार्य में अपनी उदारता का परिचय देंगे वे इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखी बनेंगे।

बेंगलोर
२-८-१९५९ }

प्रार्थना का महत्व

निर्धूम वर्तिर पवर्जित तैल पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी करोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता चलानाम्,
दीपोऽपरस्त्व मसिनाथ जगत्प्रकाशः ॥

卐

भगवान् तीर्थङ्करों के केवल ज्ञान-केवल दर्शन रूपी महान दीपक के महान प्रकाश में तीनों लोक के समस्त चराचर-जीवाजीव पदार्थ प्रतिभासित हो रहे हैं । उस अलौकिक प्रकाश मे छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी तमाम चीजें ज्यों की त्यो आलोकित होती हैं । वह अद्भुत प्रकाश आत्मा की मलीनता नष्ट होने पर ही जगमगाता है। जब ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय और अन्तराय रूप चार घनघातिकर्म इन आत्मा से नष्ट हो जाते हैं तब आत्मा में विशुद्ध ज्ञानालोक हो जाता है । उस विशुद्धज्ञान प्रकाश में मोक्ष मार्ग स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगता है। ऐसी केवल ज्ञान के प्रकाश की महिमा है। केवली भगवान् के ज्ञान प्रकाश मे समस्त विश्व के एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीवो के मनोगत भाव स्पष्ट रूप

से झलकते हैं। ऐसे तीर्थङ्कर भगवान केवल ज्ञान–दर्शन रूपी महान दीपक के धारक होते है।

उक्त श्लोक में भी आचार्य श्री मानतुंग,भगवान् ऋषभदेव की गुण स्तुति करते हुए इसी प्रकार के भाव व्यक्त कर रहे है कि हे भगवन्! आपको यदि हम दीपक की उपमा दें कि आप दीपक के सदृस प्रकाशमान हैं तो यह द्रव्य दीपक की उपमा भी आप में घटित नहीं होती। क्योंकि द्रव्य दीपक मिट्टी का बना हुआ होता है। उस दीपक को जगमगाने के लिए तैल, बत्ती और माचिस की आवश्यकता है। जबकि आपके केवल ज्ञान रूपी दीपक को प्रकाशित करने के लिए किसी भी भौतिक पदार्थ की सहायता की अपेक्षा नहीं होती। वह स्वयंमेव प्रकाशित होता है। द्रव्य दीपक में धुंवा निकलता है परन्तु आपका केवल ज्ञान निर्धूम है। वह दीपक तो सीमित अवस्था में ही प्रकाश करता है परन्तु आपका ज्ञान असीमित है। वह तीनो लोक में प्रकाश कर रहा है। वह द्रव्य दीपक वायु के झोंके से बुझ जाता है। परन्तु आपका केवल ज्ञान रूपी दीपक प्रलय काल की हवा के चलने पर भी बुझने वाला नहीं है। वह स्थायी रूप से निरन्तर त्रैलोक्य में प्रकाशमान रहता है। इसलिए भगवान् तीर्थङ्करों के केवल ज्ञान रूपी दीपक को इस द्रव्य दीपक से उपमा देना असगत है।

भाई! तीर्थङ्कर भगवान को आचार्य श्री ने जो दीपक की उपमा से अलंकृत किया है वह 'नमोत्थुणं' के पाठ से ली है। भगवान की स्तुति में वर्णन करते हुए कहा गया है कि हे भगवन्! आप 'लोगं पइवाणं" अर्थात् लोक मे दीपक के समान हैं। आचार्य श्री के कहने का आशय यही है कि सामान्य कोटि के मानवों के लिए आपका केवल ज्ञान दीपक के समान हृदय के अंधकार को नष्ट करने वाला है। एक दीपक जिस प्रकार कहीं भी रख देने पर अंधकार का नाश

कर देता है इसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान के केवल ज्ञान रूपी दीपक से तीनों लोक के प्राणियों का अज्ञान रूपी अंधकार विलीन हो जाता है। उन जीवों के हृदय में भी अपने २ क्षयोपशम के अनुसार ज्ञान का प्रकाश चमकने लगता है।

संसार में नीतिकारों ने चार प्रकार के उत्तम दीपक बताए हैं। वे इस प्रकार हैं—

सर्वरी दीपको चन्द्रः, प्रभाते दीपको रविः।
त्रिलोक दीपको धर्मः, सुपुत्र कुल दीपकः॥

अर्थात्—रात्रि के निविड अन्धकार में प्रकाश लाने वाला दीपक चन्द्रमा है। रात्रि के सम्पूर्ण अन्धकार को प्रकाश में परिवर्तित करने वाला दिन का दीपक सूर्य है। कुल की मर्यादा का पालन करने वाला और उसके यश को विशिष्ट उज्जवल बनाने वाला एक सपूत भी कुल में दीपक के समान माना गया है। और तीनों लोक को प्रकाशित करने वाला एक मात्र धर्म ही दीपक के समान है। अर्थात् जिसके हृदय में धर्म रूपी दीपक जगमगाने लगता है उसकी आत्मा से ज्ञानावर्णीय कर्म रूपी गहन अन्धकार नष्ट हो जाता है। और आत्मा में केवल ज्ञान रूपी महान दीपक का प्रकाश चमकने लगता है। वह विराट आत्मा फिर तीनों लोक के प्राणियों के अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने में समर्थ हो जाती है। ऐसे केवल ज्ञान रूपी दीपक के धारक तीर्थङ्कर भगवान होते हैं। वे संसार मे अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकने वालो को सन्मार्ग की ओर ले जाते हैं। भगवान तीनों लोक में ज्ञान प्रकाश करने वाले हैं। ऐसे भगवान ऋषभदेव को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

तीर्थङ्कर भगवान की प्रार्थना, उनके गुणानुवाद, कीर्तन, स्तुति भजन वगैरह इसीलिए हम अज्ञानी जीव कहते हैं कि हमारी आत्मा

में जो अज्ञान, मोह, कषाय, राग-द्वेष रूपी अंधकार अनन्त काल से प्रवेश कर गया है और जिसके कारण यह आत्मा मलीन होकर चार गति चौरासी लाख जीव योनियों में भटकती फिर रही है तो वह भव-भ्रमण नष्ट होकर मोक्ष मार्ग दृष्टिगोचर होने लगे। भगवद् प्रार्थना ही एक अमोघ साधन है जो हमारी आत्मा को भी ज्ञान रूपी प्रकाश से आलोकित कर सकता है। जब हमारी आत्मा मे भी केवल ज्ञान रूपी दीपक प्रकाशित हो जाएगा तो हम भी अपने निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

भगवान की प्रार्थना आज भी भूले भटके पथिकों को सत्य सुपथ बतलाने वाली है। एक पापी से पापी आत्मा भी इस भगवत नाम की नौका का आश्रय लेकर भवसागर से पार हो सकती है। मुश्किल से मुश्किल कार्य भी भगवान की प्रार्थना सच्चे हृदय से करने पर आसान हो जाते हैं। एक विशिष्ट चमत्कार भगवान के नाम में रहा हुआ है। आज साकार रूप मे भगवान तीर्थङ्कर तो हमारे सामने नहीं हैं परन्तु उस निराकार प्रभु के नाम स्मरण में भी वह शक्ति विद्यमान है कि वह मानव के कई भवों के पाप तिमिर को क्षण मात्र में नष्ट कर देती है। सांसारिक भोगोपभोग पदार्थों की प्राप्ति हो जाना तो गौण बात है। परन्तु भगवान की प्रार्थना करने से तो अक्षय सुखनिधि रूप मोक्ष तक भी प्राप्त हो जाता है।

भगवद् प्रार्थना के महात्म्य के विषय में जितना भी प्रकाश डाला जाय वह थोड़ा ही रहेगा। कारण यह है कि जैसे कोई सागर के पानी को यदि गागर में भरना चाहे तो यह उसके लिए असभव सी बात है। इसी प्रकार प्रार्थना के रहस्य को हर पहलू से पूर्ण रूप से समझाना भी स्वल्प ज्ञान से बाहर की चीज है। फिर भी ज्ञानी पुरुषों ने जैसा भगवान की प्रार्थना के विषय में निरूपण किया है

उसके आधार पर कहा जा सकता है कि भगवान की प्रार्थना करने से इस लोक और परलोक में सुख शान्ति की प्राप्ति होती है। प्रातः एवं सायंकालीन ईश प्रार्थना एक जैन साधक के लिए ही नहीं अपितु प्रत्येक साधक के लिए परमावश्यक है। दोनों समय एकाग्रचित्त होकर जो मानव प्रभु की गुण स्तुति में तल्लीन हो जाता है उसके दिवस और रात्रि निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त होते हैं।

महात्मा गांधी अपने 'हरिजन-पत्र' में भगवान् की प्रार्थना के महत्व के विषय में समय-समय पर लिखते ही रहते थे। उन्होंने तो भगवत् प्रार्थना को अपने जीवन का मुख्य कर्म मान लिया था। वे प्रार्थना के बल पर ही ससार में जीवित थे। वे दोनों समय प्रार्थना-सभा में सम्मिलित होते थे। उन्होंने अपने पत्र में लिखा था कि—"मुझे भगवान् की प्रार्थना में पूर्ण रूप से विश्वास है। भगवान की प्रार्थना करने से मुश्किल से मुश्किल समस्या भी हल हो जाती है। जब कभी देश स्वतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त करने के संबन्ध में कोई विकट समस्या मेरे सामने उपस्थित हो जाती या कोई ऐसा ही विषम वातावरण सामने आ जाता जिसका हल निकालना मेरे दिमाग से परे होता तो ऐसी परिस्थिति में भगवान की प्रार्थना ही मेरी सारी कठिनाइयों को आसानी से दूर करने में सहायकभूत बनती थी। मेरी बुद्धि में निर्मलता आ जाती और उस अंधकार में मुझे आशा की किरण नजर आने लगती। तब फिर मैं उस कठिन से कठिन समस्या को भी सुगमता से सुलझा लेता।"

भाई! यों तो महात्मा गांधी डेढ़ पसली जैसे आदमी थे। परन्तु ईश प्रार्थना की वजह से उनमें इतना आत्म बल आचुका था कि वे एक विदेशी ताकत के सामने लंगोटी धारण करके भी टक्कर लेने, मुकाबला करने को खड़े हो गए। ऐसी कौनसी शक्ति थी जिसके आधार पर एक निहत्था महात्मा अपने भौतिक साधनों से संपन्न

विदेशी दुश्मन से भी लोहा लेने को तैयार होगया? इस प्रश्न के उत्तर में आप कह सकते हैं कि जब से उन्होंने अपने हृदय मन्दिर में भगवान को बसाया और भगवान की प्रार्थना करने लगे तभी से उनकी आत्मशक्ति विकसित होने लगी। उन्होंने अपने जीवन में सत्य भगवान और अहिंसा भगवती की जबर्दस्त आराधना की। उसी शक्ति के आधार पर उन्होंने विदेशी सत्ता से डटकर मुकाबला किया। इसी शक्ति ने उन्हें मोहनदास गांधी से महात्मा गांधी बना दिया। वे अब एक सौराष्ट्र प्रान्त के ही नहीं किंतु विश्व की विभूति बन चुके थे। दो सौ वर्षों से जमी हुई अंग्रेजी हुकूमत को उन्होंने भगवान की प्रार्थना के बल पर थोड़े ही प्रयास से छीन ली। अंग्रेज भारतीय नेताओं को सत्ता सौंपकर स्वदेश को लौट गए। भारतवर्ष स्वाधीन हो गया।

तो भगवान की नियमित रूप से प्रार्थना करने से महात्मा गांधी की आत्म शक्ति प्रबल हो गई। उसी आत्म बल के आधार पर उनकी मुश्किल से मुश्किल समस्या भी सुलझ गई और वे जगत प्रसिद्ध महात्मा बन गए। उन्होंने अपनी आत्म-कथा में स्पष्ट रूप से लिखा है कि—"मैं पहिले बहुत डरपोक और शर्मीला था। परन्तु मेरे यहां एक नौकरानी काम करती थी वह बड़ी समझदार थी। वह मुझ से बार-बार शिक्षा के रूप में कहा करती थी कि मोहनलाल! तुम्हें जब कभी भय की आशंका हो डर लगे तो 'राम-राम' कहा करो इससे तुम्हारे हृदय मे रहा हुआ भय निकल जायेगा। मुझे उसकी शिक्षा पसंद आई और मैंने उसी दिन से राम का नाम हृदय में अंकित कर लिया। जब कभी मेरे सामने कोई भय उपस्थित होता तो मैं 'राम राम' कहा करता। उसके प्रभाव से मैं निर्भय बन गया। इसी एक मात्र राम नाम रूपी महा मन्त्र को हृदय में पूर्ण श्रद्धा के साथ धारण करके मैं जीवन समर मे आगे से आगे बढ़ता गया। मुझे आगे से आगे सफलता ही सफलता प्राप्त होती गई।"

भाई! महात्मा गांधी ने जिस दिन से भगवत् प्रार्थना करनी प्रारंभ की उसे आखरी दम तक नहीं छोडी। एक दुर्भाग्य पूर्ण दिवस वह भी इस अभागे भारत को देखना पड़ा जिस दिन महात्मा गांधी जैसे सच्चे आस्तिक और प्रभु भक्त के सीने में प्रार्थना स्थल पर प्रार्थना में तल्लीन रहते हुए भी एक गोड़से नामक विरोधी व्यक्ति ने पिस्तौल से तीन गोलियां दाग दीं। ऐसी दुखद पूर्ण अवस्था में भी उस महात्मा के मुंह से हे राम! हे राम! हे राम! ही शब्द निकले। अपने प्राणान्त करने वाले व्यक्ति के प्रति भी रोष प्रगट नहीं करते हुए यही कहा कि—"इसे कुछ मत कहना"। वास्तव में एक महात्मा का हृदय अपने दुश्मन के प्रति भी कारुणिक रहता है। तो कहने का आशय यही है कि जिस दिन से राम के नाम को हृदय में धारण किया उसे मृत्यु के आखरी क्षणों तक बसाए रखा। इस भगवद् प्रार्थना से ही वे महात्मा बन गए।

इसलिए ज्ञानी पुरुष यही शिक्षा देते हैं कि हे मानव! यदि तू संसार मे रह कर मानवता प्राप्त करना चाहता है तो भगवान की प्रार्थना करने में कभी प्रमाद मत कर। इस संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए प्राणी के लिए भगवान का नाम नौका के समान है। वह इस नौका का आश्रय लेकर सुगमता पूर्वक भव सागर से पार हो सकता है।

स्व० जैन दिवाकर चौथमलजी म० सं० १६८३ में जब उदयपुर पधारे तब उनके वहां कई जाहिर प्रवचन हुए। हजारों की संख्या में नर-नारी उनके उपदेश सुनने को आते थे। उनके प्रवचनों की प्रशंसा महाराणा फतहसिंहजी ने कतिपय लोगों के मुंह से सुनी। यह सुन कर उनके हृदय में भी इच्छा जागृत हुई कि मैं भी महाराज श्री के वचनामृत का पान करूँ। अतः इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर उन्होंने

अपने खास कर्मचारियों को महाराज श्री की सेवा में अर्ज करने के लिए भेजा। उन लोगों ने भी महाराणाजी के विनम्र शब्द म० श्री महाराणाजी की आग्रह पूर्ण विनती को स्वीकार करके राजमहलों में शिष्य मण्डली सहित पधारे। महाराणा ने म० श्री का भाव भीना स्वागत किया। उन्हें उचित आसन पर बिठाया और स्वयंमेव दरबारी लोगों के साथ नीचे फर्श पर म० श्री का प्रवचन सुनने को बैठ गए। तब महाराज ने उस सभा के समक्ष उपदेश दिया जिसका सारांश यही था कि :—

तन अनित्य संगी धरम, प्रभु यश रूपी सोय।
तीन बात जो जाण ही, तासे खोड न होय॥

महाराज श्री ने महाराणा को संबोधन करते हुए कहा कि हे महाराणा! यदि आप तीन बातों को हृदय में धारण कर लेंगे तो आपके जीवन में कोई बुराई प्रवेश नहीं करने पायेगी। प्रथम बात यह है कि यह शरीर अनित्य है। यह एक दिन नष्ट होने वाला है। इसे चाहे कितने ही पौष्टिक पदार्थ खिलाओ-पिलाओ, कितनी ही सेवा सुश्रूषा करो, कितनी ही सर्दी-गर्मी से हिफाजत करो परन्तु इसके बावजूद भी यह कायम रहने वाला नहीं है। यह यहां चन्द दिनों के लिये महमान बनकर आया है। चार दिन की चांदनी में आराम करने के बाद यह वियोग की रात्रि में बदलो जाने वाला है। आत्मा-राम के उड़ जाने पर यह कायापिंजर फिर किसी के मतलब का नहीं रहने वाला है। इसे या तो अग्नि में जलाकर राख बना दिया जायेगा या मिट्टी में दफना कर खाक बना दिया जायेगा। इसलिए इस अनित्य शरीर से यदि कुछ भी कमाई करनी है तो वह आत्माराम के रहते हुए ही की जा सकती है। इस जीवात्मा के साथ यदि कुछ

अशुभ कर्म ही जाएगा इसके अलावा कोई भी चीज साथ जाने वाली नहीं है। ये स्त्री, पुत्र, धन, दौलत, बाग-बगीचे, महल-बंगले वगैरह सब यहीं रह जाने वाले हैं। जो यहां आया मन-वाणी और कर्म के द्वारा शुभ कार्य कर लेंगे तो आगे भी मीठे ही फल मिलेंगे और अशुभ कार्य से आगे भी कड़वे फल ही प्राप्त होंगे। इसीलिए इस अनित्य शरीर से भी शुभ कार्य ही करें।

दूसरी बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि मनुष्य का इस संसार में कोई वास्तविक संगी साथी है तो वह एक मात्र धर्म ही है! इस दुनियां में जितने भी दूसरे मित्र हैं वे वास्तव में साथी नहीं किंतु स्वार्थ का पोषण करने वाले हैं। ये स्वार्थी मित्र इस शरीर और माया से प्रेमकरने वाले हैं। इस संसार से विदा होने पर ये मित्र भी साथ में जाने वाले नहीं हैं। ये अपने स्वार्थ के लिए रोते रह जायेंगे। परन्तु धर्म ही एक सच्चा मित्र है जो इस जीवन के साथ प्रतिक्षण रहते हुए परलोक में भी साथ छोड़ने वाला नहीं है। इसलिये इस जीवन में धर्म को ही अपना संगी साथी बनाएं। धर्म मन, वचन और काया से भी किया जा सकता है। मन से विश्व के प्राणी मात्र के लिए शुभ कामना करना, वचन से धर्मी पुरुषों के गुणानुवाद करना, मीठे वचन बोलना और काया से दीन दुखियों की सेवा करना या धार्मिक पुरुषों की मदद करना धर्म कहलाता है। धर्म करने से एक दिन मोक्ष मन्दिर में भी प्रवेश किया जा सकता है। इसलिये धर्म को ही अपना संगी साथी चुनें। इसके जरिए ही आपको सच्चा आत्मिक सुख प्राप्त हो सकता है।

तीसरे परमात्मा को सोते जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते हृदय मन्दिर में विराजमान रखना चाहिए। प्रभु को सर्वत्र और सर्वदा याद रखने से बुरे कर्मों से बचा जा सकता है। जो मनुष्य ईश्वर को हृदय से निकाल देता है वह पाप कर्म करते हुए संकोच नहीं

करता है। किसी-किसी के मुंह से सुना भी जाता है जब कि वह अनुचित कार्य कर लेता है और ससार में तिरस्कार होता है तो कहता है कि—"क्या करूं मेरे घट में से राम ही निकल गया।" तो परमात्मा को हरदम याद रखने से इन्सान बद फैलों से बचा रहता है। परमात्मा सब जगह ज्ञान से मजूद है। उसमे दुनिया के शुभ और अशुभ कर्म छिपे हुए नहीं हैं। वह सबको सर्वत्र देख रहा है। इसलिए परमात्मा की प्रार्थना, गुणानुवाद, स्तुति, कीर्तन इत्यादि करते रहना चाहिए। इससे आपके हृदय में भी ईश्वर का अंश प्रकट हो जायेगा। फिर आपसे कोई भी काली करतूत, धोखे बाजी, अन्याय, अत्याचार वगैरह नहीं होने पायेंगे। आप संसार को अपनी चालाकी से धोखा दे सकते हैं परन्तु परमात्मा को धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि वह सद् और असद् विचारों को जानने वाला है। इसलिए यदि आप अपने जीवन को शुद्ध बनाए रखना चाहते हैं तो परमात्मा को एक क्षण के लिए भी अपने हृदय से पृथक न होने दें और प्रभु प्रार्थना करते हुए इस लोक में और परलोक में भी सुखी बनें।

इस प्रकार हे महाराणा! यदि आप इन तीन बातों का सदैव ख्याल रखेंगे तो आप पुण्य से पुण्य का संचय करने में समर्थ हो सकेंगे। आप पूर्व जन्म में उक्त तीन बातों की आराधना करके आये हैं जिससे यहां मेवाड़ के महाराणा कहला रहे हैं। परन्तु भविष्य में तीन बातों का ख्याल रखने से आप आगे इससे भी अधिक सुख-समृद्धि को प्राप्त कर सकेंगे।

तो भाई! हमारा भी आप लोगों से अनुरोध है कि आप पुण्योपार्जन करके संसार में मानव बनने के अधिकारी बने हैं तो इस जिन्दगी में भी इन तीन बातों का पूर्णतया पालन करिए। इन को हृदय से बिसारना नहीं। यदि भविष्य में सुख पाने की अभिलाषा

है तो इस अनित्य शरीर से नहीं परन्तु धर्म से मित्रता करो। यह धर्म मित्र आपको परमात्मा से भी एक दिन मुलाकात करा देगा। प्रभु प्रार्थना करते हुए आप भी परमात्मा बन जाओगे।

इसीलिए आचार्य मानतुंग ने भी भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हुए उन्हें दीपक की उपमा दी है। जैसे दीपक प्रकाशित हो जाने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार भगवान की प्रार्थना करने से इस आत्मा का अनन्त-काल से आच्छादित अज्ञान अन्धकार भी नष्ट हो जाता है। आत्मा में ज्ञान प्रकाश-पुञ्ज टपक पड़ता है। उस प्रकाश में उसे संसार के सभी पदार्थ हस्त रेखावत दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसलिए भगवान की प्रार्थना को जीवन का मुख्य लक्ष्य बना लेना आवश्यक है।

:: विपाक-सूत्र ::

तीर्थंकर भगवान् भव्य जीवों के कल्याण के लिए धर्मोपदेश फर्माते हैं। केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाने के पश्चात् ही वे उस प्रकाश में जनता को मोक्ष मार्ग का निरूपण करते हैं। उनके मुखारविंद से निकली हुई परम पवित्र वाणी को सन्निकट में रहने वाले परम शिष्य गणधर महाराज संग्रहीत करते हैं। वही संग्रहीत प्रमाण भूत वाणी आज इस कलिकाल में हम लोगों के समक्ष सूत्र रूप में आधार भूत है। आज भगवान महावीर के शासन काल में उन्हीं बत्तीस सूत्रों में अंकित वचनों को मोक्ष मार्ग पर चलने वाले श्रमणों द्वारा श्रवण कर भव्य जीव आत्म कल्याण की ओर अग्रसर होते हैं। श्रमण संस्कृति एवं श्रावक संस्कृति दोनों ही पर विशद प्रकाश डाला गया है।

उन्हीं सूत्रों में से यहां ग्यारहवें अंग विपाक-सूत्र पर आपके सामने प्रकाश डाला जा रहा है। राजगृही नगर के बाहर उद्यान में ठहरे हुए भगवान सुधर्मास्वामी से उनके परम शिष्य श्री जंबू स्वामी ने विनम्रता पूर्वक जिज्ञासा दृष्टि से प्रश्न किया कि हे भगवान्! भगवान महावीर स्वामी ने अपने सुशिष्य गणधर गौतम स्वामी को निर्वाण समय में सुख विपाक-सूत्र के जो भाव फर्माए थे वे कृपा कर मुझे फर्माइए। चूंकि सुख विपाक के दस अध्ययनों में से प्रथम अध्ययन के भाव आप फर्मा चुके हैं अतएव अब कृपा करके दूसरे अध्ययन के भाव फर्माइए।

तब भगवान सुधर्मा स्वामी ने जंबू स्वामी के प्रश्न के प्रत्युत्तर में फर्माया कि हे जंबू! उस काल और उस समय में उसभपुर नाम का नगर था। उस नगर के बाहर स्थूमकरण नाम का उद्यान था। उस उद्यान में धन्ययक्ष का यक्षायतन था। उस नगर में धनपति नाम का राजा राज्य करता था। उसकी महारानी का नाम सरस्वती था। एक समय रात्रि में वह अर्धनिद्रित अवस्था में सोई हुई थी। उसने नींद में सिंह का स्वप्न देखा। स्वप्न देखते ही वह जागृत दशा में हुई और अपने शयनागार से उठ कर प्रसन्न मन से अपने पति-देव के शयनागार में पहुंची। उसने पति को मृदुल शब्दों से जगाया। पति के जागृत हो जाने पर रानी ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे नाथ मैंने अभी २ सिंह का स्वप्न देखा है। कृपया इस स्वप्न के फल के विषय में सुनाइए। राजा ने कहा कि महारानी! तुमने बड़ा ही शुभ स्वप्न देखा है। तुम एक सौभाग्यशाली पुत्र को प्रसव करोगी। अपने पतिदेव के मुखारविन्द से स्वप्न फल सुन कर रानी प्रसन्न होती हुई अपने शयनागार में लौट आई। उसने शेष रात्रि धर्माराधना करते हुए व्यतीत की।

जब सूर्योदय हुआ तो राजा ने अपने नगर के ज्योतिष शास्त्र तथा स्वप्न शास्त्र के पंडितों को बुलाया। राज्य सभा में, राजा स्नान

मज्जन करके तथा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर सिंहासन पर आकर बैठ गया, तमाम पंडित भी राजा को नमस्कार करके यथा स्थान पर बैठ गए। तब राजा ने पंडितों से उक्त स्वप्न फल के विषय पूछा। उन पंडितों ने भी अपने पांडित्य का परिचय देते हुए कहा कि महाराज इस शुभ स्वप्न के फलस्वरूप आपके यहां कुल में दीपक के समान महाराजकुमार का जन्म होगा। वह उज्जवल यश का धारक होगा। परन्तु भविष्य में राज्य वैभव का परित्याग कर साधु अवस्था को भी धारण कर लेगा। स्वप्न फल सुन कर राजा को हार्दिक प्रसन्नता हुई। इस खुशी में राजा ने उन पंडितों को काफी पुरस्कार देकर सन्मान सहित विदा किया।

रानी के गर्भ रहा। तीन मास व्यतीत होने पर रानी को दोहद (दोहला) उत्पन्न हुआ। उसे उस समय गरीबों को भोजन-वस्त्र देने की तथा धर्माराधन करने की प्रबल इच्छा हुई। भाई! पुण्यवान जीव जब गर्भ में अवतरित होता है तब माता को भी इसी प्रकार के शुभ विचार उत्पन्न होते हैं। और पापी जीव गर्भ में आने पर माता को भी पापमय कार्य करने का दोहला उत्पन्न होता है। तो रानी के हृदय में पुण्यवान जीव के कारण शुभ विचार ही उत्पन्न हुए। इस प्रकार रानी खुशी २ गर्भ का प्रतिपालन करती हुई आनन्द पूर्वक समय व्यतीत करने लगी।

नौ माह साढ़े सात रात्रि व्यतीत होने पर शुभ मुहूर्त में रानी ने पुत्र को प्रसव किया। पुत्र प्राप्ति के शुभ समाचार सुन कर राजा ने भी मुक्त हस्त से गरीबों को दान दिया। राजा तथा प्रजा ने पुत्र रत्न के जन्म की खुशी में उत्साह पूर्वक जन्मोत्सव मनाया। पुत्र जन्म की क्रियाएं विधिवत् की गई। बारहवें दिन अशुचि कर्म से निवृत होकर पुत्र का नाम भद्रनन्दी कुमार रखा गया। आठ वर्ष की अवस्था में राजकुमार को कलाचार्य के पास विद्याध्ययन के लिए भेजा

गया। कुमार भद्रनन्दी सोलह वर्ष की परम आयु में प्रवेश करते ही बहोत्तर कलाओं में निपुण हो गया। कलाचार्य का आदेश पाकर राजा स्वयं अपने कुमार की परीक्षा लेने को उपस्थित हुए। राजा ने पुत्र की परीक्षा ली। राजकुमार परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। राजा ने कलाचार्य को सम्मान पूर्वक यथेष्ट पुरस्कार प्रदान किया। राजा अपने राजकुमार को साथ में लेकर महल में लौट आए। राजकुमार आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

जब राजकुमार युवावस्था को प्राप्त हुए तब राजा ने उनका श्री देवी प्रमुख पांच सौ सुन्दर एवं सुशिक्षित कन्याओं के साथ लग्न कर दिया। वधुओं के रहने के जो सुन्दर पांच सौ महल बनवाये गए थे उनमें उन्हें मय दहेज की वस्तुओं के साथ भिजवा दिया। अब भद्र-नन्दी कुमार अपनी पांच सौ नव परिणीता स्त्रियों के साथ पांचों इन्द्रियों के सांसारिक भोग भोगते हुए आनन्द सहित जीवन व्यतीत करने लगे। चूंकि प्रथम सुबाहुकुमार के अध्ययन में सविस्तार वर्णन किया जा चुका है अतएव उन्हीं घटित बातों का यहां संक्षेप में वर्णन किया जारहा है। पाठक उसे यथा स्थान सुबाहु कुमार के जीवन की तरह ही पढें।

कालान्तर में भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए शिष्य समुदाय सहित उसमपुर नगर के बाहर स्थूमकरण उद्यान में आज्ञा प्राप्त कर विराजमान हुए। भगवान के शुभागमन की सूचना प्राप्त होते ही राजा और प्रजाजन सब ही दर्शन लाभ एवं वाणी-श्रवण के लिए उमड़ पड़े। भद्रनन्दी कुमार भी भगवान के दर्शनार्थ वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर रथ में बैठकर गया। भगवान को, आई हुई चार प्रकार की परिषद ने विधि सहित वन्दन किया। उस मानव मेदिनी के समक्ष भगवान ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश श्रवण कर भद्रनन्दी कुमार के अतिरिक्त सभी श्रोताजन अपने २ स्थान को

लौट गये। भगवान महावीर की वैराग्यमयी वाणी को सुनकर कुमार वैराग्य सागर में डुब गया। सब लोगों के चले जाने पर वे भगवान के समीप आए। उन्होंने हाथ जोड़ कर भगवान से अर्ज की कि हे भगवान्! आपका उपदेश सुनकर मेरे हृदय में परम वैराग्य उत्पन्न हो गया है। मैंने आपके फर्माए हुए उपदेश पर श्रद्धा की है, प्रतीति की है और हृदयंगम किया है। मैं इस समय साधुव्रत अंगीकार करने की तो योग्यता नहीं रखता हूँ परन्तु आप मुझे कृपा करके श्रावक व्रत धारण करा दीजिए। तब भगवान ने उन्हें श्रावक के बारह व्रत अंगीकार करा दिए। राजकुमार श्रावक व्रत धारण करके, भगवान को भाव सहित वन्दना करके अपने स्थान को लौट आए।

भगवान महावीर के सुशिष्य गौतम स्वामी ने भद्रनंदी कुमार को जाते हुए देखा। वे गौतम स्वामी को बहुत प्रिय लगे। कुमार के प्रस्थान कर जाने के पश्चात् गौतम स्वामी भगवान् के समीप आए। भगवान को हाथ जोड़ कर पूछने लगे कि हे भगवन्! इस भद्रनंदी कुमार को देखकर मुझे और अन्य संतजनों को बड़ा प्रेम उमड़ रहा है। अतएव आप कृपा करके फर्माइए कि इसने पूर्व जन्म में ऐसा कौनसा पुण्यकार्य संचित किया है जिससे यह सबको ही प्रिय लग रहा है। तब भगवान महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी के पूछने पर फर्माया कि हे गौतम! उस काल और उस समय में महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरगिरी नाम का नगर था। उस नगर के राजा के विजय कुमार नाम का राजकुमार था। वहां उस समय युग मंदिर स्वामी विचरण कर रहे थे।

भाई! आज स्थानकवासी समाज वर्तमान चौवीसी में बीस विहरमानों को तीर्थङ्कर के रूप में मानता है। जिनमें प्रथम सीमंदिर स्वामी; दूसरे युग मन्दिर स्वामी, तीसरे बाहुजी स्वामी, चौथे सुबाहुजी स्वामी आदि २ बीस तीर्थङ्कर भगवान हैं। ये बीसों तीर्थ-

ङ्कर महाविदेह क्षेत्र में धर्मोपदेश देते हुए विचरण कर रहे हैं। महाविदेह क्षेत्र में चार विजय हैं जिनमें से एक विजय में युग मन्दिर स्वामी विचरण कर रहे थे। ऐसा सुख विपाक सूत्र में उल्लेख किया गया है। जब कि हम बीस विहरमानों के नाम बोलते हैं तो प्रथम सी मन्दिर स्वामी का नाम लेते हैं। ये नाम सूत्रों में दूसरी जगह से लिए गये हैं। क्यों कि सुख विपाक सूत्र में तो युग मन्दिर स्वामी का ही नाम उस विजय मे बताया गया है और ऐसे हम सीमन्दिर स्वामी का ही नाम पहिले उस विजय में बोलते हैं। तो दोनों जगहों में से एक स्थान पर अवश्य भूल होनी चाहिए।

खैर ! कुछ भी हो परन्तु मैं इस विवाद में पड़ना नहीं चाहता। यहां तो यही बताया गया है कि राजकुमार आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था। तब एक समय युगबाहु स्वामी भिक्षा के निमित्त राजकुमार के द्वार पर पधारे। भगवान युगबाहु स्वामी को अपने द्वार की ओर आते देख विजय कुमार पुलकित होता हुआ भगवान के स्वागतार्थ सात आठ कदम सामने गया। वह बहुमान पूर्वक भगवान को अपने महल में लाया। और उसने उन्हें भोजनशाला में लेजाकर भक्ति भाव सहित अपने हाथों से शुद्ध दान दिया। भाई ! तीर्थङ्कर भगवान कर पात्री होते हैं यानि वे अपने हाथो में ही अन्न-पानी लेकर वहीं भोजन कर लेते हैं। उनके पास लकड़ी या अन्य धातु के पात्र नहीं होते।

तो विजयकुमार ने भगवान को श्रेष्ठ परिणाम धारा से दान दिया। उनकी श्रेष्ठ भावना रहने से संसार परत हो गया। उस उन्नत विचार धारा क परिणाम स्वरूप उन्होंने मनुष्य का आयुष्य बांध लिया। विजयकुमार यथा समय कालगति को प्राप्त कर यहां भद्रनंदी कुमार के रूप में उत्पन्न हुआ है। इससे आगे का अधिकार पाठकों को सुबाहुकुमार के जीवन की तरह समझना चाहिये।

हां तो, भद्रनंदी कुमार भगवान महावीर का सदुपदेश श्रवण कर एक श्रावक के रूप में घर पर लौटा। भगवान महावीर भी अन्य जनपदों में विचरण करने के लिए विहार कर गए। एक राजकुमार के भोगविलास मय जीवन में इतना बड़ा परिवर्तन आजाना कोई साधारण बात नहीं थी। जब कि आज हम हमारी समाज के लोगों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें बड़ी चिंता होती है कि जिन्होंने बड़े २ आचार्यों के प्रवचन सुन सुन कर अपने काले बालों को श्वेत बना लिए परन्तु फिर भी उनके मानस में कोई परिवर्तन नहीं आया। उनके पहिले के जैसे ही विचार चले आरहे हैं। वे शरीर से भले ही बदल गए परन्तु मन से नहीं बदल पाये। परन्तु भद्रनंदी कुमार का जीवन तो केवल एक ही प्रवचन मात्र से बदल गया। उसने श्रावक के बारह व्रतों को यथावत् निर्मल रूप से पालना शुरू कर दिया। एक समय पौषधशाला में तेला करके पौषध व्रत में धर्म जागरणा करते हुए उत्तम विचार करने लगे कि धन्य है उन महापुरुषों को जो संसार की मोह, माया त्याग कर भगवान के समीप प्रवर्ज्या ले रहे हैं, धन्य है उन लोगों को जो देशव्रती श्रावक बन रहे हैं और धन्य है उन श्रोताओं को जो भगवान के मुखार्विन्द से धर्मोपदेश सुनकर अपने जीवन को पवित्र मान रहे हैं! परन्तु भ० महावीर यदि ग्राम, नगर, पुर, पट्टन में विचरण करते हुए यहां पधार जावें तो मैं भी भगवान के चरण कमलों में, सांसारिक भोगोपभोग पदार्थों को त्याग कर भगवती दीक्षा अंगीकार कर लूं।

ठाणांगजी-सूत्र में श्रावक के तीन मनोरथों का वर्णन किया गया है। उनमें से प्रथम मनोरथ में श्रावक यह विचार करता है कि वह दिन धन्य होगा जब कि मैं आरंभ परिग्रह का सर्वथा प्रकार से त्याग करूंगा। कहिए! श्रावक की भावना क्या रहनी चाहिए और आज का नामधारी श्रावक किस ओर प्रवृत्ति कर रहा है? पहिले के

श्रावकों की भावना आरंभ परिग्रह से छूटने की रहती थी और आज हम देखते हैं कि लोगों की अधिकतर दौड़धूप आरंभ परिग्रह बढ़ाने की ओर हो रही है। भाई! वर्तमान सरकार तो यहां तक जोर देकर कह रही है कि यदि अपने आपको और देश को समृद्धिशाली बनाना हो तो कल-कारखानों का निर्माण करो। इससे तुम धनवान बन जाओगे। दूसरी तरफ जैन धर्म स्पष्ट रूप से कहता है कि आरंभ-परिग्रह को जितनी मात्रा में घटाओगे उतने ही सुखी बनोगे। परन्तु वास्तव मे देखा जाय तो आरंभ परिग्रह को बढ़ाने में वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं परन्तु घटाने से ही जीवन समृद्धशाली बन सकता है। मनुष्य के जीवन यापन के लिए तीन ही मुख्य वस्तुएँ हैं, अन्न, वस्त्र और मकान। ये तीनों ही बिना कल कारखानों के निर्माण किए या हिंसादिक के कर्म किए बिना भी सात्त्विक ढंग से अर्थोपार्जन कर्म-विधि से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। यदि मनुष्य अपने जीवन में तृष्णा के बजाय संतोष को विशेष महत्त्व देता है तो जीवन निर्वाह करने में कोई कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। बाकी इस जीवन में तृष्णा की तो कोई सीमा नहीं। तृष्णा असीम होती है। तृष्णा के वशीभूत होकर ही मनुष्य अठारह पापों का सेवन करने में भी नहीं हिचकिचाता। इसीलिए श्रावक को पहिले मनोरथ में यही चिन्तन करना चाहिए कि वह आरंभ परिग्रह को घटाकर संतोषमय जीवन व्यतीत करे।

श्रावक अपने दूसरे मनोरथ में यह विचार करता है कि वह दिवस परम धन्य होगा जबकि वह आरंभ परिग्रह को सर्वथा प्रकार त्यागकर अपरिग्रही बनेगा अर्थात् मुनिव्रत धारण करेगा। जैन सिद्धान्त मनुष्य जीवन के क्रमिक विकास पर जोर देता है। जैसे पाठशाला मे अध्ययन करने वाला एक विद्यार्थी प्रथम कक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर ही द्वितीय श्रेणि में, तृतीय में और यावत् बी० ए०,

एम० ए० की कक्षाओं में प्रवेश कर पाता है उसी प्रकार भगवान तीर्थङ्करों ने भी आत्म विकास की क्रमिक श्रेणियां बता दी हैं। उन श्रेणियों में क्रमशः उत्तीर्णता प्राप्त करते हुए एक दिन यह आत्मा सर्वोपरि सिद्ध श्रेणि को प्राप्त कर लेती है। सिद्धस्थान प्राप्त कर लेने के पश्चात् वह आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिवान, अक्षय, अव्याबाध, सुख आदि उत्कृष्ट गुणों में रमण करने लगती है। तो श्रावक की भावना आरंभ परिग्रह को पूर्ण रूप से त्यागकर साधु-जीवन धारण करने की होती है। इस अवस्था में वह निष्परिग्रही बन जाता है। एक साधु मन, वचन और कर्म से भी अपरिग्रही होता है। वह अपने शरीर पर भी मूर्च्छाभाव अर्थात् आसक्ति नहीं रखता। क्योंकि सिद्धान्त में "मूर्च्छा परिग्रहः" अर्थात् आसक्तिभाव का आजाना भी परिग्रह है। तो एक साधक अन्न, वस्त्र और मकान को काम में लाते हुए भी उनमें आसक्ति भाव नहीं रखता। इसलिए मोक्ष द्वार में प्रवेश करने के लिए अपरिग्रही साधु बनना होता है। बिना अपरिग्रही हुए मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

अब तीसरे मनोरथ में श्रावक यह श्रेष्ठ विचार करता है कि वह दिन उसका परम धन्य होगा जबकि संयमी जीवन यथाविधि पालन करते हुए अंतिम समय में वह जीवन में लगे हुए पापों की आलोचना करके तथा प्रायश्चित करके पंडित मरण करेगा। यह जीवन के क्रमिक विकास की तीसरी श्रेणी है। यदि इस श्रेणी को साधक पूर्ण रूप से उत्तीर्ण कर लेता है तो फिर उसके लिए कोई श्रेणी उत्तीर्ण करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह केवलज्ञान, केवलदर्शन का धारक तीनों जगत का परमेश्वर बन जाता है। तो श्रावक को सदैव इन तीन मनोरथों का अवश्यमेव चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि बार-बार चिन्तन करने से भी कभी न कभी उसके जीवन में वह शुभ दिन आ सकता है जबकि वह भी आरम्भ परिग्रह

का सर्वथा त्याग करके निर्ग्रन्थ के रूप में जीवन बिताने को तैयार हो जाय और जीवन के अंतिम क्षणों में अपने जीवन को परिमार्जन करके विशुद्ध बन कर समाधि मरण कर सके। तो हमेशा शुभ विचार मन में रखने चाहिए। यदि मन में शुभ विचार होंगे तो वे बचनों द्वारा बाहर प्रकाश में आएँगे और एक दिन वे ही शुभ विचार काया के द्वारा भी प्रवृत्ति में आ सकेंगे। इसलिए मेरा तो आप सब लोगों से यही पुरजोर कहना है कि अपने मनमें हमेशा शुभ विचार रखना। यदि कोई मनुष्य विरक्त बन कर साधु जीवन व्यतीत करने की इच्छा कर रहा हो तो उस शुभ कार्य में साधक तो अवश्य बनना परन्तु बाधक कभी मत बनना। यदि आप उस जीवन सुधार के मार्ग पर अग्रसर होने वाले व्यक्ति के लिए बाधक स्वरूप बन गए तो याद रखना! इस बाधकता के परिणाम स्वरूप आपको महान् कटु फल भोगना पड़ेगा। श्रीमद् दशाश्रुतस्कंध-सूत्र में तो भगवान ने यहां तक फर्मा दिया है कि जो कोई एक साधु जीवन को ग्रहण करने वाली आत्मा को अपने वचनों के द्वारा या अपने कार्यकलापों से रोकता है तो वह महा मोहनीय कर्म सत्तर क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम का परम आयुष्य बधांता है। इसलिए कोई भी ऐसा कार्य मत करना जिससे इतने लम्बे समय तक अपनी आत्मा को कष्ट उठाना पड़े।

भाई! हमारा तो उपदेश देने का फर्ज है। परन्तु मानना या नहीं मानना, अमल करना या नहीं करना यह आपकी अपनी मर्जी पर निर्भर है। यदि उपदेश सुनकर उस पर अमल करोगे तो आपकी आत्मा भविष्य [में सुखी बन जाएगी। अन्यथा चौरासी के चक्र में घूमना तो सामने ही नजर आरहा है। इसलिए कोई भी शुभ काम हो रहा हो तो मन, वचन और काया से उसमें सहयोग देने की ही भावना रखना। क्योंकि समाज में ऐसे आदमियों की भी कमी नहीं है जो शुभ कार्य होते हुए में रुकावट डालने वाले बन जाते हैं। परंतु

ऐसे बाधक लोगों से समाज को सदैव सावधान रहने की आवश्यकता है। जो धर्म प्रवृति करने के लिए सर्पान्स रोड़ पर स्थित बंगला लिया जाने वाला है तो वह आप लोगों की सद्भावना के द्वारा ही लिया जाएगा। मेरा तो कर्तव्य केवल उपदेश कर देने मात्र का है। बाकी लेने देने वाले तो आप लोग ही हैं। अतएव मैं मोरचरी तथा सर्पीग्स रोड़ वाले भाईयों को आगाह कर देना चाहता हूँ कि आप लोग कति-पय बहकाने वाले लोगों से होशियार रहकर कार्य करें। इसी में आपका और हमारा भला है। यदि यह विशाल प्राङ्गण वाला बंगला आपके हस्तगत हो जाता है तो इसमें विशेष रूप से धर्म ध्यान होने की संभावना है। तो आरंम्भ परिग्रह को घटाने की भावना रखना चाहिये।

हां, तो मैं कह रहा था कि भद्रनंदी कुमार भी अष्टम-तप करके पौषध व्रत में धर्म जागरणा करते हुए रात्रि व्यतीत कर रहे हैं। उनकी उत्कृष्ट परिणाम धारा को श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने केवल ज्ञान के द्वारा जान ली। कालान्तर में वे ग्रामानुग्राम विहार करते हुए शिष्य परिवार सहित उसी नगर के बाहर स्थूभकरण नामक उद्यान में आकर विराजमान हुए। भगवान के शुभागमन की सूचना पाकर नगर की जनता और राजा दर्शनार्थ गए। भद्रनंदी कुमार भी अपने मनोरथ की सफलता के फलस्वरूप हर्षित होता हुआ भगवान की सेवा में पहुँचा। समवसरण में आई परिषदा को भगवान महा-वीर ने धर्मोपदेश दिया। उपदेश सुनकर जनता याग-प्रत्याख्यान करके अपने नगर को लौट आई। परन्तु भद्रनंदी कुमार भगवान् का उपदेश सुन कर उनके निकट गया। उसने हाथ जोड़ कर भगवान् के सामने इच्छा प्रकट की कि हे भगवन्! मैं माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर आपके श्री चरणों में प्रवर्ज्या स्वीकार करूंगा। भगवान ने भी प्रत्युत्तर में कहा-"अहा सुहं देवाणुप्पिया।"

भद्रनंदी कुमार भगवान को वन्दन-नमस्कार करके अपने घर लौट आया। उसने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके भगवान महावीर के पास दीक्षा अंगीकार कर ली। श्रमण भगवान् महावीर का शिष्यत्व स्वीकार करने के पश्चात् उसने तथागत स्थविर मुनिराजों की सेवा मे रहते हुए ग्यारह अंगों का ज्ञान कंठस्थ करलिया। ग्यारह अंग का ज्ञान सीख लेने के पश्चात् वे तपाराधना में लीन हो गए। तपश्चर्या करते हुए जब उनका शरीर क्षीण हो गया तो इस क्षीणकाय मे से भी सार निकाल लेने की इच्छा से उन्होने अन-शन व्रत धारण कर लिया। अंतिम समय में आत्मा की आलोचना करके विशुद्ध भावों में रमण करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। यहां से मर कर उनकी आत्मा प्रथम देवलोक में जाकर देवरूप में उत्पन्न हुई। वहां से च्यव कर वे मनुष्य जन्म धारण करेंगे। मनुष्य भव में वे साधु बन कर उत्कृष्ट करनी करके यहां से मर कर तीसरे देवलोक में उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार वहां से च्यव कर मनुष्य जन्म धारण करके फिर पांचवें देवलोक में और फिर सातवें, नवमें और ग्यारहवें देवलोक में जाकर उत्पन्न होंगे। वहां से च्यव कर फिर मनुष्य बनेंगे। मनुष्य भव में साधु व्रत अंगीकार करके और उत्कृष्ट करके फिर सर्वार्थ सिद्ध विमान में जाकर तैंतीस सागरोपम वाली स्थिति को प्राप्त करेंगे। वहां से भी आयुष्य पूर्ण करके पुनः मनुष्य जन्म को धारण करेंगे। मनुष्य भव मे यथा समय मुनिराजों के मुखाविंद से केवली प्ररूपित धर्म को सुनकर तदनुरूप जीवन को बनाने के लिए साधु व्रत अंगीकार करेंगे। संयम को निर्मल रूप से पालन करते हुए सर्व कर्मो का क्षय करके यावत् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनेंगे।

भाई ! भद्रनन्दीकुमार को अक्षय सुख निधि भोगोपभोग पदार्थों में आसक्ति रखने से नहीं अपितु उन पर से ममत्व हटा कर संयम ग्रहण करने से प्राप्त हुआ। यदि वे भी आज के मानवों की तरह

तृष्णा में डूबे रहते तो कभी भी मोक्ष के अधिकारी नहीं बन: पाते। इसलिए मेरा भी आप लोगों से कहना है कि रात-दिन धनोपार्जन में ही न लगे रहकर थोड़ा-थोड़ा आरम्भ परिग्रह को भी घटाने का प्रयत्न करो। ऐसा करने से एक दिन वह भी जीवन में आ सकता है जबकि आप सर्वथा प्रकार से आरम्भ परिग्रह के त्यागी बनकर संयम अवस्था धारण कर लोगे। साधु जीवन व्यतीत करने वाले को बावीस परीषह सहन करने पड़ते हैं। इन परीषहों में एक याचना परीषह भी बताया गया है। एक साधक को अपने जीवन निर्वाह के लिए इस परीषह को भी सहन करना पड़ता है। वह घर-घर भिक्षा के लिए जाता है। कभी तो उसे आदर सहित इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाती है और कभी उस याचना के बदले धिक्कार तिरस्कार और अपशब्द भी सुनने को मिलते है। परन्तु सच्चा आत्म साधक उन गालियों को भी फूलों का हार समझ कर हृदय में धारण कर लेता है। परन्तु कमजोर साधक उस याचना परीषह को सहन नहीं कर पाते। उनके जीवन में यह दृश्य देखकर घबराहट पैदा हो जाती है और विचारते हैं कि इस मांगने से तो मर जाना ही बहतर है। गृहस्थ जीवन में रहना ही ठीक है।

अरे! तुलसीदासजी जैसे संत ने भी याचना परीषह से व्यथित होकर एक दोहे में अपने हार्दिक उद्गार प्रकट कर दिए। उन्होंने लिखा है कि—

'तुलसी' कर पर कर करो, करतल करो न करो।
जा दिन करतल कर करो, ता दिन डूब मरो॥

एक समय की बात है कि तुलसीदासजी गंगा के किनारे ठहरे हुए थे। उस समय उन्हें वहां जीवन निर्वाह के लिए याचना करनी पड़ी। वे याचनावृत्ति से घबरा गए। अतएव एक दिन उन्होंने उक्त

दोहे की रचना कर डाली। इसमें यही भाव दर्शाया है कि हे तुलसी! तू सदैव हाथ पर हाथ तो कर परन्तु हाथ के नीचे हाथ मत करना। यदि तूने हाथ के नीचे हाथ कर लिया तो याद रखना एक दिन डूब मरेगा। अर्थात् हाथ के नीचे हाथ करना डूब मरने के समान है।

एक कवि ने तो इसी विषय में और भी स्पष्ट रूप में कह दिया है कि:—

मांगन गया सो मर गया, मरे सो मांगन हार।
उसके पहिले वह मरा, छती वस्तु नट जाय॥

अर्थात्—मांगना है यह मरने के बराबर है। अपनी इज्जत, शान शौकत, मान सम्मान वगैरह सबको बालाए ताक रखकर ही कोई किसी के दर पर जाकर मांग सकता है। फिर याचक को क्षमाशील विनयवान, प्रशंसक, अक्रोधी, अमानी, आदि गुणों का धारक भी बनना पड़ता है। कई वक्त प्रशंसनात्मक वचन बोलने के बाद कहीं एक बार दाता का मन कुछ देने को होता है। भाई! मांगने वाला तो मरे हुए के समान है ही परन्तु एक दाता जिसके पास साधन सामग्री प्रचुर मात्रा में है परन्तु यदि वह एक याचक को उसके द्वारा मांगी हुई वस्तु के होते हुए भी इन्कार कर देता है तो वह उस मांगने वाले से भी पहिले मरा हुआ समझना चाहिए। इसलिए अपने द्वार पर आए हुए याचक को देकर ही संतुष्ट करो। यदि देने के लिए वस्तु न हो तो मीठे शब्दों से ही सत्कार कर के उसे विदा करो। परन्तु अनादर कभी किसी व्यक्ति का मत करो।

एक साधक के लिए साधना काल में अपने जीवन निर्वाह के लिए याचना परीषह भी सहन करने का तीर्थङ्कर भगवान का फर्मान है। इसलिए साधु को कभी याचना करते हुए ग्लानि, क्रोध या अभि-

मान नहीं लाना चाहिए। दातार के द्वारा किए गए गुणस्तुति या अपयश इन दोनों परिस्थितियों में साम्य भाव रखना चाहिए। यदि उसका किसी व्यक्ति के द्वारा अपमान हो रहा है तो उमसे ग्लानि नहीं लाकर यही विचार करना चाहिए कि अरे! अरे! जब कि छः खण्ड के अधिनायक चक्रवर्ती भी अपने समस्त राज्य वैभव का परित्याग कर तीर्थङ्कर भगवान के बताए हुए मोक्ष मार्ग को स्वीकार करते हैं और साधु बन कर दातार के द्वार २ पर भिक्षा के लिए जाते है तब कहीं तो उनका भव्य सत्कार-सन्मान होता है और कहीं तिरस्कार भी होता है। परन्तु वे दोनों स्थिति में समभाव की मूर्ति बने रहते हैं। तब उनके सामने मेरे पास तो था भी क्या? जिसका कि मुझे अभिमान हो रहा है! यदि चक्रवर्ती सम्राटों ने भी तीर्थंकर भगवान की आज्ञा का पालन किया है तो मुझे भी उनकी आज्ञानुसार याचना परीषह सहन करते हुए संकोच नहीं करना चाहिए। यदि कर्मों को काटना है तो उसके लिए याचना परीषह का भी हृदय से स्वागत करना पड़ेगा। इसके बिना मोक्ष की प्राप्ति होना मुश्किल है।

भाई! जिस याचना परीषह को समभाव से सहन कर लेने से यदि मोक्ष की प्राप्ति होती हो तो उसे साधक को हँसते-हँसते सहन कर लेना चाहिए। जब कि यह आत्मा नरक योनि में रहकर उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम तक महान नारकीय कष्टों को बलात् सहन करके आया है तब उन दुखों के समक्ष साधु-जीवन में आनेवाले परीषह तो नगण्य से हैं। अतएव आत्मा में उन नारकीय दुःखों को स्मरण में लाते हुए मजबूती के साथ इन परीषहों को भी भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए सहन करने चाहिएँ। अरे! सुखाभिलाषी मनुष्य तो इस शरीर पर आए हुए कष्ट को निवारण करने के लिए एक स्वल्पज्ञानी के मुंह से निकले हुए उपाय को भी करने के लिए तैयार हो जाता है। वह यह विचार नहीं करता कि ऐसा आचरण करते हुए दुनियां मुझे

हीन समझने लगेगी। चूंकि उसने अपना लक्ष्य शारीरिक कष्ट से मुक्ति पाने का बना लिया है अतएव वह उन-उन परिस्थितियों का शान्तभाव से सामना करता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढता जाता है। इस प्रकार एक दिन वह शारीरिक कष्ट से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

एक दृष्टान्त के द्वारा यह बात स्पष्टरूप से समझ में आ सकती है। भाई! किसी शहर में एक समृद्धिशाली सेठ निवास करता था। एक समय वेदनीय कर्म के उदय से उसे आधाशीशी की बीमारी हो गई। वह उस बीमारी से बड़ा परेशान हो गया। रात और दिन उसे सिर दर्द के मारे चैन नहीं मिलता था। उसने बड़े-बड़े डाक्टरों और वैद्यों का इलाज कराया परन्तु आराम नहीं हुआ। पर्याप्त धन-राशि खर्च करने पर भी जब उसे स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ तो वह जीवन से निराश होकर घर से निकल पड़ा। परन्तु रास्ते में अचानक एक अनुभवी सज्जन से मुलाकात हो गई। उस परोपकारी मनुष्य ने बीमारी मालूम करके कहा कि सेठजी! इस बीमारी को मैं दवा के द्वारा जड़ से मिटा सकता हूँ परन्तु इस दवा को यथाविधि लेनी पड़ेगी। यदि आपने उस विधि के अनुसार दवा लेली तो बीमारी से शर्तिया मुक्त हो सकते हो। यह सुनकर सेठ ने कहा—महाशयजी! यदि आप मुझे इस कष्ट से मुक्ति दिला दें तो मैं आपका जिंदगी भर एह-सान नहीं भूलूंगा। मैं आपके द्वारा बताए हुए कड़े से कड़े नियम को भी पालन करने में संकोच नहीं करूंगा। कृपया शीघ्र बताइए कि आपकी दवा किस विधि के अनुसार लेनी चाहिए।

उस दयालु पुरुष ने दवा देते हुए कहा कि सेठजी! इस दवा का सेवन इस बढ़िया लिबास में नहीं परन्तु फटे-पुराने कपड़ों में करना होगा। साथ ही यह भी बता दूं कि यह दवा घर में नहीं किंतु

चौराहे पर जहां चारों तरफ से लोगों का गुजरना होता है वहां बैठ-कर एक मिट्टी के ठीकरे में सात दिन तक दवा लेने की प्रक्रिया करनी होगी। सातवें दिन उस मिट्टी के बरतन को सबके सामने फोड़कर सीधे घर पर चले आना। इस प्रकार सात दिन पर्यन्त विधि के अनु-सार दवा का सेवन करना होगा। क्या तुम्हें यह बात मंजूर है ? तब सेठ ने निर्भीकता से कहा कि महाशयजी ! मुझे आपके द्वारा बताई हुई विधि के अनुसार दवा लेना मंजूर है। यदि चंद दिनों के लिए एक भिखारी के रूप में रहकर भी यदि मेरा रोग हमेशा के लिए नष्ट हो जाता है तो ऐसा करने में मुझे क्यों संकोच होना चाहिए। हे परम दयालु ! मैं अपने भविष्य को सुखमयी बनाने के लिए सब कुछ सहन करने को तैयार हूँ।

उस व्यक्ति से दवा प्राप्त कर सेठ घर पर लौट आया। दूसरे दिन सेठ ने फटे-पुराने, मैले-कुचैले वस्त्र किसी से मांग कर अपने शरीर पर धारण कर लिए और हाथ में एक मिट्टी का ठीकरा लेकर चौराहे पर पहुँच गया। वह वहां बैठ कर दवा को मिट्टी के बरतन में डालकर सेवन करने लगा। तब आने जाने वाले लोगों ने सेठ को इस फटे हाल में देखकर आपस में काना फूसी करना शुरू की। कोई कहने लगा कि देखो ! एक लखपति सेठ की कैसी दुर्दशा हो गई है कि न तो शरीर पर अच्छे वस्त्र हैं और न खाने पीने के लिए बरतन ही हैं ! और कोई कहने लगा कि अरे ! यह तो बहुरूपिया बन कर किसी को अपने जाल में फंसाने के लिए बैठा है। खैर ! जैसा जिसके दिमाग में विचार उत्पन्न हुआ वैसा ही प्रकट करता हुआ चला गया। सेठ के कानों मे भी उक्त शब्द पड़ रहे थे परन्तु सहनशीलता के साथ सुनता हुआ दवा लेकर चला गया। इस प्रकार विधि के अनुसार जब सातवें दिन का सूर्य उदित हुआ तो उस दिन भी उसी फटेहाल में हाथ में ठीकरा लेकर गया और दवा सेवन करने लगा।

इधर सेठ के चले जाने बाद ही एक व्यक्ति एक लाख रुपये की सेठ के नाम की हुण्डी लेकर आया। उसने सेठजी के विषय में पूछा तो मुनीम गुमाश्तों ने कहा कि सेठ सा० आपको चौराहे पर बैठे हुए मिलेंगे। वह व्यक्ति उसी चौराहे पर गया और एक भिखारी की शक्ल में बैठे हुए व्यक्ति को देख कर वापिस लौट आया और कहने लगा कि मुनीम सा० ! वहां तो सेठ सा० दिखाई नहीं दिए। तब मुनीम ने कहा कि सेठ सा० वहीं बैठे हुए हैं और आप जिस व्यक्ति को देख कर आए हैं वही सेठजी हैं। परन्तु उस व्यक्ति को मुनीम की बात पर विश्वास नहीं हुआ। तब उसने दूसरे व्यक्ति से, तीसरे और चौथे व्यक्ति से पूछा तो सभी ने एक ही प्रकार का उत्तर दिया। खैर ! वह व्यक्ति भी एक तरफ खड़ा होकर विचारने लगा कि सेठजी को इस प्रकार का स्वांग बनाने की क्यों आवश्यकता हुई ! परन्तु इसका निर्णय तो सेठ जी से मिल कर ही हो सकता था। वह इसी विचार में था कि सेठ जी ने मिट्टी के बरतन में दवा घोल कर सेवन की और उसे जोर से पटक कर द्रुत गति से घर की ओर रवाना हो गए। वह व्यक्ति भी सेठ के पीछे २ चलने लगा।

सेठ हवेली में चला गया। स्नान करके तथा सुन्दर वस्त्र धारण करके वापिस दूकान पर आकर बैठ गया। सेठ आज अपने जीवन का सुनहला दिवस मान रहा था। वह अब पूर्ण रूप से स्वस्थ हो चुका था। अतएव प्रसन्न मुद्रा में सेठ अपनी गादी पर बैठा हुआ दिखाई दे रहा था। इतने ही में वह अपरिचित व्यक्ति भी दूकान पर आ पहुंचा। सेठ को मुजरा करके उनके पास बैठ गया। सेठ ने उससे पूछा कि भाई ! क्या काम है ? तब उसने कहा कि सेठ सा० काम तो फिर भी हो जायगा परन्तु पहिले आप यह बताइए आपको अपने जीवन मे एक भिखारी का स्वांग क्यों बनाना पड़ा ? तब सेठ ने उसे सारी हकीकत कह सुनाई कि इस कारण उसे यह स्वांग बनाना

पड़ा। तब उस व्यक्ति ने कहा कि सेठ सा० ! मैं आपके नाम की लाख रुपए की हुण्डी लेकर आया हूँ परन्तु आपकी पूर्व परिस्थिति देख कर मै विचार में पड़ गया कि क्या कभी एक भिखारी भी लाख रुपये की हुण्डी सिकार सकता है। परन्तु दूसरे ही क्षण दूसरे स्वांग को देख कर वह प्रथम विचार गायब हो गया और अब हुण्डी सिकरने में कोई विलम्ब का काम नहीं है। वह व्यक्ति हुण्डी का रुपया लेकर चला गया। सेठ आनन्द पूर्वक व्यापार करता हुआ अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

भाई ! यह तो एक द्रव्य दृष्टान्त है। ऐसी घटना घटी हो तो क्या और नहीं घटी हो तो भी क्या ! परन्तु इसका निष्कर्ष यही है कि सेठ की तरह यह आत्मा भी आठ कर्मों के रोग से अनन्तकाल से पीड़ित हो रही है। इसने पूर्व जन्मो में कुदेव; कुगुरु और कुधर्म रूपी डाक्टर वैद्यों की दवा लेने में कसर नहीं रखी। परन्तु रोग निवारण होने के बजाय बढ़ता ही गया। आज इस आत्मा को महान पुण्योदय से भगवान महावीर जैसे परमार्थी वैद्य की वाणीरूपी दवा सेवन करने को मिल गई है। उनकी दवा का सेवन करने से भव-भव के रोग भी नष्ट हो जाते है। जन्म जरा और मृत्यु के रोग से हमेशा के लिए छुडाने वाली यह जिन वाणी रूपी यह महौषधि है।

स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० ने भी इन्हीं भावों को अपनी कविता में स्पष्ट रूप से अंकित कर दिये हैं। उन्होंने कहा है कि:—

तुम दवा खरीदो, ज्ञानी गुरू मिलिया वैद्य हकीमजी ॥टेक॥
अष्ट कर्म का रोग अभ्यंतर, जन्म मरण दुख भारी।
तुरत फुरत सब रोग मिटे लो, दवा बहुत गुणकारी रे ॥तुम॥ १ ॥

भाई ! इस आत्मा को अनन्तकाल से अष्ट कर्म रूपी आभ्यंतर रोग लग रहा है। इस रोग से पीड़ित होकर इसे बार-बार जन्म-

मरण करने पड़ते हैं। परन्तु इस बार तुम्हें महान पुण्योदय से यह मनुष्य जन्म मिल गया है। इस जन्म में भी तुम्हें भाग्य से जिनेश्वर देव की वाणी रूपी अचूक दवा सेवन करने को मिल रही है। वे जिनेश्वर देव डाक्टर वैद्य, हकीम के मानिन्द हैं। उनकी बताई हुई भवरोग नाशिनी दवा का सेवन करने से प्रत्येक की आत्मा अव्याबाध सुख को प्राप्त कर सकती है। हम भी उन्हीं तीर्थङ्कर भगवान के द्वारा ईजाद की हुई दवा के एजेन्ट रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष में गांव-गांव और शहर-शहर में घूम-घूम कर अच्छी तरह प्रचार करते हैं। जो इस राम बाण दवा का विधि-विधान सहित सेवन कर लेता है उसके तमाम कर्म रूपी रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि किसी को ज्ञानावर्णीय कर्म रूपी रोग है तो उस बीमारी को दूर करने की और दर्शनावर्णीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय रूपी रोग हैं तो उनको भी विविध प्रयोगों द्वारा निवारण किए जा सकते हैं। परन्तु वह जिनवाणी रूपी दवा विधि के अनुसार सेवन करने पर ही लाभ-दायक हो सकती है। हमारे पास भगवान के द्वारा निर्मित की हुई एक तरह की नहीं बल्कि नाना प्रकार की औषधिएं तैयार हैं।

कवि भी इसी बात की पुष्टि करते हुए कह रहे हैं कि:—

छोटी, बडी केई, मीठी, कड़वी तप गोली तैयार।
आंख मींच कर झट-पट ले ले, मत कर और विचार रे ।।तुम।।२।।

भगवान् तीर्थङ्करों के औषधालय में नाना प्रकार के कर्म रोगों को मिटाने के लिये नाना प्रकार की छोटी बड़ी, मीठी-कड़वी तप रूपी गोलिएँ तैयार रहती हैं। यदि जल्दी रोग से निवृत होना है तो मोटी और कड़वी तप रूपी गोली का आंख मींच कर सेवन कर लो। क्यों कि कड़वी दवा पुराने से पुराने बुखार को जल्दी से निकाल बाहर फैंकती है। वैद्य लोग भी पुराने बुखार में नीमगिलोय या सुदर्शन चूर्ण

का इस्तेमाल कराते हैं। उस दवा के सेवन से बीमार शीघ्र अच्छा हो जाता है। परन्तु जिनकी आत्मा कमजोर है और कड़वी गोली लेने में असमर्थ हैं तो उनके लिए मीठी गोलिएँ दयाव्रत रूप में भी तैयार हैं। अर्थात् माल भी उड़ाओ और रोग भी मिटाते जाओ। अब यह आपकी इच्छा पर निर्भर है कि आप कौनसी दवा पचाने का सामर्थ्य रखते हैं। अपनी अपनी शक्ति के अनुसार दवा लेकर भवरोग मिटा सकते हो। रोग, दवा को पेट में लेने से ही मिट सकेगा परन्तु केवल देखने, सूंघने या सुनने से नहीं मिटेगा। यदि दवा आंख मींचकर ले ली तो निरोग हो जाओगे। तीर्थङ्कर भगवान के दवाखाने में सबको समान भाव से दवा मुफ्त वितरित की जाती है।

इसी विषय में कवि महोदय आगे कह रहे हैं कि:—

समझ सयाना बार बार यह, जोग मिले नहिं ऐसा।
हित मुफ्त की दवा खिलावे, कौड़ी लगे न पैसा रे ॥ तुम २ ॥

अरे ! विवेकी पुरुषो ! यह योग बार बार मिलने वाला नहीं है ! इस दुर्लभ अवसर का लाभ उठा लो। आपके बैंगलोर शहर में भी भगवान के एजेन्ट रूप में साधु-साध्वी अनमोल दवा बेचने वाले बार बार नहीं आयेंगे। आपके असीम भाग्योदय से घूमते हुए हम लोग आगये हैं। हमने हमारा सम्पूर्ण जीवन आप लोगों की सेवा के लिए ही अर्पित कर रखा है। आप भाई बहिनों को चार मास के लिए यह पुनीत अवसर निरोगता प्राप्त करने का मिल गया है। अतएव कोई भी भाई बहिन अपनी आभ्यंतर कर्म बीमारी को दूर करने से वंचित मत रहना। हमको भगवान् का आर्डर है कि जनता को हर जगह घूम कर मुफ्त दवा दो। आप यदि दूसरे एजेन्टों के पास जायेंगे तो वे बिना फीस और चार्ज लिए आपको दवा नहीं देंगे। परन्तु हम तो

प्रेम से आकर्षित करके आपको बिना कौड़ी पैसा लिए ही मुफ्त में दवा बांट रहे हैं। यदि आपकी पुण्यायी जबर्दस्त होगी तब तो आप हमारी दवा ग्रहण कर निरोग हो जायेंगे अन्यथा भव भ्रमण करते हुए कष्ट तो उठाना ही है। इसलिये इस बार सभी भव्यात्माएं जिनेश्वर देव की वाणी रूपी दवा लेकर भवभ्रमण रूपी रोग से मुक्त हो जांय।

और स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० तो भगवान की फार्मेसी के सफल प्रचारक थे। वे अपनी सभा में श्रोताओं को संबोधन करते हुए जोर देकर कहते थे कि ऐ भवरोग से मुक्ति पाने के अभिलाषियों! मैं तुम सब को हित की और मुफ्त में दवा देने के लिए आया हूँ। मैं बिना कौड़ी पैसे के दवा तो अवश्य देता हूँ परन्तु इस दवा को पीने के पश्चात् तुम्हें परहेज जबर्दस्त पालन करना पड़ेगा। वह परहेज यह है कि दवा लेते हुए जिंदगी भर किसी की निंदा मत करना, चुगली मत खाना, धोखे बाजी मत करना और कम तोलना-कम नापना आदि क्रियाएं मत करना। यदि इस पथ्य का सेवन कर लिया तो मैं गारन्टी के साथ कहता हूँ कि तुम इस भव रोग से अवश्य मुक्त हो जाओगे।

आखिर में अन्य विशेषताएं बताते हुए पूज्य श्री अपने भाव व्यक्त कर रहे हैं कि:—

जिनवाणी का चूर्ण लिया कर, व्याधि हरे तमाम।
जो इतना भी शौक रखे तो, हुवे परम आराम रे ॥ तुम ॥ ४॥

महामुनि नंदलाल तणा शिष्य, जोड़ करी इम गावे।
ऐसा मौका आन मिला कि, रोग, सोग मिट जावे रे ॥ तुम ॥ ५ ॥

पूज्य श्री अन्त में जोर देकर भवि जीवों के हित के लिए कह रहे हैं कि ऐ भव्यात्माओ ! यदि आपसे तप रूपी कड़वी गोली न ली जा सकती है तो नियमित रूप से दो घड़ी के लिये जिनवाणी श्रवण रूपी चूर्ण ही ले लिया करो। यदि इतना थोड़ा सा समय भी आपने अपने जीवन में से निकाल कर चूर्ण खाने मे लगा लिया तो भी आप जन्म मरण की व्याधि से मुक्त हो जाओगे। इसलिये भाई ! हमारा भी आप लोगों से कहना है कि जिस उद्देश्य से आपने हमारा चातुर्मास यहाँ कराया है तो कम से कम दैनिक जिनवाणी रूपी चूरण खाने से तो कोई भाई वहन वंचित मत रहना। यह जिनवाणी रूपी चूरण भी यदि आप हमेशा लेते रहोगे तो आपकी आत्मा से कई रोग निकल जाएंगे और आत्मा निर्मल होती जाएगी। यह भगवान तीर्थङ्करों की वाणी समस्त कर्म रोगों का शमन करने वाली है।

देखो ! भद्रनंदी कुमार ने भगवान की वाणी रूपी चूरण की केवल एक ही मात्रा का सेवन किया परन्तु एक मात्रा ने भी उनके अनन्त भवों के उपार्जित कर्म रोगों को नष्ट कर दिया। वे कर्म व्याधि से अनन्त काल के लिए मुक्त हो गए। इस प्रकार सुख-विपाक सूत्र का दूसरा अध्ययन समाप्त होता है।

- ऋषभ-भवन्तरी -

भगवान आदिनाथ के पूर्व भवों का चरित्र सुनाते हुए कहा जा रहा है कि भ० ऋषभदेव की आत्मा चतुर्थ भव में वज्रजंघ राजा के रूप में उत्पन्न हुई थी। उनका श्रीमती राजकुमारी के साथ लग्न हुआ था। राजा और महारानी आनन्द पूर्वक सुख शैय्या पर बैठे

हुए शुभ विचार कर रहे थे कि प्रातःकाल सूर्योदय की पहिली किरण में राजकुमार को राज्य सिंहासन पर आरूढ़ कराकर आत्म कल्याण के लिए प्रवर्जित हो जायेंगे। इन्हीं उन्नत विचारों को हृदय में स्थान देते हुए वे निद्रा देवी की गोद में सो गए।

[पंचम भव] परन्तु कुदरत को कुछ और ही मन्जूर था। राजकुमार की दूषित भावना ने उन्हें आत्म कल्याण का पथ स्वीकार करने से वंचित कर दिया। उसने रात्रि में ही अपने अनुचरों द्वारा उनके महल में आग लगवा दी। सारा महल धांय-धांय कर जल उठा महाराज वज्रजंघ और महारानी श्रीमती उस अग्नि में जलकर समाप्त हो गए। परन्तु धर्म ध्यान सहित उनका मरण हुआ। वे दोनों यहां से मरकर उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिया रूप में उत्पन्न हुए। वहां उन्हें तीन पल्योपम का आयुष्य प्राप्त हुआ। चूंकि अकर्म भूमि में कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती अतएव कर्म बन्धन भी कम होते हैं। उनकी सारी इच्छाएं कल्पवृक्ष ही पूरी करते हैं।

[षष्ठम भव] हां, तो वे दोनों अपने पंचम युगलिया भव को पूर्ण करके प्रथम सौधर्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुए।

[सप्तम भव] भ० ऋषभदेव प्रथम देवलोक से च्यव कर मेरु गिरि पर्वत से पूर्व दिशा में महाविदेह क्षेत्र में एक वैद्य के यहां पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। बारहवें दिन अशुचि कर्म से निवृत्त होकर इनका नाम संस्कार किया गया। वैद्य कुमार का नाम जीवानन्द रखा गया।

ज्यों-ज्यों ये वय में बढते गए त्यों-त्यों माता पिता की परोप-भावना इनके हृदय में भी कूट कूट कर भरती रही। माता-पिता का देहावसान हो गया। ये अपनी खानदानी वैद्यक विद्या में प्रवीण हो चुके थे। जनता में ये जीवानन्द वैद्य के नाम से प्रख्यात हो गए।

जीवानन्द वैद्य के पांच मित्र थे। उनमें से एक राजकुमार, दूसरा दीवान पुत्र, तीसरा पुरोहित पुत्र, चौथा कोतवाल पुत्र और पांचवा श्रेष्ठि पुत्र था। श्रेष्ठि पुत्र का नाम केशवकुमार था। प्रथम देवलोक से स्वयप्रभा का जीव ही च्यव कर केशवकुमार के रूप में जीवानन्द का मित्र बना और यही केशवकुमार भगवान ऋषभदेव के समय में उन्हें वर्षीतप के पारणे में इक्षुरस बहराने वाला श्रेयांसकुमार के रूप में भगवान का पौत्र बनेगा।

जीवानन्द वैद्य के पांचों ही मित्र अनुकूल विचार वाले थे। ये छः ही मित्र खाने, पीने, उठने, बैठने, घूमने वगैरह सब कार्यों में साथ-साथ रहते थे। इन छः ही मित्रों के शरीर जुदे-जुदे थे परन्तु मन से सब एक थे। सब लोग इनकी मित्रता की सराहना करते थे।

भाई! मित्र बनाना तो आसान है परन्तु ताजिन्दगी तक एक रूपता रहना बहुत मुश्किल है। मित्रता निभाने के लिए बड़ा भारी त्याग करना पड़ता है। समय आने पर मित्र के लिए बलिदान भी देना पड़ता है। मित्र में मोह नहीं परन्तु विशुद्ध प्रेम होता है। स्वार्थ पूर्ति के लिए तो कई मित्र बन जाते है परन्तु वास्तविक प्रीत निभाने वाले बिरले ही मित्र होते है।

कहा भी है कि:—

प्रीति निभानी कठिन है, सबसे निभती नांय।
चढनो मोम तुरंग है, चलनो पावक मांय॥

मित्रता वहीं कायम रहती है जहां कि सच्चा प्रेम होता है। झूठे और बनावटी प्रेम से मित्रता हमेशा के लिए कायम नहीं रहती मित्र के साथ गठ बन्धन करना तो सरल है परन्तु मित्र को जिंदगी भर निभाना बहुत मुश्किल है। आज एक विद्यार्थी इधर से आया

है और दूसरा उधर से आता है और दोनों आपस में हाथ मिलाकर गुडमोनिंग सर कर लेते हैं। ऐसा करने मात्र से वे अपने मन में समझ लेते हैं कि हमारी आपस में मित्रता हो गई। परन्तु अभी तक उन्होंने एक दूसरे का हाथ पकड़ने का रहस्य ही नहीं समझ पाया है। जब एक युवक विवाह के समय चंवरी में अपनी पत्नि का हाथ पकड़ता है तो अपनी की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार उसे जीवन पर्यन्त अपनी पत्नी को सुख-दुख में निभाना पड़ता है। पाश्चात्य देशों के नियमानुसार स्वार्थपूर्ति के अभाव में बीच मे ही तलाक नहीं दे दिया जाता। परन्तु एक आर्यसंस्कृति मे पला हुआ नवयुवक अपनी पत्नी को अर्धाङ्गिनी के रूप में देखते हुए उसके प्रत्येक कार्य मे साझेदार बनता है। इसी प्रकार मित्र की मित्रता केवल हाथ पकड़ने में ही नहीं समाप्त हो जाती परन्तु उसे जीवन भर सुख-दुख में निभाना पड़ता है।

महाराज जयसिंहजी जयपुर के राजा थे। उस समय हिन्दुस्तान का बादशाह अकबर दिल्ली से शासन कर रहा था। एक बार अकबर ने महाराज जयसिंहजी को बुलाने के लिए परवाना भेजा। राजमाता ने जब दिल्ली के बादशाह का परवाना देखा तो उन्हें दिल्ली जाने के लिए तैयार किया। जब वे जाने लगे तो माता का शुभाशीर्वाद लेने के लिए गए। क्योंकि बुजुर्गों की आशीष से मुश्किल से मुश्किल कार्य मे भी सफलता प्राप्त हो जाती है। ज्योंही वे माता के चरणों मे गिरे तो माता ने आशीर्वचन देते हुए कहा कि बेटा! तुम जा तो रहे हो परन्तु एक बात याद रखना कि अपने पूर्वजों के साथ अकबर बादशाह की अदावत चली आरही है। अतएव इस प्रकार का प्रश्न पूछें तो ऐसा जवाब देना और ऐसा प्रश्न करें तो इस प्रकार प्रत्युत्तर देना। यह सुनकर जयसिंहजी ने कहा कि माताजी! आपकी शिक्षा मैं शिरोधार्य करता हूँ। आपने फर्माया तो उसीके

अनुसार मैं प्रश्नों के उत्तर दे दूंगा। परन्तु अकबर बादशाह ने यदि आपके द्वारा कहे गए प्रश्नों में से एक भी न पूछ कर कोई निराला ही प्रश्न कर लिया तब मैं क्या जवाब दूं? यह सुनते ही राजमाता ने कहा कि बेटा! तब तो फिर तेरी बुद्धि में मौके पर प्रश्न का जो जवाब उपजे वही देना। इस प्रकार माता से विदा होकर वे दिल्ली पहुँचे। वे अपने निश्चित किए गए स्थान पर ठहर गए।

जो दिन बादशाह से मिलने का मुकर्रर किया गयो था उस दिन वे ठीक समय पर दरबार में हाजिर हो गए। सारा दरबार अमीर-उमरावों से भरा हुआ था। वे भी अपने स्थान पर कायदे के मुताबिक हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। अकबर बादशाह दरबार में आए। सभी दरबारियों ने बादशाह की ताजीम दी। तब अकबर बादशाह ने महाराज जयसिंहजी को अपने पास बुलाया और इनके दोनों हाथ पकड़ लिए। फिर बादशाह ने कहा कि जयसिंह! अब तुम हमारे कब्जे में हो। बताओ ऐसी परिस्थिति में तुम क्या कर सकते हो? यह सुनते हो इन्होंने कहा कि बादशाह सलामत! अब तो मैं सब कुछ कर सकता हूँ! इनके बुद्धिमता पूर्वक दिए हुए प्रश्न के जवाब को सुन कर बादशाह ने पूछा कि जयसिंह! अब, सब कुछ क्या कर सकते हो यह स्पष्ट रूप से समझाओ! तब इन्होंने मीठे शब्दों में जवाब देते हुए कहा कि जहापनाह! हमारे यहां हिन्दू धर्म में ऐसा रिवाज है कि जब हिन्दुओं मे शादी होती है तो वह पति अपनी औरत को एक हाथ से पकड़ कर ले जाता है। परन्तु एक हाथ से पकड़ कर लाने पर भी उसे जीवन पर्यन्त निभाता है। उसकी हर तरह से सार-संभाल करता है परन्तु जब मेरे स्वामी ने मुझे दोनों हाथ से पकड़ लिया है तो अब मुझे क्या डर है! अब तो मैं सब कुछ कर सकता हूँ। महाराज जयसिंह जी के इस बुद्धिमत्ता पूर्ण जवाब को सुन कर बादशाह अकबर बड़ा खुश हुआ और सारे गुनाह

मोफ कर दिए। बादशाह अकबर ने पुरानी दुश्मनी को भूल कर उनको महरबान बन कर सवाई की पदवी दे दी।

जयसिंह ने अकबर के सन्मुख ऐसी बात चलाई।
हृदय कमल खिल उठे सभी के पदवी पाई सवाई॥

तो यहां इस उदाहरण के द्वारा यही सिद्ध करने का प्रयोजन है कि प्रीति केवल हाथ पकड़ने मात्र से नहीं हो जाती परन्तु उसे जीवन भर निभाना पड़ता है। इसलिए यदि आपस में मित्रता करनी हो तो मित्रता निभाने की प्रतिज्ञा प्रथम करना आवश्यक है। छः ही मित्रों में दिखावटी नहीं परन्तु वास्तविक मित्रता थी। एक दूसरे के सुख-दुख में काम आने वाले थे। उनका प्रेम दिन प्रति दिन पल्लवित होता गया।

पूज्य खूबचन्दजी म० अपने प्रवचन में कभी-कभी कहा करते थे मित्र तो सब बनाना चाहते हैं परन्तु मित्र कैसा होना चाहिए। उन्होंने कहा है कि :—

मित्र ऐसा कीजिए, जैसे लोटा डोर।
गला फसावे आपका, पावे नीर झकोर॥ १॥
मित्र ऐसा कीजिए, चौड़े देय बताय।
के टूटे के फिर मिले, मनका धोखा जाय॥२॥
मित्र ऐसा कीजिए, ढाल सरीखा होय।
सुख में तो पीछे रहे, दुःख में आगे होय॥३॥

भाई! उपरोक्त कथन के मुताबिक यदि मित्र होते हैं तो उनकी मित्रता अमर होती है। उसी मित्रता में जीवन का आनन्द आता है

अन्यथा स्वार्थ प्रेम में मित्रता बहुत जल्दी टूट जाती है। इसलिए मित्रता ऐसे ही व्यक्ति से करो जो जीवन भर निभा सके। आप संसारी मित्रों के साथ तो मित्रता करते हैं परन्तु वह भी अस्थायी होती है। वह मित्रता भी इसी जन्म तक साथ देती है। परन्तु मित्र ऐसा बनाना चाहिए जो हर जगह साथ दे। और वह सच्चा संगी-साथी है धर्म। यदि धर्म से मित्रता करलो तो यह एक दिन तुम्हें मोक्ष द्वार तक भी पहुँचा देगा। यह धर्म मित्र कभी भी तीन काल में धोखा देने वाला नहीं है।

तो जीवानन्द वैद्य अपने मित्रों के साथ आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा है। अब भविष्य मे किस प्रकार उसके द्वारा परोपकार का कार्य होता है जिससे जीवानन्द वैद्य तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन करता है। यह सब कुछ आगे सुनने से मालूम होगा।

बैंगलोर
ता० ३-८-५६

सुपात्र दान का महात्म्य
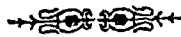
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टी करोपि सहसा युग पज्जगति ।
नाभो धरोधर निरुद्ध महा प्रभावः,
सूर्याति शायि महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥ १७ ॥

卐

जैनागमों में दान का बड़ा भारी महात्म्य बताया गया है। मोक्ष मंदिर में पहुंचने के लिए दान प्रथम सोपान है। दान दिए बिना ऐश्वर्यशालिता, समृद्धि, स्वर्ग और मुक्तावस्था प्राप्त होना भी अशक्य है। एतदर्थ चतुर्विंशति तीर्थङ्कर भगवानभी अपने-अपने काल में दीक्षा लेने से पूर्व एक वर्ष पर्यन्त निज कर कमलों द्वारा मुक्त हस्त होकर अभेद भाव से एक हजार आठ स्वर्ण मुद्राएँ सूर्योदय की प्रथम किरण के साथ देना प्रारंभ करते है। वे स्वयमेव दान देकर निज आत्मा का कल्याण करते हुए विश्व को दान का सबक सिखाते हैं। दान के चार भेदों में भी सुपात्र दान का विशेष महत्व शास्त्रकारों ने बताया है। शुद्ध अंतःकरण से आत्मा भी संत महापुरुष के पात्र में अन्न-जल का दान देने वाली पुण्यशाली आत्मा संसार परत कर लेती है। उस

भाग्यशाली आत्मा के लिए मोक्ष मन्दिर के द्वार खोलना सरलतम हो जाता है। सूर्यलोक का सूर्यनाम देवता भी सुपात्र दान एवं तप के प्रभाव से ही संसार को प्रकाशमान करने वाला ज्योतिर्धर बनता है। दान के बिना इहलोक तथा परलोक दोनों ही निरर्थक साबित होते हैं। सूर्य भी अपनी रश्मियां समस्त ससार को उदारता पूर्वक प्रदान करता है अतः सारी दुनियां उसे सूर्य भगवान के नाम से सम्बोधित करती है। यहां तक कि भगवान तीर्थङ्कर के ज्ञान सूर्य को भी सूर्य की उपमा दी जाती है। क्योकि सूर्य के सदृश अन्य कोई पदार्थ प्रकाश मान नहीं होता। यद्यपि तीर्थङ्कर भगवान् के लिए यह उपमा फिट बैठती हो या नहीं तथापि सूर्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थ संसार मे प्रकाशमान प्रतीत नहीं होता जिससे भगवान को उपमा दी जा सके। तो कहने का तात्पर्य है कि सुपात्र दान के द्वारा इस आत्मा के सर्व कार्य की सिद्धि होती है।

उक्त श्लोक में आचार्य श्री मानतुंग भी इस अवसर्पिणी काल के प्रथम दानेश्वर भगवान् ऋषभदेव की महामहिम स्तुति करते हुए कह रहे हैं कि हे जगत गुरू ! आप संसार मे सूर्य के समान प्रकाश-मान हैं। यद्यपि भगवान के लिए यह उपमा भी पूर्ण रूप से शोभित नहीं होती। क्योंकि उपमा उसी वस्तु से भगवान को दी जा सकती है जिसमें किसी प्रकार का दोष नहीं पाया जाय। परन्तु हम देखते हैं सूर्य तो प्रातःकाल प्राची दिशा से उदित होकर सायंकाल पश्चिम दिशा की ओर नित्य प्रति अस्त हो जाता है। जब कि तीर्थङ्कर भगवान का ज्ञान रूपी सूर्य तीन काल में भी अस्तगत नहीं होता। वह सर्वदा प्रकाशमान रहता है। दूसरे दृष्टिगोचर होने वाले सूर्य को राहू भी ग्रसित कर लेता है। उसका प्रकाश फीका सा प्रतीत होने लगता है। परन्तु भगवान के ज्ञान रूपी सूर्य को तो कर्म रूपी राहू भी ग्रसित नहीं कर पाता। वह निष्कलंक रूप से जगमगाता रहता

है। तीसरे उस सूर्य को तो काले-काले मेघ भी आच्छादित कर देते है जिससे उसका प्रकाश निस्तेज हो जाता है। परन्तु भगवान के केवल ज्ञान रूपी सूर्य को तो कोई बादल भी आच्छादित करने में समर्थ नहीं है। चौथे वह सूर्य तो अमुक सीमा तक ही प्रकाश कर सकता है। परन्तु हे भगवन्! आपका केवल ज्ञान रूपी सूर्य तो तीनों लोक के प्राणियों के अन्तःकरण में एक सरीखा प्रकाश करता है। अतएव हे मुनिन्द्र! (चौरासी हजार मुनियों में इन्द्र के सदृश) आप इस संसार में दृश्यमान सूर्य की महिमा को भी उलंघन करने वाली विशेषति विशेष महिमा को धारण करने वाले है।

उक्त श्लोक में तीर्थङ्कर भगवान को सूर्य की उपमा दी गई है। यद्यपि भगवान की समानता के लिए संसारी कोई भी उपमा फिट नहीं बैठती तदपि भक्त लोग भक्तिवशात अपने मानस की संतुष्टि के लिए उच्च से उच्च सांसारिक वस्तु से उपमा दे देते हैं। जैसे लोगस्स के पाठ में भी भगवान की महिमा मे आचार्यों ने कहा है:—"आइच्चेसु अहियं पयासयरा" अर्थात् हे भगवन! आप सूर्य से भी अधिक प्रकाश करने वाले हैं तो इसीप्रकार भगवान की स्तुति करते हुए 'नमुत्थुणं' के पाठ में कहा गया है कि:—"लोग पज्जोयगराणं" अर्थात् आप लोक मे उद्योत करने वाले है तो तीर्थङ्कर भगवान द्रव्य सूर्य से भी अधिक ज्ञान का प्रकाश करने वाले हैं। यानि भगवान के केवल ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश तीनों लोक में फैल रहा है और भक्त का भी भगवान स्तुति करने का प्रयोजन यही है कि जिससे भगवान के ज्ञान की रश्मि उसके हृदय पटल पर भी पड़ जाय और उसके अन्तःकरण का अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो जाय। जब भगवान के ज्ञान रूपी सूर्य की किरण उसके अन्त.करण पर पड़ जायगी तो उसके भव-भव का अज्ञान रूपी अंधकार भाग जायगा और हृदय ज्ञाना लोक से आलोकित हो जायगा; क्योंकि जहां प्रकाश आजाता है

वहां अंधकार विलीन हो जाता है। वैष्णव ग्रथों में भी कहा है कि:—

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'

अर्थात्:—भक्त भगवान से सविनय प्रार्थना करते हुए याचना करता है कि हे भगवान्! मुझे उस अंधकार से निकाल कर प्रकाश की ओर लेजा! तो हर हालत में प्रकाश के इच्छुक संसार के सभी प्राणी हैं। द्रव्य प्रकाश और भाव प्रकाश दोनों की ही प्राणी तमन्ना रखते हैं। सूर्य का द्रव्य प्रकाश भी जगज्जीवों को शांति प्रदान करने वाला है। वह प्रकाश चक्षुधारियों के लिए भी उपकारी है और चक्षुविहीनों के लिए भी उपाकर करने वाला है। सूर्य के प्रकाश में चक्षुधारी तो अपने जीवन में चेतना का अनुभव करते ही हैं परन्तु चक्षुविहीनों का भी चक्षुधारियों द्वारा मार्गदर्शन होजाता है। अतएव सूर्य का प्रकाश संसार के समस्त प्राणियों के लिए हितकारक एवं उपयोगी है। परन्तु भाव प्रकाश अर्थात् जब आत्मा से ज्ञानावर्णीय कर्म के क्षय होजाने पर केवल ज्ञान रूपी प्रकाश का आविर्भाव होजाता है तो उस प्रकाश में त्रैलोक्य की समस्त वस्तुएं प्रतिभासित होने लगती है। वह भाव प्रकाश यहीं तक सीमित नहीं है परन्तु वह आत्मा को परमात्म पद तक पहुँचाने में समर्थ है। अतः जीवन का लक्ष्य उसी भाव प्रकाश की प्राप्ति का है और उसी के लिए भगवान से भक्त याचना करता है और एक दिन भगवान की भक्ति करते हुए भक्त भी भाव प्रकाश में लीन होकर भगवान बनजाता है। भगवान ऋषभदेव उन सब गुणों से युक्त थे और उन्हीं को हमारा सब से पहिले नमस्कार है।

:: सुख-विपाक वर्णन ::

तीर्थङ्कर भगवान ने जो समष्टि संसार के कल्याण के लिए अमूल्य उपदेश दिया उसीको समीपवर्ती गणधारों ने गुंथन करके

जनता के समक्ष रख दिया। वही पुष्प आज हमारे सामने अंग, उपांग, छेद, मूल और आवश्यक सूत्र के रूप में विद्यमान है। आज आपके सामने मैं भी उन्हीं में से ग्यारवें अंग विपाक-सूत्र के सम्बन्ध में सुनाने जारहा हूँ। सुख विपाक-सूत्र के दस अध्ययन हैं जिनमें से दो अध्ययनों के बारे में प्रकाश डाला जा चुका है।

(तृतीय अध्ययन)

अब मैं तीसरे अध्ययन के विषय में जो श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अपने सुशिष्य भगवान गौतम स्वामी के सामने भाव प्रदर्शित किए थे वही भाव इस सूत्र द्वारा सुनाने जारहा हूँ। आशा है आप सभी भाई-बहिन शान्त हृदय से श्रवण कर आत्म कल्याण की ओर अग्रसर होंगे।

भगवान गौतम स्वामी के पट्टधर सुशिष्य श्री सुधर्मा स्वामी से उनके सुशिष्य जंबू स्वामी द्वारा सुख-विपाक के तीसरे अध्ययन के भाव के सम्बन्ध में विनीत भाव से प्रश्न किए जाने पर भगवान सुधर्मा स्वामी ने फर्माया कि हे जबू! वीरपुर नाम का नगर था। उसके बाहर मनोरमा नाम का उद्यान था। उस उद्यान का जैसा नाम था वैसा ही गुण था। अर्थात् वहां जाने वाले व्यक्ति का हृदय किंचित् समय के लिये प्रफुल्लित हो जाता है। उस उद्यान में एक तरफ वीर कृष्ण नामक यक्ष का यक्षायतन था। वीर पुर नगर में मित्र नाम का राजा राज्य करता था। राजा की महारानी श्री कृष्णा थी। एक समय रात्रि में रानी ने सिंह का स्वप्न देखा। हर्षित मन से उसने अपना-शुभ स्वप्न पतिदेव को कह सुनाया। प्रत्युत्तर में राजा ने पुण्यवान पुत्र जन्म का शुभ फल कह सुनाया। सवा नौ मास व्यतीत हो जाने के पश्चात् उसने एक पुत्र को जन्म दिया। राजकुमार का नाम सुजात रखा गया। आठ वर्ष की अवस्था हो

जाने पर राजकुमार सुजात को कलाचार्य के पास अध्ययन करने के लिए बैठाया गया। सोलह वर्ष की आयु हो जाने तक कुमार ७२ कलाओं में प्रवीण हो गए। राजकुमार जब युवावस्था में प्रवेश कर गए तब राजा ने उनका बल श्री प्रमुख पांच सौ कन्याओ के साथ लग्न करवा दिया। अब राजकुमार आनन्द पूर्वक भोग भोगते हुए समय व्यतीत करने लगे।

कालान्तर में श्रमण भगवन्त श्री महावीर स्वामी ग्राम, नगर पुर पतन में विचरते हुए यहां पधारे। वे मुनि मण्डल सहित मनोरमा उद्यान में विराजे। भगवान के शुभागमन की सूचना प्राप्त होते ही नर–नारिगण प्रसन्न मन से दर्शनों के लिए चल पड़े। राजकुमार सुजात भी वस्त्रा भूषणों से सुसज्जित होकर भगवान महावीर के दर्शनार्थ गए। वहां पहुँच कर उन्होंने भगवान के दर्शन किये तथा वाणी श्रवण करने लिए समव सरण में बैठ गए। भगवान की देशना समाप्त हो जाने पर आई हुई परिषदा व्रत प्रत्याख्यान लेकर अपने-अपने स्थान को लौट गई। सुजात कुमार ने भी भगवान के सन्निकट पहुंच कर श्रावक के बारह व्रत स्वीकार कर लिए। भगवान को सविधि वन्दन करके कुमार भी अपने स्थान को लौट गए। भगवान गौतम स्वामी ने सुजात कुमार को भगवान के दर्शन करके जाते हुए देखा। वे उन्हें बड़े प्रिय लगे। वे तत्क्षण भगवान महावीर के समीप आए और विनीत भाव से पूछने लगे कि भगवान्! सुजात कुमार बड़े ही इष्टकारी प्रियकारी एवं मनोज्ञ दिखाई देते हैं। ये नगर की प्रजा तथा राजा को तो प्रिय लगते ही होंगे परन्तु ये तो हम साधुओं को भी बड़े प्रिय लग रहे हैं अतः भगवन्! इन्होंने पूर्व जन्म में क्या सुपात्र दान दिया है? क्या भोगवा है? और क्या शुभाचरण किया है? जिससे इन्हें ऐसी मनुष्य जन्म सम्बन्धी उत्कृष्ट ऋद्धि प्राप्त हुई है? श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी

के प्रश्नोत्तर में कहा है कि हे गौतम ! पूर्व जन्म में यह इक्षुकार नाम के नगर में उसभदत्त नाम का गाथा पति था। यह किसी के दबाव दबने वाला नहीं था। किसी समय वहां पुष्पदन्त नाम के महामुनि का इसके द्वार पर शुभागमन हुआ। मुनिराज को भिक्षा क लिए आता हुआ देख गाथापति हर्ष सहित मुनिराज के सामने सात-आठ पैर आगे गया और मुनिराज को अपने रसोड़े में लाकर आपने हाथों मे सुपात्र दान दिया। भावों की उज्जवलता के फलस्वरूप गाथापति ने संसार परत कर लिया। उसने उस समय मनुष्य का आयुष्य बांध लिया। वहां से मृत्यु प्राप्त कर वह यहां आकर सुजात-कुमार के रूप में राजकुमार बना है। भगवाग गौतम स्वामी ने पुनः भगवान महावीर से प्रश्न किया कि भगवन ! क्या ये भविष्य में साधुव्रत अंगीकार करेंगे ? भगवान महावीर ने प्रश्न के उत्तर में फर्माया कि हां ! ये भविष्य मे साधु प्रव्रज्या स्वीकार करेंगे ?

कई दिवस वहां ठहरने के पश्चात् भगवान महावीर ने शिष्य मण्डली सहित अन्य जनपदों के लिए विहार कर दिया। इधर श्रावक सुजातकुमार अपने लिए हुए नियमों का विधि सहित पालन करते हुए जीवनयापन करने लगे। एक समय उन्होंने तेला किया और पौषधशाला में पौषधव्रत धारण करके धर्म जागरण करते हुए समय व्यतीत करने लगे। पिछली रात्रि मे धर्म जागरणा करते हुए विचार करने लगे कि धन्य है उस बस्ती को जहां भगवान महावीर विचरण कर रहे हैं ! धन्य है उन लोगों को जो गृहस्थ धर्म का त्यागन कर भगवान के समीप प्रव्रज्या धारण कर रहे हैं ! और धन्य है उन लोगों को जो श्रावक व्रत अंगीकार कर रहे हैं। यदि भगवान महावीर कालान्तर में कृपा कर यहां पधार जावें तो मैं भी भगवान के पास दीक्षा अङ्गीकार कर लूं। श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने अपने केवलज्ञान से सुजातकुमार के भाव जान लिए। वे ग्राम, नगर, पुर,

पत्तन आदि जनपदों में विचरते हुए पुन. वीरपुर नाम के नगर में पधारे और उद्यान मे विराजे। नगर की जनता भगवान के दर्शन एवं वाणीश्रवण के लिए गई। श्रावक सुजातकुमार भी अपनी भावना सफल हुई जानकर प्रफुल्लित मन से भगवान के दर्शनों को गए। भगवान महावीर का सदुपदेश सुनकर इन्हें परम वैराग्य भाव प्राप्त हो गया। भगवान के समीप आकर इन्होंने कहा कि भगवान्! आपका धर्मोपदेश सुनकर मुझे वैराग्य प्राप्त हो गया है अतः अब मैं अपने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके आपकी सेवा में साधु बनना चाहता हूँ। भगवान महावीर ने प्रत्युत्तर में फर्माया कि जैसा तुम्हें सुख उत्पन्न हो वैसा करो परन्तु शुभ कर्म करने में किंचित् भी प्रमाद मत करो। राजकुमार भगवान को वन्दन करके अपने घर लौट आए। अपने माता-पिता के सामने उन्होंने अपनी आत्मा की पुकार को रख दी। माता-पिता ने जब उनके भाव साधु बनने के जाने तो वे मूर्च्छित हो गए। आखिरकार कई प्रश्नोत्तर होने के बाद भी जब उनके माता-पिता ने उन्हें दृढ़ प्रतिज्ञ जाना तो उन्होंने अपने पुत्र को भगवान महावीर के समीप लेजाकर खूब धूम-धाम से दीक्षा दिलवा दी। दीक्षा लेने के पश्चात् इन्होंने तथागत स्थविरों की सेवा में रहकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। तदन्तर उन्होंने तपस्या करना प्रारंभ कर दिया। जब तपस्या करते हुए इनका शरीर जीर्ण-शीर्ण तथा शिथिल हो गया तो भगवान की आज्ञा से इन्होंने संथारा ग्रहण कर लिया। एक महीने की संलेषणा करके और काल-समय काल करके ये प्रथम देवलोक में जाकर देवयणे उत्पन्न हुए।

अब यहां संक्षेपतः यही कहना है कि जिस प्रकार सुबाहुकुमार सातभव देवता के और आठ भव मनुष्य के करके फिर महाविदेह क्षेत्र में समृद्धिशाली घर मे उत्पन्न होंगे, दीक्षा धारण करके समस्त कर्मों को काटकर मोक्ष प्राप्त करेंगे उसी प्रकार ये भी महाविदेह क्षेत्र

उत्पन्न होकर यथा समय दीक्षा अंगीकार कर उच्च करनी करके सीझेंगे, बूझेंगे तथा परिनिर्माण पद को प्राप्त करेंगे। इस प्रकार सुख-विपाक-सूत्र के तृतीय अध्ययन के भाव जानने चाहिए।

(चतुर्थ अध्ययन)

जब जंबू स्वामी ने सुख-विपाक के चतुर्थ अध्ययन के विषय में भगवान सुधर्मा स्मामी से भाव जानने की जिज्ञासा प्रगट की तो सुधर्मास्वामी ने फर्माया कि हे जंबू ! विजयपुर नाम का नगर था। नगर के बाहर नंदनवन नाम का उद्यान था। वहां अशोक नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर में वासवदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उसकी महारानी का नाम कृष्णा श्री देवी था। उसने यथा समय सुवाश्रव नामक राजकुमार को जन्म दिया। राजा ने राजकुमार की युवावस्था देखकर उसका भद्रा प्रमुख पांच सौ कन्याओं के साथ लग्न करा दिया। राजकुमार अपनी पांच सौ परिणीता वधुओं के साथ मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए आनन्द पूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

कालान्तर में उस नगर में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पधारना हुआ वे वहां के उद्यान में विराजे। राजकुमार भी भगवान के दर्शनों को गया। उसने भगवान की वाणी श्रवण की और सुनने के पश्चात् भगवान के समीप आकर बारह व्रतधारी श्रावक बन गया। घर लौटने पर उसने अपना जीवन एक श्रावक की तरह बिताना प्रारम्भ कर दिया। भगवान महावीर से गौतमस्वामी ने इनके प्रिय-कारी होने का कारण पूछा तो भगवान ने इनके पूर्व जन्म के सम्बन्ध में कहा कि हे गौतम ! उस काल और समय में कोशाम्बी नाम की नगरी थी। वहां धनपाल नाम का राजा राज्य करता था। उसने यथा समय वैश्रमणभद्र नाम के मुनिराज को रसोड़े में लेजाकर अपने

हाथों से सुपात्र दान दिया । भाव सहित दान देने के प्रभाव से उसने संसार परत किया और मनुष्य का आयुष्य बांध लिया । वह वहां से आयुष्य पूर्ण करके यहां आकर राजकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ है । पुन. गौतम स्वामी ने विश्ववंद्य भगवान महावीर से प्रश्न किया कि हे भगवान ! क्या ये भविष्य में मुनि बनेंगे ? तब भगवान ने प्रत्युत्तर में फर्माया कि हां ! गौतम ! यह भविष्य में मुनि बनेगा और सर्व कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करेगा ! इस प्रकार भगवान महावीर कुछ दिन वहां ठहर कर अन्य जनपदो के लिए विहार कर गए ।

इधर एक समय श्रावक सुवाश्रव कुमार पौषधशाला में तेला करके पौषध व्रत में रह कर धर्म जागरणा करते हुए रात्रि व्यतीत करने लगे । उन्होंने धर्म जागरण करते हुए विचार किया कि यदि भगवान पुनः यहां पधार जावें तो मैं भी भगवान के समीप भगवती दीक्षा अंगीकार करलूं । इनके शुभ विचारों को भगवान महावीर ने केवल ज्ञान द्वारा जान लिए । वे कालान्तर मे जनपद देशों में विचरण करते हुए पुनः विजयपुर पधारे और नंदनवन उद्यान मे आकर विराजमान हुए । जनता भगवान के दर्शनो को गई । राजकुमार सुवाश्रव कुमार भी भगवान के दर्शनों को गए । भगवान को उपदेश सुनकर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया । भगवान महावीर की सेवा में आकर अर्ज की कि भगवन ! आपके धर्मोपदेश सुनकर मुझे वैराग्य उत्पन्न हो गया है । मै शीघ्र ही माता पिता की आज्ञा लेकर आपके समीप दीक्षा धारण करूंगा । सुवाश्रव कुमार भगवान को वंदन करके अपने घर आगए । अपने-माता को रजामन्द करके भगवान के पास दीक्षित हो गए । दीक्षित होकर तथा गत स्थविरों की सेवा में रहकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, तप द्वारा शरीर को शिथिल बना दिया और भगवान की आज्ञा से संथारा कर लिया । एक माह की संलेषणा कर के यथा समय समस्त कर्मों को क्षय करके उसी भव मे मोक्ष को

प्राप्त कर लिया। इस प्रकार चतुर्थ अध्ययन के भाव भगवान सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जंबू स्वामी को सुनाये।

(पंचम अध्ययन)

अब पांचवें अध्ययन के विषय मे पूछे जाने पर भगवान सुधर्मा स्वामी ने अपने सुशिष्य जंबू स्वामी से कहा कि हे जंबू ! उस काल और उस समय में सोभंदिया नाम की नगरी थी। उस नगरी के बाहर नीलाशोक नाम का उद्यान था। उस उद्यान में सुकाल यक्ष का यक्षायतन था उस नगर में अप्रतिहत नाम का राजा राज्य करता था उसके सुकृष्णा नाम की महारानी थी। सुकृष्णा नाम की महारानी ने महच्चन्द्र नाम के कुमार को जन्म दिया। कुमार की भार्या का नाम अरहदत्ता था। अरहदत्ता ने भी एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम जिनदास रखा गया।

कालान्तर में उस नगरी के बाहर उद्यान में श्रमण भगवान महावीर का शुभागमन हुआ। नगर की जनता तथा राजा दर्शनों को गए। कुमार जिनदास भी भगवान के आगमन की सूचना प्राप्त करके भगवान के दर्शन करने तथा धर्मोपदेश श्रवण करने गया। भगवान की वाणी श्रवणकर राजा तथा प्रजा स्वस्थान को लौट गए। कुमार जिनदास ने भगवान महावीर के समक्ष श्रावक के बारह व्रतों को स्वीकार किए। भगवान को वन्दन नमस्कार करके अपने घर लौट आए। भगवान गौतम स्वामी ने इन्हें जाते हुए देखकर भगवान से विनम्र भाव से इनके प्रियकारी लगने का कारण पूछा।

श्रमण भगवन ! महावीर स्वामी ने फर्माया कि हे गौतम ! ये पूर्व जन्म में मज्झमिया नगरी के मेघरथ नाम के राजा थे। इन्होंने यहां सुधर्म नाम के महामुनि को अपने हाथों से सुपात्र दान दिया। उस दान के फल स्वरुप ये यहां आकर जिनदास कुमार के रूप में

उत्पन्न हुए। पुनः गौतम स्वामी के पूछने पर कि हे भगवन ! क्या ये साधुव्रत अंगीकार करेंगे ? तब भगवान ने कहा कि हां गौतम ! ये साधु बनेंगे।

जिनदास कुमार अपने नियमों का पालन करते हुए समय धर्म ध्यान को व्यतीत करने लगे। आखिरकार इन्होंने भी साधु बन कर करनी करके समस्त कर्मों को काट कर मोक्ष प्राप्त किया।

(षष्ठम अध्ययन)

षष्ठम अध्ययन के भाव दर्शाते हुए भगवान सुधर्मा स्वामी ने अपने सुशिष्य जंबू स्वामी से फर्माया कि हे जंबू ! उस काल और उस समय में कनकपुर नाम का नगर था। नगर के बाहर श्वेताशोक नाम का उद्यान था। उस बाग में वीरभद्र नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर में प्रियचंद्र नाम का राजा राज्य करता था। उसके सुभद्रा नाम की गुणवती महारानी थी। उनके वैश्रमणनाम का राजकुमार था युवावस्था प्राप्त होने पर राजा ने उसका श्री देवी प्रमुख पांच सौ सुन्दर समान वय वाली कन्याओं से लगन कर दिया।

एक समय भगवान महावीर का वहां आगमन हुआ। भगवान के शुभागमन की सूचना प्राप्त होते ही राजा तथा प्रजा दर्शनों को गए। राजकुमार वैश्रमण भी भगवान के दर्शन करने गया। उसने भगवान के दर्शन किए तथा धर्मोपदेश श्रवण किया। राजा तथा प्रजा के चले जाने पर कुमार ने भगवान महावीर के पास आकर श्रावक के बारह व्रत स्वीकार कर लिए। युवराज श्रावक बनकर अपने घर लौट आया। भगवान गौतम स्वामी को वे प्रिय लगे उन्होंने भगवान से युवराज के प्रिय लगने का कारण पूछा।

भगवान महावीर ने इनके पूर्व जन्म का वृतान्त सुनाते हुए फर्माया कि हे गौतम ! मणिवतिका नाम की नगरी थी। वहां मित्र

नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा ने एक समय सम्भूत नाम के अणगार को हर्षसहित रसोड़े में लाकर अपने हाथों से दान दिया। सुपात्र दान के प्रभाव से उसने संसार परत किया और मनुष्य का आयुष्य बांध लिया। वही मित्र नाम का राजा मृत्यु प्राप्त करके यहां आकर युवराज के रूप में उत्पन्न हुआ है।

भगवान से फिर गौतम स्वामी ने हाथ जोड़कर प्रश्न किया कि हे भगवान ! क्या ये युवराज दीक्षा धारण करेंगे। भगवान महावीर ने फर्माया कि हां गौतम ! ये कालान्तर मे साधु बनेंगे। कुछ दिवस वहां विराजने के पश्चात् भगवान ने अन्य जनपदों के लिए विहार कर दिया।

युवराज विधि सहित अपने बारह व्रतों का पालन करते हुए समय व्यतीत करने लगे। एक समय इन्होंने पौषधशाला में तेला किया। पौषध व्रत में रह कर ये धर्म जागरणा करते हुए विचार करने लगे कि यदि भगवान महावीर विचरण करते हुए यहां पधार जावें तो मै उनके समीप भगवती दीक्षा अंगीकार करलूं।

कालान्तर में ज्ञातृ पुत्र भगवान महावीर युवराज के हृदयगत विचारों को जानकर ग्राम, नगर, पुर, पत्तन आदि जनपदों में बिहार करते हुए पुनः कनकपुर नगर के बाहर श्वेताशोक नाम के उद्यान में विराजमान हुए। भगवान के आगमन की शुभ सूचना प्राप्त कर नगर की जनता भगवान के दर्शनार्थ गई। युवराज वैश्रमण भी अपनी भावना सफल हुई जानकर प्रसन्न मन से भगवान के दर्शनार्थ गया। भगवान की वाणी श्रवण कर उसने भगवान से कहा कि हे भगवान् ! मैं अपने माता पिता से आज्ञा प्राप्त कर आपकी सेवा में साधू बनूंगा। आखिरकार अपने माता पिता को रजा मन्द कर देव भगवान महावीर स्वामी के पास दीक्षित होगए। दीक्षा लेने के पश्चात् इन्होंने स्थविर मुनिराजों की सेवा में रह कर ग्यारह अंगों का

अध्ययन किया। इसके बाद वे तपस्या में लीन होगए। अपना शरीर क्षीण होता हुआ देख इन्होंने भगवान की आज्ञा से संथारा ग्रहण किया। एक मास की संलेषणा प्राप्त कर वे समस्त कर्मों को काटकर मोक्ष में चले गए।

(सप्तम् अध्ययन)

अब सप्तम् अध्ययन के बारे में प्रश्न किये जाने पर भगवान् सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जंबू स्वामी से फर्माया कि हे जंबू ! उस काल और उस समय में महापुर नाम का नगर था। उस नगर के बाहर रातशोक नाम का उद्यान था। उस उद्यान में रक्तपाड नाम के यक्ष का यक्षायतन था। वहां बलराम नाम का,राजा राज्य करता था। उसके सुभद्रा नाम की महारानी थी। महारानी ने कालान्तर में महाबल नाम के राजकुमार को जन्म दिया। युवावस्था प्राप्त होने पर राजा ने महाबल कुमार का रक्तवती प्रमुख पांच सौ कन्याओं के साथ लग्न कर दिया। युवराज अपनी पांच सौ वधुओं के साथ मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

कालान्तर में वहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का शुभागमन हुआ। वे नगर बाहर रातशोक उद्यान में आकर विराजमान हुए। भगवान के आगमन की सूचना पाते ही नगर के नर-नारियों का समूह भगवान के दर्शनार्थ गया। महाबल कुमार भी भगवान के दर्शन करने गया। उसने वहां जाकर भगवान के दर्शन किए तथा उपदेश श्रवण किया। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात राजा तथा प्रजा व्रत-प्रत्याख्यान लेकर अपने-अपने घर लौट आए। राजकुमार महाबल भगवान के समीप आया और श्रावक के बारह व्रत धारण किए। वह श्रावक बन कर घर लौट आया।

भगवान गौतम स्वामी ने महाबल कुमार को जाते हुए देखा तो वे भगवान् के समीप आए और इनके पूर्व जन्म के सम्बन्ध में प्रश्न किया। तब भगवान ने फर्माया कि हे गौतम! मणिपुर नाम का नगर था। वहां नागदत्त नाम का गाथा पति रहता था। उसने एक समय इन्द्रदत्त नाम के मुनिराज को भाव सहित अपने हाथों से दान दिया। सुपात्र दान के प्रभाव से उसने संसार परत किया और मनुष्य का आयुष्य बन्ध किया। वह कालान्तर में काल धर्म को प्राप्त कर यहां महाबल कुमार के रूप में उत्पन्न हुआ है।

पुनः प्रश्न किए जाने पर कि क्या भगवन्! ये भविष्य में दीक्षा अङ्गीकार करेंगे? तब भगवान महावीर ने उनके प्रश्न के समाधान में हकारात्मक उत्तर प्रदान करते हुए कहा कि हां गौतम! ये भविष्य में दीक्षा अगीकार करेंगे। कुछ दिन बाद भगवान ने वहां से अन्य जनपदों के लिए विहार कर दिया।

महाबल कुमार अपने व्रतों की आराधना में लीन हो गये। इन्होंने भी तेला किया और पौषध व्रत में जागरणा करते हुए उन्नत विचार किया कि यदि भगवान महावीर विचरण करते हुए यहां पधार जावें तो मैं समस्त सांसारिक झंझटों से मुक्त होकर भगवती दीक्षा अगीकार कर लूं।

भगवान महावीर ने इनके शुभ विचार अपने ज्ञान से जाने और विहार करते हुए पुनः वहां पधार गए। नगर की जनता भगवान के दर्शन करने को गई। महाबल कुमार भी अपनी भावना को साकार रूप में होते हुए जानकर भगवान के दर्शनार्थ गया। भगवान की वाणी सुनकर उसने भगवान के समक्ष साधु बनने की भावना जाहिर की। भगवान ने फर्माया कि "अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबद्धं करेह" अर्थात् तुम्हें जैसा सुख उपजे वैसा करो परन्तु शुभ कार्य करने में प्रमाद मत करो। कुमार भगवान को वन्दन नमस्कार

करके घर लौट आया और माता पिता की आज्ञा लेकर भगवान के समीप दीक्षित होगया। दीक्षित होने के पश्चात् उन्होंने ऐसी करनी की कि उसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लिया।

(अष्टम अध्ययन)

अब अष्टम अध्ययन के भाव दर्शाते हुए भगवान सुधर्मा स्वामी अपने सुशिष्य जंबू स्वामी से फर्माते हैं कि हे जंबू ! सुघोष नाम का उस काल और उस समय में नगर था। उस नगर के बाहर देवरमण नाम का उद्यान था। उस उद्यान में वीरसेन नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर में अर्जुन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रक्तावती नाम की महारानी थी। उस महारानी ने भद्रनंदी नामक राजकुमार को उत्पन्न किया। कुमार की युवावस्था आने पर राजा ने उसका श्री देवी प्रमुख पांच सौ सुशील एवं सौम्य कन्याओं के साथ पाणिग्रहण करवा दिया। कुमार आनन्द पूर्वक मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए समय व्यतीत करने लगा।

कालान्तर में श्रवण भगवन्त महावीर स्वामी का उस नगर के बाहर देवरमण नाम के उद्यान में पधारना हुआ। भगवान महावीर के शुभागमन की खबर मिलते ही राजा तथा प्रजा दर्शनार्थ गए। कुमार भद्रनंदी भी भगवान् के दर्शनों को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर गया। उसने भगवान् के दर्शन किए और भगवान की वाणी सुनी। कुमार ने धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् भगवान से श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किए। एक श्रावक के रूप में वह अपने घर लौट आया और अपने नियमों का पूर्णतया पालन करते हुए समय व्यतीत करने लगा।

भद्रनंदी कुमार को जाते हुए देखकर गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से उनके इतने समृद्धिशाली एवं प्रियकारी होने का पूर्व जन्म के सम्बन्ध में हाल पूछा। तब भगवान महावीर ने उनके पूर्व

जन्म के सम्बन्ध में फर्माया कि हे गौतम ! उस काल और उस समय में महाघोष नाम का नगर था। वहां धर्मघोष नाम का गृहस्थपति निवास करता था। एक समय उस गाथापति ने धर्मसिंह नामक अणगार को अपने हाथों से हर्षित मन से प्रतिलाभ दिया। सुपात्र दान के प्रभाव से उसने संसार परत किया और मनुष्य का आयुष्य बांध लिया। कालान्तर में आयुष्य पूर्ण करके वही गाथापति यहां आकर भद्रनंदी कुमार के रूप मे उत्पन्न हुआ है।

पुनः गौतम स्वामी द्वारा प्रश्न किए जाने पर कि क्या भगवन् ! ये भविष्य में भगवती दीक्षा ग्रहण करेंगे ? तब भगवान ने फर्माया कि हां गौतम ! ये भविष्य में दीक्षा ग्रहण करेंगे। भगवान महावीर ने वहां कुछ दिवस और भव्य प्राणियों को धर्मोपदेश देकर अन्य जनपदों के लिए विहार कर दिया।

राजकुमार भद्रनन्दी अब श्रावक के रूप में अपना जीवन व्यतीत करने लगा। एक समय उसने पौषधशाला में जाकर तेला किया पौषध व्रत में धर्म जागरणा करते हुए रात्रि व्यतीत करने लगा। उसने धर्म जागरणा करते हुए विचार किया कि एक बार पुनः यदि भगवान महावीर यहां पधार जावें तो मैं उनके पास साधु व्रत अंगीकार कर लूं।

भगवान महावीर ने उसके उच्च भावों को जान लिए। कालान्तर में भगवान महावीर पुनः वहां पधारे और नगर के बाहर उद्यान में विराजे। भगवान के पधारने की खुश खबरी प्राप्त करते ही नगर की जनता तथा राजा भगवान के दर्शन करने गये। भद्रनन्दी कुमार भी अपनी आशा को सफल होती हुई जान कर प्रसन्न मन से भगवान के दर्शन करने गया। उसने भगवान के दर्शन किए और धर्मोपदेश श्रवण किया। धर्मोपदेश समाप्त हो जाने पर राजा तथा प्रजा

अपने नगर को लौट आए। परन्तु भद्रनन्दी कुमार ने भगवान की सेवा में पहुँच कर अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। भगवान ने भी फर्माया कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करने में प्रमाद मत करो। भद्रनन्दी कुमार घर आया और अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर भगवान के पास दीक्षा धारण कर ली।

दीक्षोपरान्त उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। तपस्या द्वारा जब उसका शरीर दुर्बल हो गया तो भगवान की आज्ञा से संथारा ग्रहण कर लिया। एक मास की संलेषणा प्राप्त कर समस्त कर्मों को काट कर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

(नवम् अध्ययन)

इसी प्रकार सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जंबू स्वामी से सुख विपाक सूत्र के नवमें अध्ययन के भाव दर्शाते हुए फर्माते हैं कि हे जंबू! उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी। नगरी के बाहर पूर्ण भद्र नाम का उद्यान था। उस उद्यान में पूर्णभद्र नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर में दत्त नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा प्रजा पालक था। उसके रक्तवती देवी नाम की महारानी थी। रानी ने समय पाकर महच्चंद्र नाम के युवराज को जन्म दिया। युवावस्था आने पर राजा ने युवराज का श्री कान्ता प्रमुख पांच सौ कन्याओं के साथ लग्न कर दिया। राजा के द्वारा बनवाये गए पांच सौ प्रासादों में उन नव परिणीता वधुओं को उनके साथ आए हुए दहेज के साथ भिजवा दिया गया। कुमार अब महच्चन्द्र आनन्द पूर्वक भोग भोगते हुए अपना समय व्यतीत करने लगा।

कालान्तर में श्रमण भगवान महावीर स्वामी का शिष्य मंडली सहित वहां पधारना हुआ। वे नगर के बाहर पूर्णभद्र नाम के उद्यान में

आकर विराजमान हुए। भगवान के दर्शनार्थ नगर की जनता गई। युवराज महच्चंद्र भी सुसज्जित होकर भगवान महावीर के दर्शनार्थ गया। भगवान के दर्शन करके उसने भगवान का धर्मोपदेश श्रवण किया। उपदेश सुनकर जनता तथा राजा अपने नगर को लौट आए। परन्तु कुमार भगवान के समीप आया और भगवान के गुणों की प्रशंसा करके कहने लगा कि भगवन्! अभी मैं सम्पूर्ण रूप से तो आरंभ परिग्रह का परित्याग नहीं कर सकता हूँ। कृपया मुझे श्रावक के बारह व्रत ग्रहण करवा दीजिये। भगवान महावीर ने उसे श्रावक के बारह व्रत ग्रहण करवा दिये। कुमार भगवान को वन्दन नमस्कार करके अपने घर लौट आया और धर्माराधना में लीन होकर जीवन व्यतीत करने लगा।

इधर युवराज महच्चंद्र को जाते हुए भगवान गौतम स्वामी ने देखा। वे इन्हें प्रियकारी लगे। गौतम स्वामी अपने स्थान से उठकर भगवान के समीप आए और हाथ जोड़ कर कहने लगे कि भगवन्! युवराज महच्चंद्र सबको तो प्रिय लगते ही हैं परन्तु साधुओं को भी प्रिय लग रहे है अतः कृपया बताइये कि इन्होंने पूर्व जन्म में क्या करनी की? क्या भोगवा और क्या दान दिया है जिससे ये इतनी ऋद्धि को प्राप्त हुए हैं? तब भगवान ने उत्तर देते हुए इनके पूर्वजन्म के सम्बन्ध में कहा कि हे गौतम उस काल और उस समय में विगिच्छा नाम की नगरी थी। वहां जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा ने एक समय धर्मवीर्य नाम के अणगार को अपने रसोडे में लेजाकर भावना सहित दान दिया। उस सुपात्र दान के प्रभाव से उसने संसार परत किया और मनुष्य का आयुष्य बांध लिया। वही जितशत्रु राजा समय पर राज करके यहां युवराज महच्चन्द्र के रूप में दृष्टिगोचर होरहा है।

पुन गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया कि हे भगवान! क्या ये कालान्तर में साधु बनेंगे? तब भगवान ने फर्माया कि हे

गौतम ! ये भविष्य में साधु बनेंगे। कुछ दिवस ठहर कर भगवान महावीर शिष्यों सहित विहार कर गए।

इधर एक समय युवराज महच्चन्द्र पौषधशाला मे तेला करके पौषध व्रत में धर्म जागरण करते हुए विचार करने लगे कि यदि भगवान महावीर कालान्तर में यहां पधार जावें तो मैं उनके समीप दीक्षा धारण करलूं।

भगवान महावीर ने अपने केवलज्ञान से युवराज महच्चन्द्र के उच्च भावों को जान लिए। वे पुनः जनपदों में धर्मोपदेश देते हुए उस नगर में पधारे और पूर्णभद्र नाम के उद्यान में विराजमान हुए। भगवान के शुभागमन के शुभ समाचार नगर मे बिजली की तरह फैल गए। नगर की जनता तथा प्रजा भगवान के दर्शन करने को गए। युवराज भी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपनी भावना की सफलता में दर्शन करने को गया। उसने भगवान के दर्शन कर अमूल्य धर्मोपदेश श्रवण किया। उपदेश सुनकर वह वैराग्य भाव में सराबोर हो गया। नगर को जनता के चले जाने पर उसने भगवान के पास जाकर आरंभ समारंभ से पूर्णतया निवृत्त होने की इच्छा प्रगट की। भगवान ने भी फर्माया कि हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख उपजे वैसा करने में प्रमाद मत करो। युवराज भगवान को वन्दन-नमस्कार करके घर लौट आया। अपने माता पिता की आज्ञा लेकर वह भगवान के पास दीक्षित हो गया।

दीक्षित होने के पश्चात उसने भी स्थविर मुनिराजों की सेवा मे रहकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। इसके पश्चात् वे तपस्या में लीन होगए। जब शरीर अशक्त होगया तो उसने भगवान महावीर की आज्ञा से संथारा ग्रहण कर लिया। एक मास की संलेषणा प्राप्त कर उसने समस्त कर्मों को जड़-मूल से काटकर पंचम गति मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

(दशम अध्ययन)

अब सुख-विपाक-सूत्र के दसवें अध्ययन के भाव दर्शाते हुए भगवान सुधर्मा स्वामी ने अपने सुशिष्य जंबू स्वामी से फर्माया कि हे जंबू ! उस काल और उस समय में साकेत नाम का नगर था। वहां नगरके बाहर उत्तर कुरु नाम का उद्यान था। उसमें पासामिढ नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर के राजा का नाम मित्रनंदी था। उस राजा के श्रीकांता नाम की महारानी थी। रानी ने यथा समय वरदत्त नाम के राजकुमार को प्रसव दिया। जब राजकुमार यौवन अवस्था को प्राप्त होगया तो राजा ने उसका विवाह वीरसेना प्रमुख पाच सौ सुयोग्य, सुशील, सुन्दर एवं समानवयस्क कन्याओं के साथ लग्न कर दिया। अब राजकुमार वरदत्त आनन्द पूर्वक मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए समय व्यतीत करने लगा।

कालान्तर में उस नगर के बाहर उत्तर कुरु उद्यान मे श्रवण भगवान महावीर स्वामी का पधारना हुआ। भगवान के शुभागमन के शुभ समाचार प्राप्त होते ही नगर की जनता एक विशाल समूह मे भगवान के दर्शन एवं वाणी श्रवण करने गई। राजकुमार वरदत्त भी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर भगवान के दर्शन करने को गया उसने वहां पहुँच कर भगवान के दर्शन किए तथा वन्दन नमस्कार करके परिषदा में धर्मोपदेश श्रवण करने बैठ गया। उपदेश सुनकर नगर की समस्त जनता एवं राजा भगवान को वंदन करके अपने स्थान को लौट गए। परन्तु राजकुमार वरदत्त ने भगवान महावीर की सेवा में उपस्थित होकर श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये। इसके बाद कुमार भगवान को सविधि वन्दन नमस्कार करके अपने जीवन को वंदनकर लौट आया। वह अब श्रावक के नियमों का भलिभांति पालन करते हुए धर्माराधना में संलग्न होगया।

इधर राजकुमार को देखकर भगवान गौतम स्वामी ने अपने भगवान महावीर स्वामी की सेवा में आकर विनय सहित प्रश्न किया कि हे भगवन ! राजकुमार वरदत्त अपने माता-पिता तथा प्रजा को प्रियकारी लगते ही हैं परन्तु हम साधुओं को भी वल्लभ लगते हैं अतः कृपया बताइये कि इन्होंने पूर्व जन्म में क्या आचरण किया ? क्या दिया है ? और क्या भोगवा है ? जिसके प्रभाव से इन्हें इतनी ऋद्धि प्राप्त हुई है।

तब भगवान ने अपने शिष्य गौतम स्वामी के प्रश्न के समाधान में कहा कि हे गौतम ! उस काल और उस समय में शतद्वार नाम का नगर था। वहां विमल वाहन नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा ने एक समय धर्म रुचि अणगार को अपने हाथों से भक्ति सहित दान दिया। उस सुपात्र दान के फल स्वरूप उसने संसार परत किया, और मनुष्य का आयुष्य बांध कर यहां आकर राजकुमार के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है।

पुनः भगवान गौतम स्वामी ने भगवान महावीर स्वामी से प्रश्न किया कि हे भगवन ! क्या ये भविष्य में साधु बनेंगे ? तब भगवान ने फर्माया कि हे गौतम ! ये भविष्य मे साधु बनेंगे। इस प्रकार भगवान कुछ दिन और वहां ठहर कर अन्य जनपदों के लिये विहार कर गये।

एक समय राजकुमार वरदत्त ने श्रावक के नियमों का पालन करते हुए पौषधशाला में आकर षष्ठमतप की आराधना की। उन्होंने पौषध व्रत में रहकर रात्रि में धर्म जागरणा करते हुए विचार किया कि यदि कालान्तर में भगवान महावीर स्वामी ग्राम, नगर, पुर, पत्तन आदि जनपदों में विचरण करते हुए यहां पधार जावें तो मैं उनकी सेवा में भगवती दीक्षा अंगीकार कर लूं।

भगवान महावीर ने उनकी भावना को अपने केवल ज्ञान से जान लिया। वे अन्य जनपदों में धर्मोपदेश देते हुए कुछ समय बाद

पुनः पधारे और उत्तर कुरु उद्यान में विराजमान हुए। भगवान के पदार्पण का शुभ संवाद जानकर नगर की जनता तथा राजा भगवान के दर्शनों को गए। राजकुमार वरदत्त भी प्रसन्न होता हुआ भगवान के दर्शनार्थ गया। उसने भगवान की वाणी श्रवण की। उपदेश सुनकर उसे वैराग्य आगया। जब सब नर नारी भगवान को वन्दन नमस्कार करके चले गए तब राजकुमार वरदत्त भगवान की सेवा में उपस्थित हुआ और भगवान से हाथ जोड़ कर कहने लगा कि भगवन मैं माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर आपके समीप भगवती दीक्षा अङ्गीकार करना चाहता हूँ। भगवान महावीर ने भी फर्माया कि देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हे सुख उत्पन्न होवे वैसा करने में किंचित भी प्रमाद मत करो।

राजकुमार वरदत्त भगवान को वन्दन नमस्कार करके घर लौट गया। घर आकर उसने अपने माता पिता के समक्ष भगवान के पास दीक्षित होने के भाव प्रदर्शित किए। येन केन प्रकारेण अपने माता पिता की आज्ञा प्राप्त करके उसने भगवान महावीर के पास खूब धूम-धाम से दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा लेने के पश्चात उसने तथागत स्थविरों की सेवा में रह कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तत्पश्चात वह तपाराधना में लीन होगया। जब तपस्या के द्वारा उसका शरीर जर्जरित होगया तो एक दिन भगवान की आज्ञा से यावज्जीवन के अनशन व्रत अंगीकार कर लिया। एक महिने की सलेषणा प्राप्त करके यथा समय कालधर्म को प्राप्त करके प्रथम देवलोक में देवपणे उत्पन्न हुआ। फिर वहां से च्यव कर तथा मनुष्य जन्म धारण करके तीसरे देवलोक में जायेंगे। वे पुनः वहां से च्यव कर मनुष्य जन्म को धारण करके तथा उच्च करनी करके पंचम देव लोक में जाकर देवपणे उत्पन्न होंगे। वहां से पुनः च्यव कर, मनुष्य जन्म धारण करके तथा करनी करके सातवें देव लोक में जाकर उत्पन्न

होंगे। फिर सप्तम देवलोक से च्यव कर, मनुष्य जन्म धारण करके, साधु बनकर तथा उच्च करनी करके नवमें देवलोक में जाकर देवता बनेंगे। वहां से भी यथा समय च्यव कर और मनुष्य जन्म धारण करके ग्यारहवें देवलोक में जाकर उत्पन्न होंगे। इसके पश्चात् वहां से च्यव कर, मनुष्य बन कर और करनी करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में जाकर तैंतीस सागर की स्थिति वाले देव बनेंगे। वहां से आयुष्य पूर्ण करके यथा समय महाविदेह क्षेत्र में जाकर भरे भण्डार में वीर-दत्त कुमार की आत्मा जन्म लेगी। इनके जन्म लेते ही जो इनके माता-पिता धर्म करनी करने में शिथिल हो रहे थे वे धर्म में दृढ़ हो जाएंगे। इसलिये वहां इनका नाम दृढ़पइण्णे रखा जाएगा। वे पांच धायों की संरक्षता में बड़े होंगे। जब आठ वर्ष की अवस्था में आएंगे तो इन्हें कलाचार्य के पास अध्ययन करने भेजा जाएगा। ये सोलह वर्ष की आयु में ७२ कलाओं में प्रवीण हो जायेंगे। फिर इनकी परीक्षा ली जाएगी जिसमें ये उत्तीर्ण होंगे। इनके पिता कलाचार्य को काफी धन देकर संतुष्ट करेंगे। जब ये युवावस्था को प्राप्त होंगे तो इनका सुन्दर, सुशील एवं समवयस्क कन्या से विवाह होगा। इस प्रकार गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश कर आनन्द पूर्वक सांसारिक सुखो-पभोग करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे। एक समय इन्हें निर्ग्रन्थ मुनिराज का संयोग प्राप्त होगा। मुनिराज के उपदेश को सुनकर इन्हें संसार से विरक्ति होगी। अपने माता पिता से आज्ञा प्राप्त कर ये साधु बन जाएंगे। साधु बनकर ये ऐसी उत्कृष्ट करनी करेंगे कि ये सीझेंगे, बूझेंगे, कषायों का शमन कर देंगे और केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त कर परिनिर्वाण पद को प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार भगवान सुधर्मा स्वामी ने अपने सुशिष्य जंबू स्वामी को सुख विपाक सूत्र के दसों ही अध्ययन फर्मा दिये। पुनः प्रश्न किये जाने पर दुःख विपाक सूत्र के भी दस अध्ययनों के भाव

फर्मायेंगे जो आगे श्रवण करने से ज्ञात होगा। भगवान ने यह भी स्पष्ट रूप से बता दिया कि यदि विपाक-सूत्र के सुख और दुख रूप बीसों अध्ययनों की शिष्य को वाचना कराती हो तो ग्यारह-ग्यारह दिनों में ही करा देनी चाहिए। शेष अधिकार आचारांग-सूत्र की तरह समझना चाहिए।

उक्त सुख-विपाक-सूत्र के दसों अध्ययनो के निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि हे भव्यात्माओं! यदि आप भी आत्मोत्थान करना चाहते हो और मुक्तावस्था को प्राप्त करना चाहते हो तो जीवन मे सुपात्र दान देने की भावना रखो। सुपात्र का योग मिलने पर भक्ति पूर्वक दान दो। जैसे उक्त दसों हो राजा, राजकुमार, युवराज था सेठो ने अपने यहां पधारे हुए मुनिराजों को भावना सहित दान दिया और संसार परत करके साधु बन कर मोक्ष प्राप्त किया उसी तरह आप लोग भी यदि दान भावना रखेंगे तो एक दिन वह भी सुनहरा सूर्य उदित होगा जब कि आप भी समस्त कर्मों को काट कर मोक्ष पद को प्राप्त कर लेंगे। परन्तु यह याद रखें कि बिना दिए जीवन में कुछ भी होने वाला नहीं है। अरे! जीवन में देना तो स्वल्प है परन्तु उस दान वृक्ष का विस्तार भविष्य में बट वृक्ष की तरह हो जाता है। एक गुना देकर भी अनेक गुना फल की प्राप्ति होती है। दान के द्वारा ही उन महापुरुषों ने मोक्ष रूपी महल की नींव बांध ली। नीतिकार का भी कहना है कि—

देना है सो पाता है बस दिया लिया रह जाता है।
जो मुट्ठी बांधे आता है, वह हाथ पसारे जाता है॥

तो हमारा तो आप लोगों से आग्रह पूर्वक कहना है कि यदि आप लोग सुख प्राप्त करने के इच्छुक हो तो सुख प्राप्त करने का अभी से प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दो। क्योंकि भाई! सुख का साम्राज्य तो

तभी प्राप्त होगा जब कि उसके अनुरुप प्रयत्न करोगे ! यह कभी नहीं हो सकता कि सुख के अभिलाषी तो बनना चाहो और सुख प्राप्ति के प्रयत्न न करो। इसलिए सुख तभी मिलेगा जबकि आप भी अपने हाथों से दान दोगे। यदि मन को उदार बना कर दे दिया तो फिर भविष्य में लीला लहर है। क्योंकि जो खेत में मुट्ठी भर अनाज के दाने बो देता है वही फसल पकने पर अनेक गुणा अनाज गाडियों में भर कर लाता है। भाई ! जब यह जीवात्मा कर्मवशात् माता के गर्भ में आता है तब मुट्ठी बांधे हुए आता है। परन्तु जब इस क्षण भंगुर संसार से आयुष्य पूर्ण करके परलोक सिधारता है तो वह दोनों हाथ पसारे हुए जाता है। इसीलिए महापुरुष चेतावनी देते हुए कहते हैं कि भाई ! जिस प्रकार संसार मे मुट्ठी बांधे हुए आए हो वैसे ही यहां जीवन कुछ सुपात्र दान देकर पुनः यहां से मुट्ठी बांधे ही पर-लोक के लिए प्रस्थान करो। भाव भक्ति सहित एक बार भी दिया हुआ दान तुम्हें इस संसार के आवागमन से मुक्त करा देगा। यहां से साथ में खर्ची लेकर जाओगे तो आगे भी आनन्द का उपभोग करोगे।

भगवान् ऋषभ भवन्तरी

भगवान ऋषभदेव के पूर्वभवों का चरित्र यहां सुनाया जारहा है आपको मालूम होना चाहिए कि भगवान ऋषभदेव का जीव भी भगवान कैसे बना ? भगवान ऋषभदेव के जीव ने भी अपने पूर्व भवों में सुपात्र दान दिया था और उसके फल स्वरूप वे तीर्थंकर पद को प्राप्त हुए। आप भी यदि उसी उच्च स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं तो वह पद भी दातार बने बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

भगवान ऋषभदेव अपने पूर्व जन्म के नवमें भव में जीवानन्द वैद्य के रूप में थे। वे अपने पांचो मित्रों के साथ आनन्द पूर्वक जीवन

व्यतीत कर रहे थे। किंतु यदि मानव के लंबे जीवन में कभी भविष्य में उपकार करने का सुप्रसंग प्राप्त हो जाय और उससे लाभ उठा लिया जाय तो यह आत्मा तीर्थंङ्कर पद की अधिकारिणी भी बन जाती है।

तो वे छः ही मित्र बड़े जिगरी दोस्त थे। एक दूसरे के सुख दुख में सहायता करने वाले थे। उनके हृदयों मे परोपकार वृत्ति कूट कूट कर भरी हुई थी।

एक समय वे छः हो मित्र शान्त वातावरण में बैठे हुए प्रेम सहित वार्तालाप कर रहे थे। उसी समय उनकी दृष्टि अकस्मात् अपने से कुछ दूरी पर एक वृक्ष की छाया में बैठे हुए एक तपस्वी मुनिराज पर पड़ी। वे मुनिराज किसी समय एक देश के राजा थे। परन्तु संसार से विरक्त होकर निर्ग्रन्थ बन गए थे। उन्होंने तपस्या द्वारा अपने शरीर को कृष बना लिया था। और साथ ही कई रोगों के शिकार भी बन गए थे। भाई! यह पार्थिव शरीर रोगों का घर है। इस शरीर की साढे तीन करोड़ रोमावलियों में से एक एक रोम में पौने दो-दो रोग भरे पड़े हैं। जब तक शरीर में शातावेदनीय कर्म का उदय रहता है तब तक यह शरीर निरोग रूप में दृष्टिगोचर होता है परन्तु दूसरे ही क्षण जब अशातावेदनीय का उदय होजाता है तो इसी शरीर में से नाना प्रकार के रोग प्रकट हो जाते है। उन रोगों के प्रकट होने में कुछ भी देरी नहीं लगती। तो उन महात्मा के शरीर में भी अनेक व्याधियां उत्पन्न हो गई थी। यहां तक कि शरीर में कीड़े भी पड़ गए थे। इससे उनके चित्त की शांति भग हो रही थी।

जब उन छः ही मित्रों की दृष्टि उन शान्त तपोधनी की तरफ पड़ी तो उनके हृदय में दया का सागर हिलोरें मारने लगा। वे उन महात्मा की सेवा में पहुँचे तो उन्हें महात्मा के शरीर पर कीड़े नजर

आये। उनकी यह दयनीय दशा देखकर उन छः हों के दिलों में करुणा उत्पन्न हो गई। भाई, जहां मानवता होती है तो उसका लक्षण यही है कि किसी भी दुःखी को देख कर तत्क्षण करुणा उत्पन्न हो जाय। जहां मानवता नहीं होती और दिल में कठोरता होती है तो वहां दया का उद्रेक नहीं होता। अरे! श्रावकत्व और साधुत्व तो बहुत दूर की बात हैं। परन्तु पहिले तो मानव मे मानवता आनी चाहिये। मानवता आने पर ही श्रावकत्व और साधुत्व गुण आते हैं।

तो उन छः ही मित्रों के हृदय में करुणा उत्पन्न हो गई। जब करुणा सही मायने में उत्पन्न हो जाती है तो वहां दुख दूर करने का प्रयत्न भी प्रारम्भ हो जाता है। आप लोग 'मेरी भावना' मे भी प्रतिदिन बोलते ही हैं कि:—

दीन दुखी को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥

अर्थात् दुखी मनुष्य को देख कर हमारा कर्तव्य है कि हमारे हृदय में प्रेम आना चाहिये। जब उस दुखी के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाय तो उसको सब प्रकार स्वस्थ बनाकर दिल में सुख शांति प्राप्त होनी चाहिये।

तो मानव का कर्तव्य होने के नाते जब उन छः ही मित्रों के हृदयों में करुणा उत्पन्न होगई तो वे पांचों मित्र जीवानन्द वैद्य से बोले कि मित्र! तुम बड़े लोभी मालुम होते हो कि इस दुखित हालत में देख कर भी तुम उपचार करने की ओर विचार नहीं कर रहे हो। अरे! मालदारों की बीमारी का उपचार तो हमेशा ही करते हो किंतु निस्वार्थ भावना से एक निर्ग्रन्थ मुनिराज को आरोग्य लाभ देने के बराबर धर्म भी नहीं हो सकता। और ऐसी हालत में मुनिराज को देखते हुए भी तुम लोभ में फसे हुए हो। सच है, कहा भी है कि:—

मालदार से दिलचस्पी, निर्धन से मेल नहीं रखते ।
विचारहीन धन के लोभीं, दवा नहीं वे कर सकते ॥

स्व० जैन दिवाकरजी महाराज ने भी उक्त कविता में स्पष्ट कह दिया है कि आज के डाक्टर, वैद्य या हकीम यदि उनके पास कोई मालदार व्यक्ति आजाता है तो वे उसके साथ फौरन रवाना हो जाते हैं और यदि कोई निर्धन व्यक्ति मरणशैया पर ही क्यों न पड़ा हो परन्तु वे कह देते हैं कि अभी मुझे फुर्सत नहीं है। इन धन के लोभी डाक्टरों के हृदय से दया भी भाग जाती है। वह धन की लोलुपता उन्हें अपने कर्तव्य से भी च्युत करा देती है। जिसमें निर्लोभता होती है वही सच्चे हृदय से तथा समान भाव से ससार की सेवा कर सकता है।

तो वे पांचों भी अपने मित्र से कहते है कि जीवानन्द ! तुम्हें जिस मालदार से प्रचुर मात्रा में धन मिलता है वहां तो फौरन दौड़े-दौड़े चले जाते हो। और आज जब नेत्रो के सामने मुनिराज असाध्य बीमारी से कष्ट पा रहे हैं तो तुम्हारे मुंह से एक भी शब्द नहीं निकल रहा है और आज तुम इनकी तरफ टुकर-टुकर देख रहे हो। क्या इसीलिए तुमने यह मानव जीवन पाया है ? तो वे पांचों मित्र कभी मीठे और कभी कड़वे शब्दों से भी अपने मित्र को सम्बोधन करके कह रहे हैं। जिसके हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ पड़ता है तो वह उस आवेश में आकर मीठे और कड़वे शब्दो का प्रयोग भो करने लगता है।

तो उन्होंने अपने मित्र से कहा कि मित्र ! यदि तुमने मनुष्य का जीवन प्राप्त कर भी शुभ काम नहीं किया तो इसे प्राप्त करना भी व्यर्थ हो रहा। इस मानव जीवन के सम्बन्ध में भाव दर्शाते हुए कहा है कि:—

मनुष्य का भव पाय के, शुभ काम तेने क्या किया ?
अपने या पर के लिए, शुभ काम तेने क्या किया ? टेक ॥

नाम वर जीमन किया, दुनिया में वां वां हो रही।
फूला फिरे मगरूर में, शुभ काम तेने क्या किया ॥ १ ॥

कवि कह रहा है कि ऐ मानव ! तूने 'यदि मनुष्य का शरीर पाकर भी अपना या दूसरे का परोपकार नहीं किया तो तेरा मानव जीवन पाना निरर्थक ही साबित हुआ। इस प्रकार का यदि उपदेश मुनिराजों द्वारा दिया जाता है तो कई मनचले महाराज को निर्भयता के साथ उत्तर देते हुए कहते हैं कि महाराज ! आपको मालूम नहीं कि मेरे बाप जब मर गए तो मैंने उनके मर जाने के बाद अपने माता पिता के नाम पर मौसर किया और सारी बिरादरी को पांच पकवान जिमाए। और यहीं नहीं परन्तु मैंने बेटी के विवाह में खुले दिल से सारी न्यात को जिमाया जिसकी तारीफ में लोग आजतक कहते हैं कि ओहो ! क्या गजब की मिठाइएं बनीं थी ! और क्या गजब की नमकीन कचौरी, पकोड़िएं बनीं थी कि आजतक याद आरही है। महाराज ! मैंने इतना सब कुछ किया परन्तु फिर भी आप कह रहे हैं कि मनुष्य का जीवन पाकर क्या किया ! परन्तु महाराज ने उसकी अभिमान पूर्ण वाणी को सुनकर कहा कि भाई ! अपने नाम के खातिर दूसरों को खिलाना अपना हित या परोपकार नहीं कहलाता। परन्तु स्व या पर का हित करना वही कहलाता है कि जिससे अपनी आत्मा का या दूसरे दुखियों की आत्मा का कल्याण हो। अपने नाम की खातिर खिलाने-पिलाने से ही अपने जीवन का ध्येय सफल नहीं होता और आत्मा का हित नहीं होजाता। परन्तु दूसरों की निस्वार्थ भावना से ही अपना एवं दूसरे का हित निर्भर है।

भाई ! किसी समय जातिवाद का नाम भी नहीं था। परन्तु जब इस भारतवर्ष में जातिवाद ने जन्म ले लिया तो अपनी अपनी

जाति को सुसंगठित दशा में रखने के अभिप्राय से पूर्वजों ने इस खिलाने-पिलाने को जन्म दे दिया। इससे विवाह शादी में या मृत्यु भोज के रूप में जाति वालों को जिमाने से आपस में प्रेम मोहब्बत बनी रही और दूसरी जाति में जाने से रुक गए। तो यह रिवाज कारणवशात् चल पड़ा था। परन्तु आज इस रिवाज की आवश्यकता नहीं रही और जगह-जगह यह प्रथा बन्द भी होती जारही है। आज तो सरकार भी फिजूल खाद्य सामग्री का उपयोग करने वालों पर सख्ती से नियंत्रण लगा रही है। आज देश की खाद्य समस्या बड़ी जटिल बनी हुई है। कुदरत भी बराबर साथ नहीं दे रही है। भारतवासियों के लिए सरकार को विदेशों से हजारों टन खाद्य सामग्री मंगानी पड़ रही है। ऐसी विकट परिस्थिति में अपने झूठे नाम और शान के लिए पैसे वाले यदि बिरादरी को पांच सात मिठाइयां खिला कर अन्न की खराबी करते है तो वे इससे अपना और देश का अहित करते हैं। इसलिए प्रत्येक को आज के जमाने में अन्न का दुरुपयोग करने से अपने आपको बचाना चाहिए। और आगे के पद्य में बताते हैं कि किस किस प्रकार आज का मानव अपने धन का दुरुपयोग कर रहा है।

मित्र मिल गौठ करी, वैश्या नचाई बाग में।
माल खा गए मसखरे, शुभ काम तेने क्या किया ॥२॥

हे मानव! मनुष्य जन्म धारण करके भी क्या किया? यही किया न! कि चार पांच मित्र मिल कर बाग में गए और लाल बाग में जाकर तरह तरह के माल उड़ाए। या मित्रों की पार्टी बुला कर उसमें किसी वैश्या का नाच-रंग कराया और प्रसन्न होगए तो अपने बाप-दादा की पसीने की कमाई को उस पर न्यौछावर कर दी। इसके सिवाए किस सुकृत कार्य में पैसा लगाया? परन्तु याद रखना! जो

तू इस नासमझी से अपने बाप-दादा की कमाई को अपनी इन्द्रियों के पोषण में खर्च कर रहा है तो माल उड़ाने के समय तो सौ जने इकट्ठे हो जायेंगे परन्तु जब आपत्ति का समय आएगा या बिल चुकाने का समय सन्निकट आएगा तब कोई भी मित्र पास नहीं फटकेगा और तुझे ही चुकाना पड़ेगा और तुझे ही उस मुसीबत का सामना करना पडेगा। तो अपने मौज-शौक के लिए तो खा लिया या मित्रों को खिला दिया परन्तु जरुरत मन्द को एक पैसा भी शुभ काम मे खर्च नहीं किया गया।

आज के बेरोजगारी के जमाने में जबकि पेट भरने की समस्या बडी विकट होती जारही है और इसके लिए भारत सरकार भी बडी चिन्तित है कि किस प्रकार इस समस्या का हल किया जाय तो ऐसी परिस्थिति में यदि तुमने करुणा लाकर गरीबों को भोजन करा भी दिया परन्तु उससे उनकी समस्या का तो हल नहीं हो जाता। आज यदि तुमने गरीबों का पेट भर भी दिया तो वह दूसरे दिन फिर खाली का खाली है। इसके लिए तो बड़े बड़े अर्थ शास्त्रियों की मांग है कि उन बेरोजगारों और बेकारों को कोई ऐसा धंधा या उद्योग सिखा दो जिससे वे काम से लग जांय और सही तरीके से हमेशा के लिए अपने और अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण कर सकें। अतः तुम्हारे हृदय के किसी कोने में भी करुणा का अंकुर उग गया है तो उन गरीबों को शिक्षित बनाओ और कलाकौशल सिखाने का प्रयत्न करो ताकि वे अपना जीवन-यापन भली प्रकार कर सकें। तुमने यदि इष्ट मित्रों को चाय पार्टी दे दी तो तुम्हारी दृष्टि में तो वह काम अच्छा रहा परन्तु ज्ञानियो की दृष्टि में यह शुभ कार्य नहीं है। फिर आगे कवि आज के मानव की मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए कहता है कि:—

तन से बड़ा, धन से बड़ा, नहिं जाति की रक्षा करी।
प्रेम नहिं सत्संग से, शुभ काम तेने क्या किया ॥२॥

अरे मानव! क्या तूने अपने मनुष्य जन्म धारण करने की सफलता इसी में मानली है कि अपने शरीर को खिला-पिला कर खूब मोटा ताजा बना लिया? क्या तूने झूठ, छल कपट, बेईमानी या धोखेबाजी से अर्थ का संचय कर लिया और लोगों की निगाह में धनवान बन गया? परन्तु याद रखना! इस मोटे-ताजे शरीर बनाने से भी कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होने वाली है। परन्तु जब तू इस दुनिया से प्रयाण करेगा तो तेरी लाश उठानेवालों के कंधे टूटेंगे और वे भी मन में तुझे कोसेंगे कि देखो! खा-खा कर मोटा बन गया और उपकार करने के बदले मरकर भी हम उठाने वालों को बोझ से मारा। इसी प्रकार भले ही धन प्राप्त कर तू लक्षाधिपति या करोड़पति बन गया परन्तु उस धन से दूसरों का उपकार नहीं किया और बड़े विचार नहीं रखे तो वह धन भी किस काम का है। वह तो मिट्टी के ढेले की तरह किसी का उपयोगी नहीं बन सका। तू जिस समाज में जन्मा, बड़ा हुआ और धनवान कहलाया और फिर भी वह धन उस समाज के उपयोग में न आ सका और तुझे कोई पहिचान नहीं सका तो तेरा धनवान होने से और बड़ा कहलाने से क्या हुआ! और यदि जीवन मे सब कुछ सुख-साधन प्राप्त करने के बावजूद भी यदि कभी सत्संग में नहीं गया और साधु पुरुषों की सेवा नहीं की तब भी यह मानव जीवन प्राप्त करना व्यर्थ ही रहा।

एक कवि ने इसी भाव को दर्शाते हुए पुष्टि में कहा है कि:—

बड़े-बड़े रईसों से तूने, मोहब्बत भी कर लीनी रे!
संत मुनि गुणीजन की संगति; पल भर नहिं कीनी रे॥
लाहो लेले रे २ नरभव को टाणो, नीठ मिल्यो छेरे ॥टेर॥

भाई! कई मनुष्य ऐसे भी हैं जो ससार के बड़े-बड़े व्यक्तियों से तो मोहब्बत, गठबन्धन या प्रेम कर लेते हैं परन्तु यदि कभी संत

पुरुषों की सद्वाणी सुनने का प्रसंग आता है तो उसके लिए उनके पास दो घड़ी की भी फुर्सत नहीं मिलती। वे मांसाहारी, शराबी लोगों का स्वागत करते हुए तो फूले नहीं समाते परन्तु रास्ते में यदि त्यागी महापुरुष दिखाई दे जाते हैं तो अपना मुंह फेर लेते हैं। तो ज्ञानी पुरुष चेतावनी देकर कहते हैं कि हे मानव! तुझे यह मानव देह बड़ी अनमोल मिली है और बड़ी मुश्किल से प्राप्त हुई है अतएव इसे व्यर्थ न गंवाकर मनुष्य जन्म प्राप्त करने का लाभ उठा ले। इसी में तेरे मनुष्य जीवन की सार्थकता है कि तू तन से या धन से बड़ा होकर अपने देश, जाति, समाज और राष्ट्र की सेवा कर। यदि तेरी जीवनोपयोगी सामग्री दूसरे जरूरतमन्दों के उपयोग में आती है तब तो वे पदार्थ भी पदार्थ हैं अन्यथा प्राप्त होना नहीं होने के समान ही है। जैसे कोई निर्धन मनुष्य किसी धनवान व्यक्ति के पड़ौस में रहता है और उसे कभी-कभी छाछ का पानी भी मिल जाता है तो वह अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने धनवान पड़ौसी की भी तारीफ करता है कि सेठ हो तो ऐसा हो। मेरा ऐसे सेठ के आश्रय में रहना सार्थक है। परन्तु यदि वह धनवान पड़ौसी के आश्रय में रहते हुए भी किसी आवश्यक पदार्थ की प्राप्ति से वंचित रह जाता है तो वह मन में विचार करता है कि करोड़पति है तो इसकी लुगाई का है परन्तु मैं भी अपने घर का करोड़पति हूँ। इससे मनुष्य को चाहिए कि वह अपने धन और तन का सदुपयोग जरूरतमन्दों के लिए करे। यदि तुमने अपने धनको तिजोरी में बंद करके या जमीन में गाड़ कर ही अपने बड़प्पन की इतिश्री समझ ली और अपने धन का न तो अपने लिए ही और न दूसरों के ही उपयोग में खर्च किया तो वह धन जमनी में गडा-गडा ही सड़ जायगा या दूसरे रूप में नष्ट हो जायगा। यदि दूसरों के उपयोग में कोई चीज आती है तब तो उस चीज का पाना भी सार्थक हुआ अन्यथा उसके रखवाले के रूप में ही साबित होगा। तो स्वयं प्राप्त पदार्थों का लाभ

उठाते हुए दूसरों के दुख निवारण करने में भी काम में लाना ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

आगे कवि और भी संकेत करते हुए कहता है कि—

दिन गमाया खाय के, और निशि गमाई नींद में।
यूं वक्त तेरा सब गया, शुभ काम तेने क्या किया ॥४॥

हे मानव! यह मनुष्य की जिंदगी तो तुझे भवभ्रमण मिटाने के लिए मिली थी परन्तु तू तो इसे पाकर भी भव-भ्रमण बढ़ाने के कार्य कर रहा है। अरे! तूने सारा का सारा दिवस तो तरह-तरह के पदार्थ खाने में व्यतीत कर दिया और अपने शरीर पर चर्बी बढ़ाली और चार प्रहर की रात्रि गहरी निद्रा लेकर पूर्ण करदी। परन्तु उस अनमोल समय में से दो घड़ी भी शुभ काम में या परमात्मा के स्मरण में व्यतीत नहीं की। तब फिर तूने मनुष्य जन्म पाकर क्या शुभ काम किया? इसलिए इस दुर्लभ मानव जीवन की कद्र करो और जीवन के क्षणों में अपना और दूसरों का उपकार करो।

कविवर्य स्व० पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज का तो भव्य प्राणियों से अपने गुरु नंदलालजी के संदेश में यही कहना है कि:—

मेरे गुरु नंदलालजी की, नित्य यही उपदेश है।
विद्वान हो तो समझ ले, शुभ काम तेने क्या किया ॥५॥

सज्जनों! गुरु महाराज का तो हमेशा यही उपदेश रहा है कि हे मानव यदि तू समझदार है और हिताहित का भान रखता है तो इस बात को हृदय में गांठ बांध कर रखले कि तुझे यह मानव-जीवन शुभ कार्य करने के लिए मिला है न कि फिजूल की गप-शप में बिताने के लिए। यदि इस छोटे से जीवन को अमूल्य समझकर

सुअवसर से लाभ उठा लिया तो मामला बन जाएगा अन्यथा हाथ मलते ही रह जाना शेष रह जाएगा। परन्तु फिर पछताने से भी काम बनने वाला नहीं है। एक दृष्टान्तकार दृष्टान्त देते हुए इसी बात की पुष्टि करता है कि:—

एक समय की बात है कि कोई राजा किसी समय शिकार खेलने के लिए चल पड़ा। जब वह बियाबान जंगल में पहुँचा तो रास्ता भूल जाने से घबराने लगा। ग्रीष्म ऋतु का समय था। गर्मी तेज पड़ रही थी। आसपास में कोई जलाशय भी नहीं दिखाई देने के कारण राजा का गला भी प्यास के मारे सूखने लगा। वह व्यथित होकर एक वृक्ष की छाया में आकर बैठ गया। उस बीहड़ बन में कोई मनुष्य भी आता-जाता हुआ दृष्टिगोचर नहीं होने के कारण राजा का भय और भी बढ़ता जा रहा था। परन्तु भाग्यवशात् एक व्यक्ति उधर से आ निकला। उसने राजा के सन्निकट आकर उसकी परेशानी का कारण पूछा। राजा ने सारी घटना कह सुनाई। तब उस व्यक्ति ने मानवता के नाते उस राजा के रूप में एक मानव को दवा लाकर पानी पिलाया और शहर का रास्ता सही रूप में बता दिया।

राजा ने पानी को अमृत समझ कर पिया। जब पानी पीने से राजा के शरीर में चेतना आ गई तो उसने उस दयालु व्यक्ति का आभार माना और एहसान भरे शब्दों में कहा कि महाशय! तूने मुझे ऐसे विकट समय में प्राण-दान दिया है जिसे मैं उम्र भर नहीं भूल सकता। मैं निकटवर्ती शहर का राजा हूँ। मैं तो उम्र भर राज्य करूंगा ही परन्तु मैं तेरी असीम सेवा के बदले तुझे एक चिट्ठी लिख देता हूँ जो तेरे वक्त जरूरत पर काम आएगी।

राजा ने चिट्ठी में लिख दिया कि जब कभी तू मेरे पास आएगा तो तुझे दो पहर का राज्य दे दिया जाएगा। राजा उसे चिट्ठी देकर अपने शहर को चला गया। वह व्यक्ति भी खुश होता हुआ अपने गांव में गया और जो कोई उसे रास्ते में मिला उसे राजा के द्वारा बनाई हुई चिट्ठी बताते हुए अपने घर पहुँचा। जब वह अपने घर पहुंचा तो स्त्री ने उससे देरी से आने का कारण पूछा। उसने अपनी स्त्री को राजा के द्वारा दी हुई चिट्ठी बताते हुए कहा कि भाग्यशालिनी आज मैं बड़ा खुशनसीब हूँ। आज मेरे थोड़े से उपकार करने के बदले राजा सा० ने मुझे दोपहर राज्य करने की चिट्ठी लिखकर देदी है। अब हमारे ये गरीबी के दिन नहीं रहेंगे। मैं केवल दो पहर का राजा बनकर जिंदगी भर का सुखी बन जाऊंगा।

स्त्री ने बहुत कुछ उसके द्वारा प्रशंसात्मक वचन सुनकर कहा कि जब तुम राजा बनोगे तब देखा जायगा। अभी से इतने खुशी के क्यों गीत गा रहे हो। पहिले कुछ खाने पीने की चीजों का इन्तजाम तो करो।

इतनी बात सुनते ही वह व्यक्ति बाजार में गया और कई दूकानों से आवश्यक वस्तुएँ खरीद लाया। स्त्री भी इतनी वस्तुएँ देखकर मन में बड़ी प्रसन्न हुई। दोनों स्त्री-पुरुष ने आनन्द पूर्वक माल बनाकर खाए।

कुछ दिवस व्यतीत होने के बाद जब सभी दुकानदारों के तकाजे आने लगे तो उसकी स्त्री ने कहा कि अब राजा के पास जाकर दो पहर का राज्य लेने का समय आगया है। अतएव तुम राजा के पास जाओ और राज्य प्राप्त कर विपुल धन राशि लेकर आओ ताकि भविष्य में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत हो सके।

वह व्यक्ति चिट्ठी लेकर राज्य सभा में पहुँचा। राजा की सेवा में उसने चिट्ठी पेश की। राजा ने उस चिट्ठी को पढ़ते ही उसे दो पहर का राजा घोषित करके राज्य सिंहासन पर बैठा दिया। राजा ने उसकी सेवा की सबके सामने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

जब वह राजा के रूप के राज्यसिंहासन पर बैठ गया तो राजा अपने महलों में चला गया। उस नवीन बने हुए राजा को सभी राज्य कर्मचारियों ने खड़े होकर अभिवादन किया। यद्यपि उसे इस थोड़े से प्राप्त सुअवसर का लाभ उठाना चाहिए था परन्तु उसने अपने राज्यत्व काल में दूसरों का भला नहीं करके दूसरों का बुरा किया और अपने जीवन को हमेशा के लिए दुखमयी बना लिया। उसने अपने दुखों के बीज अपने हाथों से बोए। उसने सबसे पहले दीवान से पूछा कि तुम्हें क्या वेतन मिलता है ?

दीवान ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया कि हुजुर ! मुझे इतना वेतन मिलता है।

यह सुनते ही राजा ने कहा कि इतना वेतन तो तुम्हारे कार्य को देखते हुए बहुत अधिक है। अतएव आज से तुम्हारे वेतन में से सौ रुपए कम किए जाते हैं। इसी प्रकार कोतवाल छड़ीदार आदि सभी राज्य कर्मचारियों के वेतन में से कटौती करके सब को नाराज कर दिया।

इतने में ही गांव के सभी दूकानदार लोग भी मौके से फायदा उठाने की गर्ज से राज्य सभा में उपस्थित हो गए। उन्हों सोचा कि आज राजा हम सब दुकानदारों को निहाल कर देगा। परन्तु जब उन्होंने अपने अपने बिल राजा की सेवा में पेश किए तो नवीन राजा ने हुक्म दिया कि आप सब अभी यहीं बैठो। मैं भोजन करने के बाद सब के बिलों पर गौर करूँगा।

राजा भोजन करने के लिए अलग कमरे में चला गया। राजसी भोजन सामग्री देखकर उसके मुंह मे पानी आगया। उसने स्वप्न में भी इन चीजों के दर्शन नहीं किए थे। वह भोजन करने में इतना तल्लीन हो गया कि अपने समय का भी ख्याल नहीं रख सका और एक एक चीज का स्वाद लेकर खाने लगा। खा पी चुकने के बाद वह फिर राज्य सभा में पहुंचा। जब उसका ध्यान समय की तरफ गया तो बड़े ही असमंजस में पड गया। चूंकि उसके राज्य समाप्ति होने में अल्प समय ही शेष रह गया था अतः सभा बर्खास्त करके वह सीधा खजाने की तरफ पहुँचा। वहां जाकर देखता है कि खजान्ची अपने घर गया हुआ है। राजा ने नौकर को खजान्ची के घर बुलवाने के लिए भेजा। ज्योंही नौकर खजान्ची के पास पहुंचा तो वह नौकर के आने का मतलब समझ गया। परन्तु असंतुष्ट खजान्चो भी धीरे धीरे कदम रखता हुआ खजाने की तरफ पहुँचा। ज्योंही खजान्ची ने खजाने का ताला खोला कि दो प्रहर समाप्त हो जाने की घंटी बज उठी। उस दो प्रहर के राजा की चिट्ठी उसी के हाथ में रह गई और निराश होकर सबके द्वारा तिरस्कृत होते हुए वहां से लौटना पड़ा। उसका दो प्रहर का राज्य उसके जीवन में सुख के क्षण नहीं ला सका वह अपने मन में पश्चाताप करने लगा कि हाय! प्राप्त हुए दो प्रहर के राज्य से भी मैं लाभ नहीं उठा सका और निर्धनता दूर नहीं कर सका। परन्तु कहा है कि—

अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियां चुग गई खेत ।

जब कि वह पानी आने से पूर्व पाल नहीं बांध सका तभी तो उसके जीवन में पश्चाताप करना अवशिष्ट रह गया। यदि वह अपने मिले हुए दो प्रहर का सदुपयोग कर लेता तो जीवन भर सुख चैन की बंसी बजाता और सबके द्वारा यश का भागी बन जाता।

इधर जब वह पछताता हुआ, नीची गर्दन किए हुए खाली हाथ घर की तरफ लौट रहा था तो रास्ते में उन राज्य कर्मचारियों ने भी उसकी भर्त्सना की, बुरा भला कहा और गालिऐं दी। और जो ईमानदार थे उन्होंने भी गालिएं देते हुए कहा कि दुष्ट स्वयं भी कुछ प्राप्त नहीं कर सका और हमें धोखा देकर हमारा माल खा गया। यह सत्ता मिलने पर भी न तो अपना और न दूसरों का ही हित कर सका उन दूकानदारों ने भी इसकी जूतों से पूजा कर डाली।

जब वह हताश और निराश होता हुआ घर पहुँचा तो उसकी स्त्री ने भी उसके गले में गालियों का हार डाल दिया। उसने नहीं कहने योग्य शब्द भी उसके स्वागत में सुना दिए। आखिरकार वह अपनी जिंदगी पहिले से भी बदतर हालत में गुजारने लगा। कहानी समाप्त हुई।

भाई! यह तो एक द्रव्य दृष्टान्त दिया गया है। यह सत्य घटना भी हो सकती है और असत्य भी। परन्तु हमें तो दृष्टान्त का निष्कर्ष ही ग्रहण करना है। हमें इस दृष्टान्त से यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हमको जो यह दो प्रहर का मानव जीवन रूपी अनमोल राज्य प्राप्त होगया है तो हम इसको प्राप्त कर जितने भी दिन जीवित रहें परन्तु अपने आपको एक महमान के रूप में समझें इस संसार में हम यहां महमान के रूप में आए हैं और चार दिन शान के साथ जीवन बिता कर जाना अवश्यम्भावी है।

तो चन्द दिनों के अपने जीवन में अच्छा कार्य भी कर सकते हैं और दूसरों का अनर्थ भी कर सकते हैं। क्योंकि अच्छा या बुरा करना हमारे ही हाथ की बात है। यदि हम यहां अपना जीवन एक गुलाब के मानिन्द रंगीन बना कर इतस्ततः खुशबू ही खुशबू फैलाते है और हरेक को खुश करते हैं तो हमारे चले जाने के पश्चात भी दुनियां के लोग उस खुशबू की तारीफ करते रहेंगे। हम बाद में भी यश परिमल से दुनियां को सुवासित करते

रहेंगे। और यदि हम कांटा बन कर अपने पास से गुजरने वाले के पैर में चुभ कर तीव्र वेदना उत्पन्न करते रहेंगे तो हमारी इहलीला समाप्त हो जाने के बाद भी दुनिया उस कांटे को याद करके चार गालिएं देती रहेगी। अतएव यदि आप इस संसार में मानव जीवन रूपी दो प्रहर के राज्य के राजा बन गए हो तो कांटा न बन कर गुलाब बन जाना। राज्य सिंहासन पर आरूढ होकर उदारता पूर्वक सबको इनाम देना, याचकों को खुश रखना और दुखी, दर्दमन्दों के कष्ट निवारण के लिए इन्तजाम कर देना। यदि इस प्रकार से अपने राजत्व काल में सबको आराम पहुंचाया और यश के प्रसून बिखेरे तो अवधि समाप्त होने पर राज्य गादी से उतर जाने पर भी आप द्विगुणित शानो शौकत के साथ जय जय कारों की ध्वनि के बीच सब के गले का हार बन कर घर पहुँचोगे और कभी संताप उठाने की नौबत ही नहीं आने पाएगी।

तो हम देखते हैं कि इस छोटी सी मनुष्य की जिंदगी में कोई तो यश का भागी बनता है और कोई अपयश का टीका लगवाता है यद्यपि सभी को सुयश-कीर्ति के ही कार्य करने चाहिएँ परन्तु यश संपादन करना विरले ही लोगों के भाग्य में बदा है। बाकी अपयश का सर्टिफिकेट हासिल करना तो सहज स्वभाव है। तो ज्ञानी पुरुषों का भव्य प्राणियों को यही शुभ संदेश है कि मनुष्य जिंदगी पाकर इसे दिन भर खाने-पीने में और रात भर खुर्राटें लेने में ही समाप्त मत करदो परन्तु इस अमूल्य जीवन में दूसरों का परोपकार कर यश के भागी बनो।

तो वे पांचों मित्र भी अपने जीवानन्द मित्र को अच्छे और बुरे शब्दों में सम्बोधन करके कहते हैं कि देखो! मुनिराज की सेवा का शुभ संयोग मिला है और सब तरह से योग्य एवं अनुभवी वैद्य होने के बावजूद भी तुम इस तरफ लक्ष्य नहीं दे रहे हो तुम्हारी वैद्यक कला कब और किसके काम आएगी। अजी! हम तो तुम्हें सफल

और अनुभवी वैद्य का टाइटल तब दे सकते हैं जबकि तुम करुणा लाकर इन तपोधनी मुनिराज की परिचर्या तथा उपचार करके असह्य वेदना उपशांत कर दो।"

भाई! भविष्य में जिसकी आत्मा कोई असाधारण पद को प्राप्त करने वाली होती है उसी के जीवन से शुभ कार्य होने की संभावना रहती है। अपने राजकुमारादि पांचों मित्रों के मुंह से जब जीवानन्द वैद्य ने करुणा भरे वचन सुने तो उसका हृदय भी करुणा से पसीज गया। चूंकि यही जीवानन्द वैद्य का जीव भविष्य में तीर्थङ्कर पद को प्राप्त करने वाला है अतः उसके हृदय में अनुकंपा आते ही उसने कहा कि मित्रो! आपका कहना यथार्थ है। इस असार संसार में एक मानव के लिए मुनि की सेवा से बढ़कर और क्या धर्म हो सकता है! आप लोगों ने मेरे समक्ष इन महामुनि को आरोग्य लाभ देने का जो महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखा हूँ इसका मैं हृदय से समर्थन करता हूँ। परन्तु इनके शरीर के असाध्य रोग को मिटाने के लिए मेरे पास वे तीन बेश कीमती दवाएँ नहीं है जिनके द्वारा मैं इनके रोग को उपशान्त कर सकूं। इनके अतिरिक्त अन्य दवाएँ मेरे पास मौजूद है। यह सुनते ही उन पांचों मित्रों ने कहा कि तुम हमे उन तीनों दवाओं के नाम तथा प्राप्ति स्थान के विषय में कहो ताकि हम उन्हें प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न कर सकें। तब जीवानन्द ने कहा कि वे तीन दवाएँ हैं बावनाचन्दन, रत्नकंवल और लक्ष औषधियों का तैल और ये तीनों ही चीजें अपने नगर के अमुक सेठ के यहां उपलब्ध हो सकती हैं!

भाई! जिसके हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ पडता है वह दुखी को दुख से निवारण करने में अपना सर्वस्व भी न्यौछावर कर

देता है। जब उन पांचों मित्रों को प्राप्ति स्थान का पता चल गया तो उन्होंने जीवानन्द से कहा कि अब हम सब कुछ देकर भी उन दवाओं को प्राप्त करने की कोशिश करेंगे। तुमने अपना कर्तव्य पूर्ण किया तो हम भी अपना फर्ज बजा लाते हैं।

वे पांचों मित्र उक्त सेठ की दुकान पर पहुँचे और सेठ से कहने लगे कि सेठजी ! हमने सुना है आपके यहां तैल, कंबल और चन्दन है अतः कृपया शीघ्र उनकी कीमत फर्मा दीजिए ताकि हम उन्हे खरीदने का प्रयत्न कर सकें। यह सुनते ही सेठ ने प्रश्न किया कि भाई! ये तीनो ही दवाएं मेरे पास मौजूद तो हैं परन्तु यह बताओ कि ये चीजें किसके लिए चाहिए ? तब उन मित्रों ने कहा कि सेठ सा० ! एक तपोधनी मुनिराज जंगल मे असाध्य रोग से पीड़ित है उनके शरीर में कीड़े पड़ गए है और बड़ी वेदना पा रहे है अतः हम उन्हीं के उपचारो के लिए ये चीजें लेने आए हैं। हमें जीवानन्द वैद्य ने आपका पता बताया है कि आपके यहां उक्त चीजें है अतः वे तीनों चीजें देने में विलम्ब न करें।

जब सेठ ने मुनिराज के उपचार के लिए उक्त चीजों की आवश्यकता की बात सुनी तो सेठ ने कहा कि भाई ! यह असीम लाभ तो मुझे ही लेने दो। मुझे मुनिराज की निरोगता में कुछ भागीदार बनने दो। मैं इन चीजों की कीमत नहीं लूंगा। आप खुशी-खुशी ये चीजे ले जाइए और शीघ्र मुनिराज को आरोग्य लाभ दिलावें।

भाई कई ऐसे व्यक्ति भी इस संसार में मौजूद हैं कि साधु को घर पर आता हुआ देख कर प्रसन्न चित्त हो जाते हैं और भाव भक्ति सहित उनके पात्र में अच्छी से अच्छी चीज बहराते हैं। जबकि दूसरी ओर कई ऐसे भी व्यक्ति हैं जो साधु को घर पर आया देख अच्छी चीज को छिपा देते हैं। परन्तु धन्य है उन लोगों को जो मुनि

राज को समय पर आवश्यक अन्न, जल, वस्त्र, औषधि आदि चौदह प्रकार का दान देते हैं। तो सुपात्र-दान जिस भव्यात्मा के द्वारा दिया जाता है वही भविष्य में महान लाभ का उम्मीदवार बनता है।

तो उस सेठ ने उन्हें उक्त तीनों चीजें दे दी। वे उन्हें लेकर सीधे जीवानन्द के पास आए। उन्हें देकर उन्होंने जीवानन्द मित्र से कहा कि हमने तो अपना पार्ट अदा कर दिया है अब आपको अपनी कला प्रदर्शित करनी है। अतएव शुद्ध अंत:करण से परिश्रम पूर्वक मुनिराज का उपचार करें और उन्हें स्वस्थ बनावें।

अब किस प्रकार जीवानन्द वैद्य उपचार करके मुनिराज को निरोगता प्रदान करते है और सेवा का लाभ लेते हैं यह आगे सुनने से ज्ञात होगा।

यहां निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि सुपात्र दान देने का अद्‌भुत चमत्कार है। नर से नारायण बनाने की यह अनमोल बूंटी है जो भव्यात्मा इस बूंटी का सेवन करता है वह संसार परत करके अन्त में मुक्तावस्था को प्राप्त करता है।

बेंगलौर
ता० ४-८-५६